वक्तव्य ।

प्रिय पाठकगण, कविवर और सुलेखक स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायका नाम इस समय हिन्दीसाहित्यससारमे सुपरिचित हो गया है । उनकी प्रभावशालिनी लेखनीसे निकले हुए कई उत्तमोत्तम नाटकोका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुका है और वे नाटक हिन्दीसाहित्यके पाठकोके चित्त पर अपना गहरा प्रभाव डाल चुके है । 'परपारे' नामका नाटक भी उक्त प्रतिभाशाली महाशयका लिखा हुआ है । उसके इस हिन्दी अनुवादके सम्बन्धमे मुझे इतना निवेदन करना है कि मूलग्रन्थमे पात्रोके जो वगाली नाम थे वे वदल दिये गये है । एक और परिवर्तन किया गया है । मूलग्रन्थमे वंगालियोकी वहॉकी प्रथाके अनुसार दादा और पोतीकी वडी गहरी दिल्लगी दिखाई गई है । हमारे हिदी रग-मंचपर इस दिल्लगीका होना भद्दा जान पडता । जैसे दादाका पोतीसे कहना कि "क्या तू मुझे पसद करती है ? मुझे क्यो पसद करेगी ? नई मूछोके आगे वूढा कहॉ पसद आसकता है ।" या "तू मुझे प्राणेश्वर कहकर पुकार ।" या पोती और नत-दमादकी एकान्तकी वातचीत सुनकर कहना कि "तोता खूव पढता है। पढो गगाराम !" इस तरहकी वाते निकाल डाली गई हैं । इस हृदयद्रावक सामाजिक नाटककी जो आलोचना एक वंगभाषाके मासिक पत्रमे निकली है उसके कुछ अशका भाव आगेके पृष्ठोमे प्रकाशित किया जा रहा है । आशा है, उसे पढकर पाठकोको इस नाटककी खूवियॉ समझनेमें सुगमता होगी । आलोचनाके अनुवादमे भी पात्रोंके वगाली नाम वदल दिये गये हैं । अन्यथा पाठकोको असुविधा होनेकी सभावना थी ।

—रूपनारायण पाण्डेय ।

समालोचना।

'परपारे' कविवर द्विजेन्द्रलाल रायका लिखा हुआ नया सामाजिक नाटक है। सुप्रसिद्ध 'स्टार थियेटरमे' यह खेला भी जा चुका है। सामाजिक नाटक कहनेसे लोगोंके मनमे 'सरला,' 'प्रफुल्ल' और 'बलिदान' का खयाल आप-ही आप आ जाता है (ये तीनों बंगलाके अच्छे सामाजिक नाटक हैं)। सर्व साधारणका विश्वास है कि जहाँ यौवन-विवाह अप्रचलित है, स्त्रियोंको स्वाधीनताका अभाव है, उस समाज और देशमे मातृ-विरोध, कन्या-दायकी कठिनाइयाँ और वेश्यासक्ति आदि घटनाओंके सिवा सामाजिक नाटककी सामग्री और क्या हो सकती है? किन्तु 'परपारे' उस श्रेणीका नाटक नहीं है। यह कविकी प्रतिभाकी बिलकुल ही नई सृष्टि है। शिल्पचातुर्य, सूक्ष्म चरित्रविश्लेषण और परस्परविरुद्ध प्रवृत्तियोंके घात-प्रतिघातसे इस उत्कृष्ट नाट्य काव्यकी रचना हुई है। जो नाटककार मनुष्य-प्रकृतिके प्रबल घात-प्रतिघातको परिस्फुट रूपसे दिखा सकता है वही कृती कहा जा सकता है। इस नाटकमे एक ओर जैसे स्नेह, कृतज्ञता, क्षमा और त्यागके भाव हैं, वैसे ही दूसरी ओर कृतघ्नता, अत्याचार, कपट, निठुराई और हत्या आदिके भाव हैं। मालूम नहीं, इससे पहले बंगदेशके रंगमंच पर स्वर्गके साथ नरकका ऐसा घोर संग्राम दिखाया गया है या नहीं। यह दृश्य शब्दोंके द्वारा समझानेका नहीं है। देखनेकी, समझनेकी, आँखें मूँदकर हृदयकी रगरग तक अनुभव करने-

बहुत ढेंढ खोजके बाद भगवानदासके साथ उसका ब्याह कर दिया। विवाहित जीवनकी प्रथम अवस्थामें युवक-युवतीके प्रणयचित्रको देखकर पोतीको ही अपना सर्वस्व और प्राण समझनेवाले भोलानाथके हृदयमें आनन्दका उच्छ्वास किस तरह उठता है, नाचता है, लहराता है और हृदयमें नहीं समाता है, सो देखनेकी चीज है, वर्णनकी नहीं। प्रणयकी प्रथमावस्थाके उस मधुर उज्ज्वल चित्राकनके ऊपर कोई रंग चढाकर उसे और भी उज्ज्वल बनानेकी अगर चेष्टा की जाती, तो शायद उस चित्रकी मनोहरता ऐसी न रह जाती। इसके उपरान्त एक ओर वसन्त ऋतुके गंगाजलके समान साध्वी हिन्दूललनाका पवित्र प्रेम दिखाया गया है, जिसमें प्रबलता है, पर गँदलापन नहीं है; जिसके लिए हिन्दू रमणी हँसते हँसते संसारके सब तरहके अत्याचार, अविचार और उत्पीडनोंको सह लेती है लेकिन कर्त्तव्यको नहीं छोड़ती वैसे ही दूसरी ओर भादोंकी भरी हुई नदीके जलकी तरह भगवानदासकी पंकिल, कलुषित, उद्दाम उच्छ्वासमय रूप-लालसा है, जो संयमके बन्धनको नहीं मानती, कर्तव्यके प्रभुत्वको स्वीकार नहीं करती। विशुद्ध प्रेम मनुष्यको देवता बना देता है, लेकिन लालसा उसे पशुसे भी अधम बना देती है।

इसीसे मातृगतप्राण भगवानदास सुन्दरी सरस्वतीको ब्याह कर लानेके बाद उसे घरके कामकाज करनेमें लगानेके कारण मातासे लड़ा झगड़ा, और इस प्रकार निर्मम तिरस्कार करनेके बाद माताको छोडकर चला गया। बहुत दिन बीत गये, उसकी बीमार मा जिस समय उसके आनेकी आशासे द्वार पर बैठी हुई आधी राततक प्रतीक्षा करती थी उस समय भी वह माता को देखने नहीं आया। सरस्वती जब उसकी माकी बीमारीका हाल सुनकर उसे माताके पास जानेके लिए बारबार कहती है—तिरस्कार करती है—तब वह सुन्दरी रमणीके चरणोंके पास बैठकर कामसेवा करता है। पहले सरस्वतीसे माताकी बीमारीका हाल छिपाना, फिर इधर-उधर करना, फिर कर्तव्यपरायण सरस्वतीके उपदेशका प्रतिवाद करना—यह कर्तव्य-ज्ञान-हीन रूपजनित मोहकी चरम दुर्दशा है। इससे भगवानदासके भीषण भविष्यका आभास पाकर सरस्वती कॉप उठती है। एक साथ मनुष्य-चरित्रका ऐसा सूक्ष्म विश्लेषण, पाप और पुण्यका घात-प्रतिघात और क्रमविकास, बंगभाषाके साहित्यमें कमसे कम मैंने तो कहीं नहीं देखा।

ाल्यवन्धु दीनानाथसे यह नही सहा गया। उन्होने एक दिन जाकर भोला-ाथसे सब हाल कह दिया। सरलहृदय भोलानाथ दीनानाथसे यह समाचार ुनकर सन्नाटेमे आगये। वे किसी तरह यह विश्वास नही कर सके कि सरस्वतीकी ऐसी दुर्दशा हो सकती है। वे कहते है-"यह क्या! सरस्वतीको छोडकर एक वेश्या पर भगवानदास आसक्त हो गया है! वह तो सरस्वतीको वहुत प्यार करता था! सरस्वतीको प्यार किये विना क्या कोई रह सकता है?-"इसके वाद एक असीम विषाद आकर उनके हृदय पर अधिकार कर लेता है। वीते हुए सुखकी याद आती है। एक साल विजयादशमीके दिन शरद ऋतुकी शान्त सन्ध्यामें उन्होंने आडमे रहकर वागके वीच नवदम्पतिकी प्रेमलीला देखी थी। उसके वर्णनमे उनके चित्तका स्नेहपूर्ण वह भाव कैसे मधुर मर्मस्पर्शी ढंगसे प्रकट हुआ है! एक साथ विभिन्न मनोवृत्तियोका कैसा विशुद्ध मनोहर चित्र खीचा गया है!

इसके वाद भोलानाथ अपनी पोतीके उद्धारका सकल्प करके अपने चिरसगी भवानीप्रसाद और वाल्यवन्धु दीनानाथको लेकर घरसे निकलते हैं और सहसा भगवानदासकी वेश्याका पता लगानेके लिए चलते हैं। उनकी इच्छा हुई कि एक वार अपनी आँखोंसे भगवानदासकी वेश्याको देखें और अगर वह सरस्वतीसे अधिक सुन्दरी होगी, तो वे उसे "ठाकुरद्वारेके आलेमें रख देंगे।" यह कविका चरम कवित्व है। और भी कोई स्त्री उनकी पोतीसे वढ़कर सुन्दरी है, या सुन्दरी हो सकती है—यह वात उनकी धारणसे परे है। इसीसे शिक्षित, धार्मिक, कर्त्तव्यपरायण, सौन्दर्यके उपासक भोलानाथने यह भाव प्रकट किया कि वह यदि सरस्वतीसे वढकर सुन्दरी होगी तो हम सव सृष्टिसे वढ़कर सृष्टि-सौन्दर्यके सारसौन्दर्य उस रमणीके रूपको दूरसे भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर विस्मयपूर्ण दृष्टिसे देखकर अपने मन और नयनोको चरितार्थ करेगे—पवित्र करेगे। किन्तु वह रूपलालसाके स्पर्शसे मलिन न हो जाय, उसकी पवित्रता न जाती रहे, इसी लिए वे पवित्र ठाकुरद्वारेका अत्यन्त पवित्रस्थान उसके लिए निर्दिष्ट करते हैं। रमणीके रूपको इस तरह भक्तिकी दृष्टिसे देखना द्विजेन्द्र-लाल ऐसे प्रतिभाशाली श्रेष्ठ लेखकका ही काम है। शायद वहुतसे लोगोको भोलानाथकी यह उक्ति पागलपन या शोकातुर विकृत-मस्तिष्क वृद्धका असम्बद्ध प्रलाप जान पडेगी, किन्तु वास्तवमे यह वात नही है। यह स्वधर्मनिष्ठ विमलचरित्र भोलानाथके मनोभावका केवल एक प्रतिविंव है।

भोलानाथने उस वेश्याको देखा, उसका स्वर सुना। [illegible]
लिया कि वह बेशक सुन्दरी है। मगर उनकी "सरस्वतीसे बढ़कर [illegible]
इस "सरस्वतीसे बढकर नहीं" में उनकी कितनी स्नेह-दुर्बलता
कितना अन्ध-पक्षपात है—सो कौन कह सकता है।

अन्तको भोलानाथ मुन्नी वेश्याको पाचसौ रुपयेका म[illegible]ना एक
जगह टाल देनेका प्रबन्ध करके चले गये। उधर भगवानदास भागते
मुखसे मुन्नीके भागने और छिन जानेकी बात सुनकर [illegible] आप
अपने घर लौटकर गया। उस समय सरस्वती पृथ्वी पर पड़ी हुई, [illegible]
ओर ताकती हुई, मन-ही-मन बीती बातोंकी आलोचना कर रही थी।
एक करके बचपनकी स्मृतिके मधुर चित्रोंको, अमावसकी रातके अ[illegible]
पर्दे पर, बायस्कोपके चित्रोंकी तरह, अस्पष्टभावसे आते जाते [illegible]
थी। बारबार गहरी लंबी सांस छोड़नेसे जान पड़ता था, [illegible]

अब पुत्रशोकसे पीड़ित, पतिके द्वारा त्यागी गई सरस्वती हत्याके अपराधमें भागे हुए आसामीकी स्त्री है। किसीने स्वप्नमें भी नही सोचा था कि अन्तमें उसकी यह दशा होगी। वह फिर अपने दादाके घर आ गई है। किन्तु इस समय मानों ये पाठकोंके पूर्वपरिचित सरस्वती और भोलानाथ नही हैं। मानो दो ऊपरसे बंद और भीतर-ही-भीतर जलते हुए ज्वालामुखी पहाड़ हैं। बाहर हरी घासके समान हँसी देख पड़ती है, लेकिन भीतर दिनरात दारुणज्वाला प्रज्वलित है। सदा खटका लगा हुआ है कि न जाने किस घडी किस छिद्रसे वह भीतरकी आग प्रबल वेगसे बाहर निकल पड़े। इसीसे छिद्रके मुखको बंद करनेकी चेष्टामें लगातार दोनोंके हृदय टुकडे टुकडे हो रहे हैं। यह दृश्य कैसा करुण और मर्मस्पर्शी है। ऐसे गहरे दु खमें ऐसी समवेदनाकी हँसी केवल 'किंग लियर' में ही देखनेको मिलती है। उसके बाद भागा हुआ हत्याका अपराधी भगवान-दास दादाजीके यहाँ आश्रय माँगने आता है। बागमें सरस्वती अकेली थी। भगवानदासको देखकर वह पहले तो सन्नाटेमें आ जाती है, लेकिन कुछ देर सोचकर उत्तर देती है कि "ना—तुम चाहे जैसे हो, मेरे स्वामी हो! मैं अपने कर्त्तव्यका पालन करूँगी।" इस प्रकारके आदर्श स्त्री-चरित्र साहित्यमें बहुत ही कम हैं। भोलानाथने आते ही भगवानदासको देखकर शीघ्र ही वहाँसे चले जानेके लिए कहा। सरस्वतीने हाथ जोडकर घुटने टेक-कर दादासे स्वामीके लिए क्षमाकी प्रार्थना की। मगर भोलानाथ कोमलहृदय, सन्तानवत्सल और स्नेहशील होने पर भी कर्त्तव्य-परायण थे। उन्होंने स्नेह-के चरणोंमें कर्त्तव्यकी बलि देना अस्वीकार करके कहा—"सब समझता हूँ, लेकिन यहाँ चोरी-छिप्पा कुछ न होगा। जिन्दगी भर सीधी राहसे चला आया हूँ, इस समय स्नेहके लिए टेढी राह नही चलूँगा।" यहाँ स्नेहके साथ कर्त्तव्यका जैसा भीषण संग्राम हुआ है, वैसा संग्राम मेरी समझमें कभी दो लड़नेवाली वीर जातियोंमें भी नहीं हुआ होगा। ठीक वैसा ही जैसे द्वापरके अन्तमें द्वैपायन ह्रदके किनारे भीमसेन और दुर्योधनका भीषण गदा-युद्ध हुआ था। घात प्रतिघातसे आगकी चिनगारियाँ निकल रही हैं। बार बार प्रचण्ड आघातसे चोट खाते हुए शोकजीर्ण दोनों हृदयोंमें गहरे दाग पडते जाते हैं; तब भी कोई अपने कर्त्तव्यके मार्गसे विचलित नहीं होता। प्रार्थना अनुनय-विनय सबको एक एक करके भोलानाथके कर्त्तव्यज्ञानकी प्रबल पहियाके आगे तृणके

भोलानाथने उस वेश्याको देखा, उसका स्वर सुना। देख-सुन उन्होंने जान लिया कि वह बेशक सुन्दरी है। मगर उनकी " सरस्वतीसे बढ़कर नहीं। " इस " सरस्वतीसे बढ़कर नहीं " में उनकी कितनी स्नेह-दुर्बलता है और कितना अन्ध-पक्षपात है—सो कौन कह सकता है।

अन्तको भोलानाथ मुन्नी वेश्याको पाँचसौ रुपयेका महीना देकर दूसरी जगह टाल देनेका प्रबन्ध करके चले गये। इधर भगवानदास भवानीप्रसादके मुखसे मुन्नीके भागने और छिन जानेकी बात सुनकर क्रोधसे काँपता हुआ अपने घर लौटकर गया। उस समय सरस्वती पृथ्वी पर पड़ी हुई, आकाशकी ओर ताकती हुई, मन-ही-मन बीती बातोंकी आलोचना कर रही थी। वह एक एक करके बचपनकी स्मृतिके मधुर चित्रोंको, अमावसकी रातके अन्धकारके पर्दे पर, बायस्कोपके चित्रोंकी तरह, अस्पष्टभावसे आते जाते देख रही थी। बारबार गहरी लम्बी सांस छोड़नेसे जान पड़ता था, जैसे उसका हृदय टुकड़े टुकड़े हुआ जा रहा है। समालोचनामें उस मधुर मर्मभेदी दृश्यके वर्णन करनेका प्रयास विडम्बनामात्र है। उस दृश्यको देखकर हृदय आप-ही-आप आँसुओंकी धारासे गल जाता है। इसीसे मुन्नी जब सरस्वतीके घर आई, तब सरस्वतीकी दशा देखकर उसके सिर पर मानो गाज गिर पड़ी। वह चौंककर विस्मयसे कह उठी—" यही सती है?—मुख पर कैसी ज्योति है, मस्तक पर कैसी महिमा झलक रही है—जैसे पर्वतकी जड़में प्रभामंडित, शान्त, स्वच्छ, सुन्दर झील हो! यह भूमि-शय्या जैसे सुवर्णका सिंहासन है, सिरपर आँचल हीरेके मुकुटके समान झलक रहा है। यही सती है! शैतानकी बच्ची, घुटने टेककर इस देवीके आगे हाथ जोड़। देवी, मेरी पूजा ग्रहण करो। " जैसे पारसपत्थर स्पर्श मात्रसे लोहेको सोना बना देता है, वैसे ही साध्वी स्त्रीके सतीत्वके प्रभावसे दमभरमें वेश्या मुन्नीके भी हृदयका भाव बदल गया। मुन्नी जाने भी न पाई थी कि भगवानदास खूब शराब पिये लड़खड़ाता हुआ घरमें आया, और रुपयोंके लिए सरस्वतीके ऊपर घोर अत्याचार करने लगा। मुन्नी एकाएक लौट आई और उसने भगवानदासको वैसा करनेसे रोका। भगवानदासके हाथमें पिस्तौल थी। भगवानदासकी गोली लगनेसे मुन्नी घायल होकर गिर पड़ी। " यह क्या! मैंने खून कर डाला! " इस प्रकार सोचकर भगवानदास भाग गया।

अब पुत्रशोकसे पीड़ित, पतिके द्वारा त्यागी गई सरस्वती हत्याके अपराधमे भागे हुए आसामीकी स्त्री है। किसीने स्वप्नमे भी नहीं सोचा था कि अन्तमें उसकी यह दशा होगी। वह फिर अपने दादाके घर आ गई है। किन्तु इस समय मानों ये पाठकोके पूर्वपरिचित सरस्वती और भोलानाथ नही हैं। मानो दो ऊपरसे बंद और भीतर-ही-भीतर जलते हुए ज्वालामुखी पहाड़ है। बाहर हरी घासके समान हँसी देख पड़ती है; लेकिन भीतर दिनरात दारुणज्वाला प्रज्वलित है। सदा खटका लगा हुआ है कि न जाने किस घड़ी किस छिद्रसे वह भीतरकी आग प्रबल वेगसे बाहर निकल पड़े। इसीसे छिद्रके मुखको बंद करनेकी चेष्टामे लगातार दोनोंके हृदय टुकडे टुकड़े हो रहे हैं। यह दृश्य कैसा करुण और मर्मस्पर्शी है। ऐसे गहरे दु खमे ऐसी समवेदनाकी हँसी केवल 'किंग लियर' में ही देखनेको मिलती है। उसके बाद भागा हुआ हत्याका अपराधी भगवानदास दादाजीके यहाँ आश्रय माँगने आता है। बागमे सरस्वती अकेली थी। भगवानदासको देखकर वह पहले तो सन्नाटेमे आ जाती है, लेकिन कुछ देर सोचकर उत्तर देती है कि "ना—तुम चाहे जैसे हो, मेरे स्वामी हो! मैं अपने कर्त्तव्यका पालन करूँगी।" इस प्रकारके आदर्श स्त्री-चरित्र साहित्यमें बहुत ही कम हैं। भोलानाथने आते ही भगवानदासको देखकर शीघ्र ही वहाँसे चले जानेके लिए कहा। सरस्वतीने हाथ जोड़कर घुटने टेक-कर दादासे स्वामीके लिए क्षमाकी प्रार्थना की। मगर भोलानाथ कोमलहृदय, सन्तानवत्सल और स्नेहशील होने पर भी कर्त्तव्य-परायण थे। उन्होंने स्नेह-के चरणोंमे कर्त्तव्यकी बलि देना अस्वीकार करके कहा—"सब समझता हूँ, लेकिन यहाँ चोरी-छिप्पा कुछ न होगा। जिन्दगी भर सीधी राहसे चला आया हूँ, इस समय स्नेहके लिए टेढी राह नही चलूँगा।" यहाँ स्नेहके साथ कर्त्तव्यका जैसा भीषण सग्राम हुआ है, वैसा सग्राम मेरी समझमे कभी दो लड़नेवाली वीर जातियोमे भी नही हुआ होगा। ठीक वैसा ही जैसे द्वापरके अन्तमे द्वैपायन ह्रदके किनारे भीमसेन और दुर्योधनका भीषण गदा-युद्ध हुआ था। घात प्रतिघातसे आगकी चिनगारियाँ निकल रही है। बार बार प्रचण्ड आघातसे चोट खाये हुए शोकजीर्ण दोनों हृदयोंमे गहरे दाग पड़ते जाते है; तब भी कोई अपने कर्त्तव्यके मार्गसे विचलित नहीं होता। प्रार्थना अनुनय-विनय सबको एक एक करके भोलानाथके कर्त्तव्यज्ञानकी प्रबल पहियाके आगे तृणके

सामान वह जाते देखकर सरस्वतीने कहा—" तो फिर मुझे भी जानेकी आज्ञा दीजिए दादाजी !—वे चाहे जैसे हो, मेरे स्वामी हैं। " उस समय सरस्वतीने सोचा था कि अबकी उसके स्नेहदुर्बल दादाको अवश्य ही हार माननी पड़ेगी। किन्तु जो भोलानाथ जिन्दगी भर कर्त्तव्यके खयालसे ही अपने कर्त्तव्यका पालन करते आये हैं, उनके कर्त्तव्यपालनके मार्गमें वह अगाध असीम स्नेह भी बाधा न डाल सका। कर्त्तव्यकी आगमें स्नेह भाप बनकर उड गया। छाती फुलाकर, गर्दन ऊँची करके दृढ स्वरसे भोलानाथने कहा—"ओ—समझ गया, अच्छी बात है। तूने सोचा है बेटी कि तुझे मैं प्राणोंसे भी बढकर चाहता हूँ, इस लिए तेरे कारण अपने कर्त्तव्यकी राह छोड दूँगा। यह कभी न समझना। कर्त्तव्यके लिए मैंने बहुत कुछ दिया है, तुझ तकको छोड दूँगा-उससे शायद हृदयके टुकड़े हो जायँगे-शायद पागल भी हो जाऊँगा,—लेकिन चाहे जो हो, मैं अपना कर्त्तव्य किये जाऊँगा। तो फिर जा बेटी, मैं तुझको भी विदा करता हूँ—अगर तुझसे जाया जाय सरस्वती तो जा! जा,—अन्धा तो हो ही जाऊँगा—आँखो! अगर आँसू गिराओगी तो तुम्हें निकालकर फेंक दूँगा। "

उस समय सरस्वतीकी अवस्था 'न ययौ न तस्थौ' वाली थी। उस भावका वर्णन लेखनीके द्वारा किया ही नहीं जा सकता। कर्त्तव्य सरस्वतीके हृदयसे [illegible]नन्दासके साथ जानेके लिए कह रहा है, लेकिन दादाके प्रति प्यार उसके [illegible] पैरोंको मानो जंजीरसे जकडे हुए है। पैरोंमें हिलने-डुलने उठनेको भी [illegible] नहीं है। इस दृश्यको देखकर आँसू नहीं रोके जा सकते। रोकनेसे आँसू [illegible]रेकी तरह और भी प्रबल वेगसे सैकडों धाराओंसे आप ही बह चलते हैं।

और बातें कहनेके पहले सरस्वती और भोलानाथकी उस समयकी रसिकताके सम्बन्धमें कुछ कहना जरूरी जान पडता है। दूसरे अंकके चौथे दृश्यमें ब्याहके बाद पोतीके साथ दादाकी जो रसिकता लिखी गई है, उसे पढनेसे हँसी आप-ही-आप आजाती है। लेकिन इस रसिकतामें वह हँसी नहीं आती, अनुकम्पाका भी भाव हृदयमें नहीं उठता। हृदय मानो मस्तिष्क-सचालनको बंद करके किसी गूढ रहस्यमय तथ्यके आविष्कारकी प्रत्याशामें अवाक् होकर निर्निमेष दृष्टिसे ताकने लगता है। जान पडता है, कवि मानो अतिमानव और मानवजगतके बहिर्भूत पहलूसे मनुष्य-जीवनकी पर्यालोचना कर रहा है। शायद

इसी धारणाके कारण इस चित्रके स्वाभाविक सूक्ष्म परिस्फुटनके भीतर जो असाधारण शिल्पनिपुणता प्रकट है—मानव-चरित्रकी जो स्वभावज अस्वाभाविकता दिखाई गई है—वह सबको नहीं देख पड सकती। इसी कारण, उस समयकी रसिकताके मर्मार्थ और उद्देश्यको समझनेके लिए पार्थिव दृष्टिसे उसके भावार्थको ग्रहण करना होगा, आलोचना करनी होगी और हृदयमे अनुभव करना होगा। वे रसिकताकी बाते मानो दुःख और अनुकम्पासे पीडित मर्मस्थलको भेदकर खूनके तरारे छुटा रही है। मानो पवित्र सत्रस्त चरणविन्याससे, सदा जाग्रत दुश्चिन्ताको दम भरके लिए अन्यमनस्क करके, गहरी मनोवेदनाके एक अशको हर लेनेके लिए दोनों लगातार चेष्टा कर रहे है। हँसी जैसे ओठोके किनारे पर विषादका वह करुण चित्र देखकर समवेदनाके मारे मलिनमुख होकर चुपचाप खड़ी है। घोर घन-घटा घिरने पर और आंधी चलने पर अमावसकी अँधेरी रातको बिजलीकी चमकमे जैसे सावन-भादौंके आकाशकी भयानक अवस्था और भी भयानक देख पड़ती है, वैसे ही मलिन हँसीसे उद्भासित होकर सरस्वती और भोलानाथके मनकी उस समयकी अवस्था भी स्पष्ट देख पडती है। यहाँपरकी रसिकता बिजलीका व्यंगहास्य है—मथे जाते हुए समुद्रके फेनकी राशि है।

किन्तु उस रसिकताके असामञ्जस्यको, उस मन्थनको, उस विपरीत सघर्पणको प्रकृति और नहीं सह सकी। दोनों रो उठे। भोलानाथने कहा—"और कहाँतक दबावेगी बेटी, और मैं ही कहाँतक दबाऊँगा! यह शोक गैरिक स्रोतकी तरह पत्थर फोडकर बाहर निकल रहा है।" यह स्वभावका हृदयस्पर्शी विशुद्ध चित्र है।

भागा हुआ भगवानदास पकडा जाकर विचारालयमे उपस्थित किया गया। किन्तु ऐसे दारुण भाग्य-विपर्ययके—ऐसे अचिन्त्य विपत्तिपातके—समय भी भगवानदासकी निन्दित नीच प्रकृतिमे कुछ परिवर्त्तन नही हुआ। अपने घृणित जीवन पर मृत्युशय्या पर पडे हुए कृपणकी धन-लालसासे भी अधिक ममता-मोह उसे होता है। इसीसे वह न्यायाधीशके आगे बिना किसी सकोचके कह उठता है कि "मैने खून नही किया, मेरी स्त्रीने मुन्नीकी हत्या की है।" इसका बदला लेनेके लिए ही मानो ठीक उसी घडी सती साध्वी सरस्वती अपने नालायक स्वामीके प्राण बचानेके लिए दर्शकमण्डलीके भीतरसे दौड आकर

कहती है—" धर्मावतार, यह सच बात है। यह हत्या मैंने ही की है। इतना कहकर साध्वी सरस्वती हथकड़ी पहननेके लिए उसके साथ हाथ बढ़ा देती है।

वृद्धावस्थाके शेष बन्धन, जीवनके एकमात्र अवलम्बन सरस्वतीने कर्तव्य मार्गमें आत्मबलि दे दी—यह सुनकर भोलानाथ एकदम पागल सरीखे हो गये सरस्वतीको बचानेके लिए इस समय बहुत से धनकी जरूरत है। मगर उतना धन आज भोलानाथके पास नहीं है। जिनका उन्होंने उपकार किया था उनके द्वार पर भिक्षुककी तरह बारबार जाकर भी वे धन नहीं पाते, मनुष्य जातिकी अकृतज्ञता देखकर मर्म-व्यथा ही पाते हैं। दीनानाथ अन्तको उतना धनका प्रबन्ध अवश्य कर लाया, किन्तु मुकद्दमेमें भोलानाथ कुछ कर नहीं सके आसामीके इकबाल पर सरस्वतीको फाँसीका हुक्म हो गया। भोलानाथके आँखोंके आगे अन्धकार देख पड़ा। जान पड़ा, धरती पैरोंके नीचेसे निकल जाती है। इसी अवस्थामें वे अचेत हो गये।

बहुत तड़केका समय है। पक्षी इस समय भी अपने घोंसलोंमें जगे नहीं हैं। अरुणकी आभा, जो सूर्यदेवकी सुनहली किरणोंसे पहले प्रकट होती है आकाशमें बादलों पर छिटक रही है।—जेलके एक किनारे पर सोनेकी पुतली सरस्वती हत्याके अपराधमें इस जगतसे सदाके लिए विदा होनेको तैयार बैठी है। अभी फाँसी लगनेका समय नहीं हुआ, जेलर साहब और पहरेदार सिपाही [illegible]स्वतीको लिये हुए मजिस्ट्रेट और डाक्टरसाहबके आनेकी राह देख रहे

[illegible] इसी समय भगवानदास वहाँ आकर उपस्थित होता है। जेलर सरस्व[illegible]के कहनेसे उसके हाथ बन्धमुक्त कर देता है और सरस्वती भगवानदा[illegible]के पैर छूकर प्रणाम करती है। अब भगवानदासके चरित्रमें कुछ परिवर्तन [illegible] चला था। इसीसे उसने पूछा—" सरस्वती, मुझ ऐसे अभागेके प्राण बचानेके लिए मिथ्या हत्याका अपराध तुमने अपने सिर क्यों ले लिया ? " सरस्वतीने कहा—" फाँसी तो मुझे अपने गलेमें लगानी ही पड़ती, मगर इस फाँसीके समान बुरा उसमें न होता। " इसके बाद सरस्वती अन्तिम उपदेश करती है—" मेरा विश्वास है कि परकाल अवश्य है। इतना बड़ा आयोजन, यह बुद्धि, यह विवेक, यह अनुभूति क्या इसी जगह इतने ही थोड़े समयमें समाप्त हो सकती है ? यह आकांक्षा फिर निश्चय ही अस्थि-मज्जामें—रक्त और मांसके

आवरणमे—आवेगी। इस महती सृष्टिकी अपूर्व शृंखला क्या उन्मादका प्रलाप है? मै मरनेसे बिलकुल नही डरती। अच्छा तो मै तैयार हूँ।" कैसा गहरा विश्वास है! कैसा प्रबल कर्तव्य ज्ञान है! देव-मन्दिर भी इस हृदयसे अधिक पवित्र नही होगा!

भगवानदास चला गया। प्रेमशंकर और दीनानाथको साथ लेकर भोलानाथ सरस्वतीके पास पहुचे। सरस्वती और भोलानाथके परस्पर एक दूसरेसे अंतिम विदा मॉगनेका यह दृश्य बड़ा ही हृदयद्रावक है। इसका वर्णन यहॉ पर मै नहीं करूँगा। पाठक इस दृश्यको स्वयं पढें और अनुकम्पा या सहानुभूतिके ऑसू बहावे—वे कृतार्थ और पवित्र हो जायँगे।

दीनानाथ और प्रेमशंकर भोलानाथको वहॉसे घसीट ले गये। अब फॉसीमे कुछ देर नहीं। जल्लाद सरस्वतीके गलेमे फॉसीका फन्दा डाल कर तख्तेसे नीचे उतर आया। पक्षीगण गाते गाते एकाएक चुप हो गये, सूर्यदेवने बादलोंकी आडमे मुँह ढक लिया। प्रातःकालका वायु कॉपकर खड़ा हो गया। वृक्ष लताये चुपचाप ऑसू बहाने लगीं। उसी समय एकाएक उस आसन्न-मृत्युके भयानक सन्नाटेको तोड़कर "खबरदार! निरपराधिनीको फॉसी न देना- मुन्नी जीती है" कहकर चिल्लाती हुई मुन्नी वहॉ पर उपस्थित हो गई। मजिस्ट्रेटने पूछा—"तुम कौन हो?" मुन्नीने उत्तर दिया—"मै वही मुन्नी हूँ।" सरस्वती छूट गई। एक गहरी लंबी सॉस छोड़कर पवनदेव डोलने लगे। सब पक्षी उल्लासके मारे खूब कलरव करते करते घोसलोंसे निकल कर उषःकालकी सुनहली किरणोंमें पलटे खाते खाते विचरने लगे। दर्शकोकी छाती परसे अव्यक्त यन्त्रणाकी शिलाका दारुण बोझ जैसे अकस्मात् किसी जादूके जोरसे रूईकी तरह हलका होकर गहरी सॉसमे उड गया। इस प्रकाश और छायाके विलक्षण विचित्र समावेशसे जो अपूर्व करुणदृश्य अंकित हुआ है, वह शब्दोंके द्वारा नहीं समझाया जा सकता। वर्णन करनेमे शब्द चुक जाते है, लेकिन वर्णनीय विषयका परिचय पूरा नहीं होता।

भोलानाथको सरस्वतीके छुटकारेकी खबर नही मिली। वे जेलखानेसे बाहर निकल कर दीनानाथको साथ ले एकदम काशीको रवाना हो गये। लेकिन शान्तिमय शकरकी पुरीमे पहुँचकर भी उन्हे शान्ति नहीं मिली। उन्होने एक दाना भी नही खाया—हर घडी अगाध, असीम, तीव्र यन्त्रणा देनेवाली दारुण

चिन्ता उन्हे सताने लगी। एक एक करके ससारके सभी लोगोंने उनको छो
दिया है। केवल मनुष्योंकी कृतघ्नताकी चिन्ता और सरस्वतीकी याद, चढ़
जवानीके प्रेमीकी तरह, उनका साथ नही छोडती। वे सारे ससारमे सर्व
सरस्वतीको देखते है, हवाकी खटकमे सरस्वतीकी आवाज सुनते है, हरए
शब्दमे सरस्वतीके पैरोंकी आहटका अनुभव करते है और दूसरे ही क्षण
गहरी निराशाकी दारुण यन्त्रणामे तडफने लगते है। जीवन-धारण अस
हो गया है। क्या करे, कुछ समझमे नहीं आता। एक तरफ सरस्वतीका स्ने
है, दूसरी तरफ निष्ठावान् हिन्दूका धर्मबुद्धिजनित और बचपनसे बद्धमू
सस्कार है। इन दोनोंने मिलकर उस शोकजीर्ण हृदयके भीतर घोर आन्दोल
मचा रक्खा है। विपन्न विवेकने आई हुई विपत्तिसे मोहित होकर हाथ पै
ढीले कर दिये हैं। कर्त्तव्य-ज्ञान कर्त्तव्यका निश्चय नहीं कर सकता। सरस्वत
बड़ी है, या बचपनसे पाला गया धर्म-विश्वास बड़ा है--इस गुरुतर समस्याक
मीमासा नहीं होती। सरस्वतीके वियोगकी ज्वाला असह्य है, इसीसे अधि
रात बीतने पर एक तेज धारकी कटार हाथमे लिये हुए वे सोनेके कमरे
टहलते टहलते कहते है--" ना, मैं यही पर अन्त कर दूँगा। अब नही सह
जाता। लेकिन--यह आत्महत्या--महापाप है। महापाप अगर हो तो हो!
नहीं तो मनुष्यमे दानवकी शक्ति क्यों नही है? अगर वह शक्ति हो तो तो
मैं सह सकता,--और पाप ही इसे कैसे मान ले--मरना महापाप है? क्यो,
भी तो तिलतिल करके जल मर रहा हूँ। मैने यह जीवन पाया है।
हुई चीजको मैं रक्खूँ या फेक दूँ, उससे किसीकी क्या हानि है! जब
सीकी भी क्षति नही है तब मै यह काम करूँगा--अवश्य करूँगा।--
ह बहुत बडा घोर पाप है! जिससे किसी कालमे उद्धार नहीं--वही
करूँगा?--नहीं, जरूरत नही है--" इतना कहकर वे कटार रख देते है।
इसी समय मस्तिष्कविकारके कारण एकाएक उन्हे जान पड़ता है कि मानो
उन्हे सरस्वती पुकार रही है। यह उन्हे मालूम नहीं था कि सरस्वती जीती
है और काशीतक उनकी खोजमे आगई है। उसी क्षणिक भ्रमके कारण उन्हे
प्रतीति हो गई कि सरस्वतीकी स्नेहपूर्ण आह्वान-वाणी जीवनके उसपारसे हवाके
द्वारा आरही है। इसीसे विवेक और धर्मसस्कारको दमभरके लिए भुलाकर
प्राणसे अधिक प्यारी सरस्वतीसे मिलनेकी प्रबल इच्छाने ही मानो उनके

हाथकी वह पैनी कटार उनके जराजीर्ण शिथिल पेटमें घुसेड़ दी। दीपक बुझ जानेसे घरमें अन्धकार हो गया। उस अन्धकारमें उस पारकी नाव पर चढ़कर कविने सरस्वतीके साथ दादाकी भेंटका जो करुण दृश्य अंकित किया है वह संसार भरके साहित्यमें अपनी तुलना नहीं रखता। दादाका चरित्र अंकित करनेमें जिस कारीगरी, कृतित्व और मानव-चरित्रके गहरे ज्ञानका परिचय दिया गया है वह प्रत्येक देशके श्रेष्ठ नाटककारके लिए गौरवका विषय हो सकता है।

दादाकी मृत्युके बाद दूसरे ही दिन सरस्वती ' उस पार ' दादाके पास नीच प्रकृति स्वामीके कल्याणकी कामना करते करते चली जाती है। भगवान-दासके जीवनमें भी पूरा परिवर्तन हो जाता है। एक दिन माताके साथ उसने जो बुरा व्यवहार किया था उसके लिए उसे घोर पछतावा होता है। वह अनेक स्थानोंमें माताको खोजता फिरता अन्तको एक मसानमें उपस्थित होता है और वेश्या मुन्नीकी कृपासे उस पार जगदम्बाके हृदयमें माताके दर्शन पाता है।

चरित्र-विश्लेषण।

अब हम संक्षेपमें प्रधान पात्रोंके चरित्रोंका विश्लेषण करके इस नाटकका मर्म समझानेकी चेष्टा करेंगे। इस नाटकमें स्त्री-चरित्र चार हैं—सरस्वती, मुन्नी, लक्ष्मी और हीरा।

सरस्वती नैतिक सौन्दर्यकी आदर्श है। सरस्वती वह आदर्श स्त्री नहीं है जो लात खाकर ' पे ' करके भाग जाती है, और ' तू ' करके पुकारनेसे पूँछ हिलाती हुई पैरों पर आकर लोट जाती है। सरस्वती वह आदर्श स्त्री है जो माताके द्रोही पतिको फटकार बताती है, भटके हुए स्वामीको कर्त्तव्यकी राह दिखाती है, पतिके असह्य अत्याचारको चुपचाप सह लेती है; गृह-हीन आश्रय-हीन पतिका साथ देती है और पतिके प्राण बचानेके लिए बेखटके फाँसी पर चढ़ जाती है। इतनी बड़ी आदर्श-पत्नी, जान पड़ता है, संसारके किसी भी साहित्यमें नहीं है। सरस्वतीने मानो अपने हृदयका सारा स्नेह अपने दादाको दे डाला है। ससुराल जानेके पहले दिन शीघ्र ही होनेवाले दादाके बिछोहका खयाल करके वह उन्हींके बारेमें सोचती है। यही उसकी प्रधान चिन्ता है कि

कहीं उसके वियोगमे पीछेसे उसके दादा आत्महत्या न कर ले। अपना दु ख मानों उसे कुछ है ही नही। यह स्थल पढते पढते विरहिणी छाया सीताकी यह उक्ति याद आती है कि " आर्य्यपुत्र मेरे लिए कष्ट पा रहे है—धिक्कार है मुझे।" दादाके दु.खकी सहानुभतिने उसके निज दु खको दबा दिया है। मृदु रसिकता उसके मुँहमे आकर लंबी सॉसकी भापमे उड़ जाती है।

सरस्वती भगवानदासको प्यार करती है। किन्तु उस प्रेममे उच्छ्वास नही है। वह प्रेम भी उसने कर्त्तव्यके निकट सीखा है। स्वामीको प्यार करना स्त्रीका कर्त्तव्य है, इसीसे वह भगवानदासको प्यार करती है। उसका वह प्रेम मानो कर्त्तव्यज्ञानका एक अनुरोधमात्र है।

पहले और दूसरे अकमे देखते है कि सरस्वती अपने स्वामीको मातृभक्ति-की शिक्षा देती है। कारण वह समझती है कि मातृभक्ति ही सब कर्त्तव्योकी जड है। भगवानदासने इसे अपनी स्त्रीकी धृष्टता भले ही समझा हो, मगर इसमे सन्देह नहीं कि भगवानदासको यह मातृभक्तिकी शिक्षा बिलकुल ही नही मिली थी। इसी कारण अपनी मृत्युका समय निकटवर्ती होने पर भी वह भगवानदासको धर्मविश्वास पर दृढ रहनेकी शिक्षा देती है। राहसे भटके हुए पतिको धर्ममार्गमे ले जानेकी अन्तिम चेष्टा करके फिर पतिके पैरोकी धूल लगाकर गर्वके साथ फॉसी पर चढनेका ऐसा गौरव-पूर्ण चित्र इससे बंगला-साहित्यमे किसीने न देखा होगा।

सरस्वतीके प्रत्येक वाक्यका मूल्य लाख रुपये है। अगर हम उन्हे उद्धृत तो सबके सब उद्धृत करना पडे। यहॉ केवल एक अश उद्धृत किया है। भगवानदासने जब व्यंगके साथ कहा—" वाहरी सती! " तब सरस्वती कहती है—" देखो मै सती हूँ या असती, इसका विचार मै एक शराबीके मुँहसे—वेश्यासक्तके मुँहसे नही सुनना चाहती। मेरा सतीपना मेरा धर्म है तुम्हारा नही।" इसके बाद ही वह कहती है—" सतीत्व मेरा इष्टदेव है,—तुम तो उस देवताकी पूजाकी सामग्री फूल-पत्तीभर हो।" हिन्दूललनाये सती पतिव्रता होती हैं, पर इसका कारण पतिभक्ति नही है। इसका कारण यह है कि सतीत्व ही सतीका धर्म है, सतीका इष्ट देव है। शिवभक्त पुरुष जैसे

अपने इष्टदेवकी पूजाकी सामग्री होनेके कारण बिल्वपत्रको पवित्र दृष्टिसे देखता है वैसे ही सती स्त्री भी सतीधर्मके आचरणका आधार होनेके कारण स्वामी पर भक्तिभाव रखती है। क्योंकि पतिरूप बिल्वपत्रसे ही शिवरूप सतीत्वकी आराधना होती है। पतिकी अपेक्षा सतीत्वरूप देव ही सतीकी दृष्टिमे बड़ा है। इसी कारण जब भगवानदासने सरस्वतीके सतीत्व पर व्यंग किया तब उससे रहा नहीं गया। सती स्त्री अपने पतिके सब अत्याचारोंको चुपचाप सह लेती है—लेकिन अपने सतीत्व पर अगर पति भी दोषारोप करता है तो वह उसे नहीं सह सकती। क्योंकि सतीका धर्म पति नहीं है, सतीका धर्म सतीत्व ही है। दाम्पत्य साहित्यने इतनी बड़ी बात पहले क्या कभी किसीने सुनी थी?

सरस्वती पढी लिखी, स्नेहमयी, कर्तव्यपरायणा, रसिका, तेजस्विनी, सुन्दरी युवती है। वह बंकिम बाबूकी सूर्यमुखी, भ्रमर या गिरीश बाबूकी सरला और प्रफुल्ल नही है। यह बंगकाव्यसाहित्यमे एक नई ही सृष्टि है।

मुन्नीका चरित्र सरस्वतीके चरित्रकी तरह इतना मिश्र नहीं है। मुन्नीने अपनी व्याख्या आप ही की है।

पूर्वजन्मके कर्मफल और अदृष्टकी विडम्बनासे हिंदूकुलमे जन्म लेकर भी मुन्नी वेश्या है। वह असाधारण रूपवती, शिक्षिता, बुद्धिमती, सुन्दर कंठवाली गायिका है; लेकिन जोरासे भरी हुई और तबीयतदार है। मुन्नी उद्दाम लालसाकी मोहिनी मूर्ति है। मानों वह दिगन्त-विस्तृत मरुभूमिमे ग्रीष्मऋतुके सूर्यास्तका दृश्य है। वह सौन्दर्य और रूपकी गरिमासे मन और नेत्रोको अपनी ओर खींचती है, मुग्ध करती है, मगर शीतल नहीं करती। उसके हृदयमें दारुण ज्वाला भरी हुई है। वह रूपकी गरिमा मानो इन्द्रियमार्गसे प्रवेश करके नसनसमे अग्नि-प्रवाह दौड़ाकर मस्तिष्कको प्रज्वलित कर देती है। मुन्नीके गानोंसे ही उसका जीवन स्पष्टतः समझमें आजाता है। गहरे दुःख, क्षोभ और घृणासे वह वेश्याका हृदय भी टुकडे टुकडे हो जाता है। वह अपनी अवस्थाके लिए सदा सन्ताप किया करती है, और अपने किये कार्यके लिए लज्जाका अनुभव किया करती है। किन्तु दूसरा उपाय न होनेके कारण वह उसी तरह अपना जीवन बिताती है। इसके लिए वह अपनेको, सारी वेश्याओंको और जो लोग पतित स्त्रियोंके अधःपतनमे सहायक होते हैं उनको, बुरा कहती है। उसके हृदयके भीतर दिनरात समान भावसे एक महासंग्राम हुआ करता है।

प्रथम अङ्कमें हम देखते हैं कि मुन्नी जीविकाके लिए वेश्यावृत्ति करती है। उस्तादजीकी एक बात पर उसने वेश्यावृत्तिको छोड़ दिया, और गानेसे अपनी जीविका चलाने लगी। कोई उसे वेश्या कहता था तो वह क्रुद्ध होती थी। दूसरे अङ्कके अंतिम दृश्यमें उसे हम इसी अवस्थामें देख पाते हैं। तीसरे अङ्कमें देखते हैं कि वह भगवानदासकी प्रणयिनी हो गई है। अपने सारे आवेगमय हृदयसे वह भगवानदासको चाहती है किन्तु उस्तादजीकी हथौड़ीकी और एक चोटसे उसका वह स्वप्न भी मिट गया। भगवानदासके तो स्त्री है। भगवानदासका प्रेम उसको मिलना चाहिए। मुन्नी उस पर बेजा अधिकार क्यों करती है?—इसी मर्मभेदी सन्देहको मिटानेके लिए वह भगवानदासकी स्त्रीके पास दौड़ी गई। रामके दर्शनसे अहल्या जैसे शापसे छुटकारा पा गई वैसे ही सती सरस्वतीके दर्शन होनेसे मुन्नीकी मुक्ति हो गई। घड़ी भरमें एक बड़ा भारी नैतिक विप्लव हो गया। मालूम नहीं, सतीकी महिमाको इतने उज्ज्वल भावसे और कोई अंकित कर सका है या नहीं। उसके बाद अपने पिता भवानीप्रसादके भक्तिभावकी नदीमें स्नान करके उसने पुनर्जन्म प्राप्त किया और माता जगदम्बाके चरणोंमें स्थान पाया।

लक्ष्मीके चरित्रमें कुछ विशेषता नहीं है। जगतकी सभी मातायें इसी एक साँचेमें ढली हुई हैं। भगवानदास अपनी माताका ज्ञान, ध्यान, सब कुछ है। उसके मुँहमें भगवानदास है, हृदयमें भगवानदास है। वह भगवानदासके सिवा कुछ नहीं जानती। पहले उसे यही चिन्ता देख पड़ती है कि ब्याह करके [illegible] हुआ या नहीं। पीछे मातृद्वेषी पुत्रके हृदयहीन व्यवहारसे जब निराश-व्यथित हृदयसे निकट आई हुई मृत्युकी अपेक्षा करती है उस[illegible] भी उसके मुखसे भगवानदासका ही नाम निकलता है। यही लक्ष्मीका [illegible]ष जीवनवृत्तान्त है। वह बीमारीकी हालतमें भी भगवानदासके आनेकी [illegible] करती है, हरएक गाड़ीका शब्द सुनकर यही अनुमान करती है कि उस पर उसका भगवानदास आरहा है। हरएक 'माता' के सम्बोधनमें वह भगवनदासके ही कण्ठका स्वर सुनती है। लक्ष्मीकी 'मृत्यु' एक अत्यन्त सरल और करुण चित्र है। सवेरा हुआ है। लक्ष्मीकी शय्याके पास उसका बूढ़ा पड़ोसी दीनानाथ बैठा हुआ है। लक्ष्मी दीनानाथसे कह रही है—"भगवानदास आवे तो कहना कि मरते समय मुझे कुछ कष्ट नहीं हुआ। केवल मरनेके

समय मैंने उसे एक बार देखने की इच्छा की थी।—ना ना, यह कहनेकी भी कुछ जरूरत नही है—मेरा लाल दुखी होगा। " उसके बाद गऊ रँभाई। लक्ष्मी मृत्युशय्यापरसे उत्तर देती है—मै यहाँ हूँ। गऊके बछड़ेको देखनेके लिए लक्ष्मीका जो आग्रह देखा जाता है उसके भीतर कौन कह सकता है कि पुत्रके प्रति उसका कितना अभिमान और स्नेह निहित है। क्रमशः भगवानका नाम लेते लेते पुण्यवती लक्ष्मीने आँखे मूँद ली।—भगवानदास नहीं आया। यहीं पर एक छोटेसे नाटककी यवनिका गिर जाती है।

हीराके चरित्रमे समझानेकी बात कोई नहीं है। भ्रष्ट स्त्रीकी अन्तको जो दशा होती है वही दशा हीराकी हुई। अपनी खोई हुई कन्या मुन्नीको पाकर उसे आनन्द हुआ या दुःख, सो निश्चय करके कहना कठिन है। किन्तु यह अच्छी तरह जान पडता है कि उसका मत कुछ कुछ बदल अवश्य गया। उसकी कन्या आज उसीके पापसे वेश्या है। इस लज्जाको रखनेके लिए कहाँ स्थान है। हीरा मुन्नीकी तरफ आँख उठाकर नही देख सकती। स्मारक-स्वरूप मुन्नीकी एक अँगूठी लेकर इसीसे वह अदृश्य हो जाती है। आत्महत्या नही करती। उद्देश्य यही है कि मुन्नीकी स्मृति लेकर ही वह जीवन धारण करेगी और फिर कभी कभी घूमते फिरते आकर कन्याको देख जाया करेगी। किन्तु उस अभागिनके साथ रहना उसके लिए असभव है। इधर भाग्यने उसे इस अवस्थासे छुटकारा दे दिया। उसके पहलेके प्रेमीने उसकी हत्या कर डाली। अनुचित प्रणयका ऐसा ही भयानक परिणाम होता है।

भोलानाथ पुराने ढंगके जमीदार है। परदुःखकातर, धार्मिक, कर्तव्यपरायण और दाता है। उनका दोष यही है कि वे स्नेहसे दुर्बलहृदय और बहुत ही सरल हैं। सभी लोग नित्य उन्हें ठगते है। प्रेमशंकर नित्य उन्हें सावधान करता है, पर वे हँसकर उड़ा देते है। कहते हैं—" यह भी कहीं हो सकता है प्रेमशंकर! मनुष्य अकृतज्ञ होगा! ईश्वरकी श्रेष्ठ सृष्टि, मनुष्यलोकमे भगवानका अवतार + + + मनुष्य अकृतज्ञ होगा! + + + मनुष्य मेरा भाई है। दुःखी मनुष्यको देखकर आँखोंमे आप ही आँसू आजाते है, उसे छातीसे लगानेके लिए दोनो हाथ आप ही आगे बढ जाते है। "—भोलानाथ ऐसे ही परदुःखकातर और निर्लोभ है।

वहुत लोग दान करते हैं—नामके लिए, या पुण्य-सञ्चयके लिए, कि
भोलानाथ दान करते है इस लिए कि उनसे दान किये बिना रहा नही जात
इतने वड़े दानी भोलानाथ है। लोग उनसे रुपये उधार लेकर देना नहीं चाह
उसकी परवा नही करते—कहते हैं—" वदलेमें तुम केवल मुझे प्यार क
प्यार करो।" इतने वे स्नेहदुर्वल हैं। वे ससारके निकट कुछ नहीं चाह
चाहते हैं केवल प्रेम।

भोलानाथके विश्व-प्रेमके वारेमें दीनानाथ कहता है—उनका सारा शर
प्रेममय है, और सरस्वती मानो उस प्रेमका प्राण है।

भोलानाथने सरस्वतीका व्याह कर दिया है। उसे ससुराल भेजना होगा
वृद्ध दादा मसखरी करके अपना दुःख दवानेकी चेष्टा करते हैं। उनके मुँह
हँसी और हृदयमें रोना है। वीचवीचमें वह भीतरका रोना मसखरीके पर्दे
वाहर फूट उठता है। जैसे—" कल इस छतके ऊपर अकेला यह आकाश हो
और मैं होऊँगा—दोनोंके वीचमे ढेरका ढेर अन्धकार होगा।" इस भाषा औ
भावको समझनेके लिए तहतक पहुँचनेकी आवश्यकता है। भोलानाथ पौत्री-वियो
गकी भावनासे अस्थिर हो उठे हैं, विना प्रयोजन नौकरको पुकारते है, सरस्व
तीसे पूछते है कि " देख सरस्वती, वादल उठा है या नहीं।" यह सब उम
ए हृदयके आवेगको छिपानेकी चेष्टामात्र है।

सरस्वतीका 'हत्यारा' भागा हुआ स्वामी आकर आश्रय माँगता है
हमें भोलानाथकी कर्त्तव्यपरायणताकी पराकाष्ठा देख पडती है। एक ओर
ह है, और दूसरी ओर कर्त्तव्य है। कर्त्तव्यकी जय हुई। इतने विशाल
ह पर विजय पानेवाली कर्त्तव्यपरायणता कितनी वड़ी कर्त्तव्यपरायणता है।
इ दृश्य देखकर विजयी भोलानाथकी जयध्वनि करनेको जी चाहता है।
न पड़ता है, यह जय वाटर्लू-जयसे भी वढ़कर गौरवकी सामग्री है।

सहसा भोलानाथके सरल विश्वासको एक वड़ा भारी धक्का लगा। इस
विपत्तिके समय किसीने उन्हे दसहजार रुपये उधार नहीं दिये—, उन्हीं
लानाथको—जो दोनो हाथों धन लुटाकर आज कंगाल हो गये है। भोला-
नाथ इस धक्केको नही सह सके। वे मानो पागल हो गये। सरस्वतीकी काल्प-
निक मृत्युने उस डावाँडोल विचारशक्तिको नीचे गिरा दिया।

इस अवस्थामें हम जब भोलानाथको पाते है तब वे सोचते है—to be or not to be—इस समय कभी कभी उन्हे ज्ञान होता है, और फिर वही पागलपन आ जाता है। उन्होने विचार करके आत्महत्याका इरादा छोड़ दिया। इसी समय फिर पागलपनने आकर उनके चित्त पर अधिकार कर लिया। वे चन्द्रमाके पास देखने लगे, सरस्वती उन्हें जीवनके उसपारसे बुला रही है। विचारशक्तिने समझाया, नही, यह कल्पना है। उसके बाद सचमुच ही सरस्वतीका स्वर सुन पड़ा। एक बार नही, बार बार। अब उन्हें इसमें सदेह नही रहा कि मरीहुई सरस्वती ही उन्हे पुकार रही है। तब उन्होने परलोकमे सरस्वतीका सग पानेकी प्रबल कामनाकी ताडनासे इस जीवनको त्याग कर दिया। आत्महत्या करनेके पहले भोलानाथने इस विषय पर बहुत कुछ विचार किया। उनकी समझमे मनुष्य-जीवन दैवसे प्राप्त है। इस कारण दैवसे मिली हुई वस्तुका अपनी इच्छाके अनुसार व्यवहार करनेसे समाजकी कोई हानि नहीं है। जिस कार्यसे समाजकी कोई हानि नहीं, वह पाप नही है, इसीसे आत्महत्या पाप नही है। मनुष्य सदा चिन्ता और मनोवृत्तिके द्वारा सञ्चालित हुआ करता है। मनुष्य-चरित्रमें कभी कोई कार्य संगत होता है और कभी कोई कार्य असगत होता है। इसी कारण उसका कुछ निश्चय नहीं है। क्योंकि वह कार्य घटना और उस समयकी पारिपार्श्विक अवस्थाके ऊपर निर्भर है। मस्तिष्ककी विकृत अवस्थासे उत्पन्न हुई आन्तरिक दुर्बलताको दूर करनेका बाहरी शक्तिके प्रयोगके सिवा अन्य उपाय नहीं है। भोलानाथने जिस समय आत्महत्या की है उस समय उनके ऊपर वही बाहरका सबल शासन नही था। इसीसे उन्होंने आत्महत्या कर डाली—उनके इस कार्यमें बाधा देनेवाला कोई नही था।

इस नाटककी ट्रेजिडी भोलानाथकी मृत्युमें नहीं है। इस नाटककी ट्रेजिडी भोलानाथके विवेकके विलोपमें है। इतने बड़े आदर्श मनुष्य होकर भी अत्यन्त अधिक स्नेह-दुर्बलताकी ताडनासे ज्ञान खोकर अन्तको उन्होने आत्महत्या कर ही डाली। यही ट्रेजिडी है। Too much sail and no ballast होने से जो होता है वही हुआ। नाव डूब गई। यही ट्रेजिडी है। और वह शरीरके ध्वंसमें नहीं, मनुष्यत्वके ध्वंसमें है।

भगवानदास शिक्षित है, मेधावी है, किन्तु उसके चरित्रमे नैतिक बल नहीं है। उसके चरित्रमे विवेक और कर्त्तव्यज्ञानका सम्पूर्ण अभाव है। सर-

स्वतीके प्रति वह मोहित है। पर वह मोह प्रेम नहीं है। उसे यौवन-आसक्ति कह सकते हैं। भगवानदासने खुद अपने चरित्रकी संक्षेपमें यों व्याख्या की है--" जिसने स्त्रीके लिए माताका अनादर किया, वेश्याके लिए स्त्रीको छोड़ दिया और डाहके मारे वेश्याकी हत्या की। "

भगवानदासकी मातृभक्ति बहुत ही तरल है—वह कमलके पत्ते पर पानी की बूँदकी तरह सदा हिलाडुला करती थी। भगवानदास खुद इस बातको समझ गया था। इसीसे स्त्रीके घर आने पर वह काँप उठा था। उसने मातासे कहा था " मा, घरमें चोर घुस आया है। " भगवानदास ब्याहके बाद मानों माताकी सुध भूल कर दिनरात रूपवती युवती स्त्रीके चरणोंके पास बैठकर कामकी सेवामें लग गया, और ज्यों ही स्त्रीकी आकर्षणी शक्तिमें 'भाटा' पड़ना शुरू हुआ, त्यों ही वह मुन्नीके रूपकी आगमें पतंगकी तरह फाँद पड़ा। भगवानदास भीरु और कापुरुष था। मुन्नी पर पिस्तौल दागनेके बाद जब वह लापता हुआ तब उसे पछतावेने घेरा। वह हरघड़ी मरी हुई माताका मुख देखने लगा। इसीसे वह मदिरा पीने लगा। पीते पीते उसकी मात्रा बढाने लगा। लेकिन सदाका स्वभाव एक दिनमें नहीं जाता। इसीसे विचारालयमें आप छुटकारा पानेके लिए उसने अपनी स्त्रीको हत्याका अपराधी बतलाया। किन्तु इस समय उसके हृदयमें विवेकके साथ कुप्रवृत्तिका एक युद्ध चल रहा है। विवेक सजग हुआ। जिस समय सरस्वती फाँसी पर चढ़नेवाली होती है उस समय वह मन अपने निन्दित नीच जीवनको धिक्कार अवश्य देता है, मगर दोष करनेका उसे साहस नहीं होता। तथापि हृदयमें कोमल प्रवृत्तिके कुछ कुछ अनुभव करनेके कारण वह सरस्वतीकी कल्पित मृत्युसे इधर उधर दौड़ता फिरता है। प्रायश्चित्तके उपरान्त मुन्नीकी कृपासे भी जगन्माताके चरणोंमें स्थान पाता है।

भगवानदासमें अगर मातृभक्ति होती तो उसका सर्वनाश न होता। जैसे ही उसने मातृभक्ति छोड़ी वैसे ही वह नीचे गिरने लगा। उसका वह पतन तेजीके साथ और गहरा हुआ। ग्रन्थकारने भगवानदासके चरित्रमें मातृनिरादार और कर्त्तव्यहीन अन्ध रूपजनित लालसाका भयानक परिणाम दिखाया है।

भगवानदास बंकिमबाबूका गोविन्दलाल नहीं है, नगेन्द्रनाथ नहीं है, योगेश नहीं है। भगवानदास भगवानदास ही है।

भवानीप्रसाद एक निरीह भक्त हिन्दू है। वह स्त्री और कन्याको लिये दूर देहातमे—निरालेमे—रहता था। दुराचारी गौरीनाथ उसकी स्त्रीको झॉसा देकर घरसे निकाल ले गया। इसी दु खसे भवानीप्रसाद ससारत्यागी संन्यासी हो गया। दुर्बलके लिए ईश्वरके चरणोमे नालिश करनेके सिवा और उपाय नही। इसीसे भवानीप्रसाद ईश्वर और जगदम्बाका भजन करता फिरता है। अपने दु खको दबाकर, जीवनके सब अत्याचारोंको भूलकर उसने अपने अस्तित्वको दूसरेके अस्तित्वमे लीन कर दिया है। वह ससारको दर्शककी दृष्टिसे देखता है, किन्तु उसके लिए उसके हृदयमें मानों कुछ यन्त्रणा छिपी हुई है। सभी कुछ न कुछ करते हैं, मगर वह खुद हलन्त अक्षरके नीचे 'हल-चिह' की तरह पड़ा हुआ है—यह कहकर वह अपने हृदयका खेद प्रकट करता है। उसका हृदय सहानुभूति और अनुकम्पाके भावसे भरा हुआ है। वह खूब रसिकता-निपुण और व्यग-प्रिय है। किन्तु उसकी रसिकता विषादसे भरी और व्यंग हृदय-स्पर्शी है। मुन्नीके घरके दर्वाजेके सामने हीरासे मुलाकात हो जाने पर भवानीप्रसादके निर्विकार चित्तमे भी कुछ चचलता उपस्थित होते देखी जाती है। मुन्नी अपना परिचय देकर जब चली जाती है तब रुँधा हुआ सन्तान-स्नेहका सोता भवानीप्रसादके चिरतप्त हृदयको प्लावित कर देता है। उस समय भवानीप्रसाद जो गीत गाता है उससे यह मालूम पड़ता है कि वह अपने उमड़े हुए हृदयके भावको दबानेकी चेष्टा कर रहा है। उसे आशंका होती है कि सन्तानस्नेहकी प्रबल बहियामें कहीं भगवतीकी भक्ति न बह जाय। भवानीप्रसाद एक उदास, अनासक्त, शाक्त पुरुष है।

कालीचरणका चरित्र एक नई ही सृष्टि है। पहले देखनेसे जान पडता है कि कालीचरण जैसे नीमचॉद (एक बगला नाटकका पात्र) हीका दूसरा सस्करण है। किन्तु उसके चरित्रके सम्बन्धमें कुछ आलोचना करनेसे ही यह भ्रम शीघ्र ही दूर हो जाता है। कालीचरण यद्यपि नीमचॉदकी तरह शराब पीता है और Full of quotations है, तो भी वह एक सत्पुरुष है। बुरे सगमे शराब पीता है, मगर बुरे सगमे शामिल नही होता। किसीके काममे दस्तन्दाजी नहीं करता। किसी आचरणसे विचलित नहीं होता। गौरीनाथके यहाँ मुफ्त शराब मिलती थी, इसीसे उसकी सोहबतमे अक्सर कालीचरण देख पडता है। कालीचरण दार्शनिक पुरुषकी तरह मानव-चरित्रको देखना

पसन्द करता है, इसीसे सब तरहके आदमियोंकी सोहबतमें शामिल होता है। लेकिन सभी बातोंमें अपनी स्वतन्त्रताको बनाये रखकर चलता है। निर्लिप्त भावसे अपनी चिन्तामें आप मगन रहकर समय समय पर समयानुकूल दो-एक मन्तव्य प्रकट करके चला जाता है। उन्हें कोई समझे या पागलपन कहकर उड़ा दे, इससे उसका कुछ बनता-बिगड़ता नही।

किन्तु भोलानाथकी भलमनसीने क्रमश कालीचरणके चित्त पर अपना अधिकार जमा लिया। सर्वस्व खोकर ठगे गये भोलानाथकी अवस्था देखकर उसके दार्शनिक हृदयको भी एक धक्का लगा। अब चुप रहनेसे काम नहीं चलता। तब कालीचरणने शिवदयाल और कामताप्रसादसे कहा—Tell the truth and let the world sink. (भलीभाँति और उचित कार्य करो; ससारको डूबने दो—उसकी चिन्ता न करो।)

कालीचरण दर्शक और दार्शनिक है। नीमचाँद पतित है। कालीचरण एक बार भी धर्मके मार्गसे पतित नहीं हुआ। चरित्रगत विभिन्नताके कारण कालीचरण नीमचाँदसे बिलकुल अलग है।

गौरीनाथके समान कृतघ्न नरपिशाच इस मनुष्यसमाजमे अनेक है। धनोपार्जन और इन्द्रियलिप्सा ही उनके जीवनका मूलमन्त्र है। इन दोनो बातोंके लिए गौरीनाथने मनुष्यत्व, दया, धर्म, विवेक आदि मानवहृदयके सब [illegible]को तिलाञ्जलि दे दी। वह शैतानसे भी क्रूर, सर्पसे भी दुष्ट और भिक्षु-[illegible] अधिक चक्षु-लज्जा-विहीन है। उसने खुद कहा है कि ऊपर चढना हो [illegible]के भारी बोझको ठेलकर चढना होगा, नीचे उतरनेके समय बिना परि-[illegible] बोझसे नीचे उतरना होगा। जो उसने कहा वही कार्यद्वारा कर [illegible]।

प्रेमशंकर एक तरफ जैसे कर्त्तव्यपरायण, उपकारी, विश्वस्त और साधु [illegible]ी है, वैसे ही दूसरी ओर हित चाहनेवाला और कृतज्ञ आत्मीय है। न्यायपरायण और स्पष्टवादी होनेके कारण वह कुछ भी छिपा नहीं रखता। जिसको उसने कर्त्तव्य और न्यायसंगत समझा वह करनेमे उसने कभी आनाकानी नही की—किसीका मुँह नही ताका। सुदिन और दुर्दिनमे समान भावसे वह भोलानाथका अनुरागी और आज्ञाकारी रहा। एकाग्रता और एकनिष्ठताके कारण प्रेमशंकरका चरित्र भी आदर्श जान पड़ता है।

दीनानाथ कोमल-हृदय और सरल बुद्धि पुरुष है। वह दुर्दिनका साथी और व्यथितका बन्धु है। लक्ष्मीकी मृत्युशय्याके पास वह रातभर जागता रहा और भोलानाथकी पागलपनकी हालतमे वही उनका साथी रहा। भोलानाथका जमाना जब अच्छा था तब वह उनके पास आया भी नही। किन्तु भोलानाथके घोर दुर्दिनके समय, जब ससारके सब लोगोंने उन्हे छोड़ दिया, उपकृत लोग उपकार भूलकर उनकी निन्दा करने लगे, तब दीनानाथ उनके पास उपस्थित हुआ और अन्ततक घड़ीभरके लिए भी उसने उनका साथ नहीं छोड़ा।

दीनानाथके बीते हुए जीवनके सम्बन्धमे कुछ कहा नहीं गया। लेकिन यह स्पष्ट जान पडता है कि दीनानाथका बीता हुआ जीवन सुखमय नहीं था और बहुओंपर उन्हे विशेष भक्ति नहीं थी। कविने उसके व्यातीत जीवनको पाठकोंके निकट पहेली सा ही बना रक्खा है।

दीनानाथ एक आदर्शचरित पुरुष है। अपने आराम और सुखका उसको खयाल ही नहीं है।

यह निन्बध समाप्त करनेके पहले ग्रन्थकारकी रसिकता या हँसी-मजाकके सम्बन्धमे कुछ आलोचना किये बिना आलोचना असमाप्त ही रह जायगी। द्विजेन्द्रलालकी रसिकता या विनोदप्रियता देशभरमे प्रसिद्ध है। किन्तु इस नाटकमें जिस रसिकताकी अवतारणाकी गई है वह बिलकुल नये ढंगकी है। इस रसिकताके दो विभाग किये जा सकते हैं। एक श्रेणीकी रसिकता तो मानों प्रात कालकी अरुण-किरणोंमें तरह तरहकी रगीन पताकाये हैं। और, दूसरी श्रेणीकी रसिकता मानो अन्त्येष्टिसमयकी बडी भारी काली पताका समवेदनाके गहरे दु:खसे सिर झुकाये हुए सकुन्वित भावसे खड़ी है। यह सर्ववादिसम्मत है कि हँसी और आँसू, सरलता और गाभीर्य, मधुर और करुणका एकत्र समावेश करनेमे द्विजेन्द्रलालके समान और लेखक नहीं है। किंतु ऐसी करुण-गम्भीर रसिकता शायद आजतक और कोई कवि न लिख सका होगा। इस नाटकमे कविने अपनी रसिकताका चरम विकास दिखा दिया है। भोलानाथ और भवानीप्रसादकी रसिकतामे विशेषता यह है कि मुहमे हँसी और आँखोंमे आँसू देख पडते है।

इस नाटकके गान बहुत ही अच्छे हैं। ग्रन्थमें स्थान स्थान पर समयोपयोगी खूब ऊँचे भावोंकी अवतारणा की गई है। ग्रन्थकी भाषा ओजस्विनी और भाव उपयोगी हैं।

केवल आदर्शचरित्र ही नाटकमें अंकित होने चाहिए-इसके कुछ माने नहीं। शेक्सपियरके श्रेष्ठ नाटकोंके नायकोंमेंसे कोई भी आदर्शचरित्र नहीं है। शकुन्तलाके दुष्यन्त या उत्तरचरितके राम भी आदर्शपुरुष नहीं हैं। उत्कृष्ट नाटक वही है, जिसमें घटना-संघातद्वारा चरित्रका आन्दोलन दिखाया जाय। किन्तु आदर्शचरित्र बहुत कुछ निर्विकार ही होता है। हाँ, यह बात अवश्य है कि अधम चरित्रवाले नायकको लेकर नाटककी रचना नहीं होती। भोलानाथका चित्र मनुष्यजातिका आदर्श बनाकर चित्रित नहीं हुआ। वे एक भले आदमी थे।—सिर्फ यही दिखाया गया है।

श्री अधरचन्द्र मजूमदार।

उस पार।

पहला अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—लक्ष्मीका घर।

समय—प्रात काल।

[घरके ऑगनमें, लक्ष्मी, उसका बूढा परोसी दीनानाथ और परोसिनें बैठी हैं।]

लक्ष्मी—आज मेरे वडे आनन्दका दिन है। आओ। इस आनन्दमे शरीक होओ। आज मेरे वडे आनन्दका दिन है।

पहली परोसिन—सो तो होना ही चाहिये। छोटे लडकेका व्याह हुआ है फिर आनन्द क्यों न होगा?

दूसरी परोसिन—वडी अच्छी वहू है। चोद ऐसी वहू है!

तीसरी परोसिन—अंधेरे घरमें उजियाला करनेवाली वहू है!

पहली परो०—क्योजी ! वहूका वाप क्या काम करता है ?

दीना०—वहूके वाप मा कोई नहीं है ।

दूसरी परो०—फिर कौन है ?

दीना०—वहूके दादा (वावों) है ।

तीसरी परो०—और दादी ?

दीना०—दादी भी नहीं है ।

पहली परो०—आहा ! तो वेचारीकी देखभाल करनेवाला कोई नहीं है ।

दीना०—दादा है । वहूके मा-वाप भी इस तरह उसकी सेवा और देखभाल नही कर सकते थे जितनी कि उसके दादा इतने दिनों से करते आ रहे है ।

दूसरी परो०—हाँ !

दीना०—वूढा दिनरात उसे अपनी छातीसे लगाये रहता था; अपने हाथसे खिलाता-पिलाता था, और कहते कहते मेरी आखोंमे ऑसू भरे आते है—

तीसरी परो०—क्यों जी !

दीना०—मै भी वूढा हो आया हूँ, लेकिन भोला दादा ऐसा वूढा न कभी नहीं देखा । इधर तो दान देते देते फकीर हो गया है और उधर मानो साक्षात् स्नेहकी मूर्ति है । उस स्नेहका प्राण यह पोती है। एक दिन–जब उसकी यह पोती चार वरसकी होगी–मै सवेरे वूढेके पास गया । देखा कि वूढेके मुँहमे रस्सी वॉधकर, उसकी पोती, उसकी पीठ पर सवार है, और एक संटी हाथमे लिये हुए ' हट हट ' कहती हुई सटकार रही है । वूढा घुटनोंके वल वरामदे भरमे पोतीको सवार किये घूम रहा है ।

लक्ष्मी—आहा ?

प० परो०—कहते क्या हो जी । तब तो बूढा पूरा पागल है ।

दू० परो०—जरूर पागल है ।

ती० परो०—चाहे जो हो, खासी बहू तुमने पाई है दीदी !

दीना०—बहू पाई है, लेकिन शायद लड़का हाथसे खो दिया बहन ।

लक्ष्मी—यह क्या कहते हो भैया—ऐसा लड़का—वह तो मेरे सिवा किसीको जानता भी नही ।

प० परो०—माके ऊपर जान देता है ।

दू० परो०—समझदार है !

ती० परो०— पढा लिखा है ।

दीना०—चाहे जितना समझदार हो, माका चाहे जितना ख्याल रखता हो—पर ब्याह हो जाने पर लड़का फिर वैसा नहीं बना रहता ।

लक्ष्मी—ना ना, यह बात न कहो भैया । मेरा ऐसा लड़का—

प० परो०—अपने हाथो पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है ।

दू० परो०—उसकी मादगी-बिरामीमे रात-रातभर जागकर अपनी देह खपाई है ।

ती० परो०—नव महीने पेटमें रक्खा है ।

लक्ष्मी—कहते क्या हो भैया ! सदासे वह माके सिवा और किसीको नहीं जानता । आज जब मै मौतके मुँहका कौर बन रही हूं तब वह मुझे छोडकर गैर बन जायगा !

दीना०—तुम्हारी इधर भी मौत है, और उधर भी मौत है ।

(प्रस्थान)

प० परो०—ये कैसी कुलच्छनी बाते है ।

लक्ष्मी—ऐसा लडका गैर हो जायगा !—क्योजी !

ती० परो०—ऐसी बाते सुनती क्यो हो बहन !

लक्ष्मी—यही अगर हो, तो हो। वह तो सुखी होगा।

दू० परो०—सुखी क्यो न होगा ! ऐसी चाँद ऐसी बहू जो पाई

प० परो०—जैसे साक्षात् लक्ष्मी है।

दू० परो० शिव-पार्वतीका ऐसा जोडा है !

[भगवानदासका प्रवेश।]

लक्ष्मी—वह बच्चा आगया !—मुँह जैसे सूख गया है।

परोसने—तो अब हम जाती है बहन।

लक्ष्मी—जानेके लिए कैसे कहूँ !

(परोसकी स्त्रियोका प्रस्थान

लक्ष्मी—तेरा मुँह सूखासा देख पडता है ! तबियत कैसी है

भग०—तबियत अच्छी है—तुमने अभीतक भोजन नहीं किय

लक्ष्मी—नही बेटा।

भग०—तो जाकर भोजन करो। नही तो तुम्हारी तबियत ख

हो जायगी।

लक्ष्मी—इतने सुखमे तबियत कैसे खराब हो जायगी !—

बहू पसंद है ?

भग०—तुम पहले जाकर भोजन करो। नही तो मै तुम्हारी

बात नहीं सुनूँगा।

लक्ष्मी—जाती हूँ।—यह क्या, तेरी आखोंमे आसू कैसे देख प

है।—क्या हुआ है बेटा !

भगवान०—मा !

लक्ष्मी—क्यो बेटा !

भगवान०—मैया ! (माताकी छातीमें मुँह छिपाना)

लक्ष्मी—(कंपित स्वरसे) क्या है बेटा ! रोता क्यो है ?

भगवान०—नहीं मैया ! लेकिन यह क्या हुआ मैया ! आज चित्त इतना व्याकुल और उचाट क्यो हो रहा है ? कोई जैसे मुझे तुम्हारे पाससे छीन कर ले जाने आया है । घरमे चोर घुस आया है ।—मुझे छोडो नहीं मैया ।

लक्ष्मी—तू यह क्या कह रहा है बेटा ! यह क्या ! तू तो रो रहा है—

भगवान०—मालूम नहीं—क्यों !—नहीं मा, आओ भोजन करो । मैं आज तुमको अपने आगे बिठाकर खिलाऊँगा ।

लक्ष्मी—क्यो !

भगवान०—मेरा यही जी चाहता है ।—आओ मा ।

(दोनोंका प्रस्थान ।)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—भोलानाथके महलका एक कमरा ।

समय—सन्ध्या ।

[भोलानाथ और सरस्वती ।]

भोला०—क्यो ! दूल्हा पसद आया !

सर०—जाइए !

भोला०—जाऊँगा तो अवश्य ही ! जानेको तो बैठा ही हूँ । दो दिनकी देर सही नहीं जाती ?—दूल्हा पसंद आया ?

सर०—जाइए ! मैं अब आपसे नहीं बोलूँगी ।

भोला०—मुझसे अब क्यो बोलेगी !—सरस्वती !

सर०—दादा !

भोला०—मुझे पहलेकी तरह प्यार करेगी ?

सरस्व०—करूँगी ! जबतक जियूँगी, प्यार करूँगी ।

भोला०—वैसे ही गलेसे लिपटकर दादा कहकर पुकारेगी ? वैसे ही भोजनके समय पास आकर बैठेगी ? वैसे ही प्यार करके—

सरस्व०—दादा !—मेरे चले जानेसे आपको दुःख होगा ?

भोला०—तुझे क्या जान पडता है ?

सरस्व०—तो भी पूछती हूँ, जवाब दीजिए । बडा कष्ट होगा ?

भोला०—कष्ट !—दोनो आँखे फूट जानेसे मनुष्यको कैसा कष्ट होता है सरस्वती ? तेरे मा भी नहीं थी, बाप भी नहीं था; तुझे अपने हाथसे खिला-पिलाकर इतना बडा किया है। तेरे मुहकी तरफ टकटकी लगाकर देखता रहा हूँ—आँखे चौंधिया गईं तो भी देखनेसे जी नहीं भरा। तुझे कलेजेसे लगाकर रक्खा है—इतने प्यारके जोशमे कलेजे लगाया है कि तू नींदकी खुमारीमे चिल्ला उठी है। उसके बाद बिछौनेपरसे उठकर बरामदेमें टहल टहलकर मन ही मन सोचता रहा कि किसे इतना प्यार कर रहा हूँ ? और क्यो कर रहा हूँ ?—यह मेरी कौन है ? अपने कलेजेका खून पिलाकर काली नागिन पाल रहा हूँ। जब यह चली जायगी तब जिस हृदयमे मै इसे चाहता हूँ उसीको डस कर चली जायगी। मै यन्त्रणासे छटपट करूँगा, और यह एक बार फिरकर देखेगी भी नहीं।

सर०—दादा ! मै ससुराल न जाऊँगी।

भोला०—तूने तो कह दिया कि न जाऊँगी, लेकिन वह कब छोडेगा।—उसने मानो दाम देकर मोल ले लिया है, अब रस्सीसे बाँधकर खींचता-घसीटता हुआ ले जायगा।

सर०—मेरा ब्याह क्यों किया था दादा ?

भोला०—आगे चलकर तेरी समझमे आजायगा कि क्यों तेरा ब्याह किया, क्यो अपना हृदय अपने हाथोसे निकालकर फेक दिया; क्यों अपनी दोनो ऑखे निकाल कर फेक दीं। एक दिन यह सब तेरी समझमे आजायगा।

सर०—क्यो ब्याह किया था ?

भोला०—तेरे ही सुखके लिए बेटी।

सर०—मेरा सुख ? इस ब्याहसे मुझे सुख नही मिलेगा।

भोला०—यह क्यो बेटी !

सर०—सो तो मै नहीं जानती। लेकिन मेरा जी यही कह रहा है।—दादाजी ! मै आपको छोडकर न जाऊँगी।

भोला०—जायगी क्यो नही ! सिर्फ जायहीगी नहीं !—एक सालके बाद उलटे कहेगी—मै दादाजीके पास लौट कर न जाऊँगी।

सर०—हि—

भोला०—तब देख लेना !—तब दिन-रातमे एक बार भी तुझे अपने बूढे दादाकी याद न आवेगी।

सर०—मै नही जाऊगी। दादाजी ! मै आपको छोडकर न जाऊंगी। (गलेसे लिपट जाती है।) मै नही जाऊंगी।

भोला०—जायगी नही ! मुझे कष्ट न होगा बेटी, तू जा। सह जायगा।—सह जायगा। तेरे चले जाने पर मै क्या करूंगा, जानती है ?

सर०—क्या करिएगा ? आत्महत्या करिएगा ?

भोला०—हिश् ! तेरे लिए मै आत्महत्या करूंगा ! बडा गुमान है !—और तेरे विछोहमे मै 'कहो गई सरस्वती, कहो गई सरस्वती' कहकर रोता हुआ रास्तोमें दौडता नही फिरूंगा—

सर०—तो क्या करिएगा ?

भोला०—इस विना साथीके बिल्लीके बच्चेकी तरह मै आप अपनी ही पूँछके साथ खेला करूँगा। (ऑखोंसे ऑसू पोछना।)

सर०—नही दादाजी, मै आपको छोडकर न जाऊँगी। (गलेमे लिपट कर) दादाजी !

भोला०—यह कैसा तुम्हारा नियम है दयामय ! एकको दु:खी किये विना क्या तुम दूसरेको सुख नहीं दे सकते ! यह भुज-बन्धन[१] अपने हाथसे तोड़ना पड़ता है। बेटीके सदाके आश्रय-रूप इस हृदयसे उसे आप ही निकाल कर पराये द्वारकी भिखारिणी—पराये घरकी दासी—बनाना पड़ता है।—ना, तू यहीं रह। कहॉ जायगी ! मेरा घर अँधेरा करके, हृदय खाली करके, प्राण शून्य करके, कहॉ चली जायगी बेटी ! ना, मैं तुझे छोड़कर नहीं रह सकूँगा ! (सरस्वतीको गलेसे लगा लेना।)

[दरवानका प्रवेश।]

दरवान—हुजूर ! कुछ बाबू लोग आये है।

भोला०—क्यों ?

दरवान—यह नहीं मालूम सरकार।

भोला०—इस समय उनसे चले जानेके लिए कह दे।

दरवान—जो हुक्म ! (प्रस्थान)

भोला०—सरस्वती !

सर०—दादाजी !

भोला०—बदली हो आई है ?—देख तो।

सर०—(देखकर) कहॉ, नहीं तो।

भोला०—ओह !—मेरी ही भूल है !—सकट्र !

[सकठूका प्रवेश।]

भोला०—नहीं कुछ नहीं।--जाओ।--

(सकठूका प्रस्थान।)

सर०—दादाजी! आप यह क्या कर रहे है?

भोला०—(हँसकर) कहाँ--कुछ भी नहीं!--अच्छा सरस्वती, तो तू कल जायगी?—

सर०—कहती तो हूं दादाजी!—मै नहीं जाऊँगी।

भोला०—यह भी कहीं हो सकता है!—व्याहके बाद सुसराल जाना ही पड़ता है। उसके बाद फिर तू यहाँ आजायगी। तेरा दादा इसी तरह तेरी राह देखा करेगा।

[दरवानका प्रवेश।]

दरवान—गुमाश्ताजी आये है।

भोला०—क्यो?

दरवान०—मुलाकात करना चाहते हैं।—

भोला०—इस समय नहीं हो सकती!

दरवान—उन्होने कहा है, वडा जरूरी काम है।

भोला०—इस समय नहीं होगी। जानेके लिए कह दे।—

(दरवानका प्रस्थान।)

भोला०—इस समयको व्यर्थ नहीं गवाँ सकता। इस समयकी हरएक घडी पवित्र है। यह समय वर्षाऋतुके आकाशमें धूपकी उज्ज्वल चमकके समान वहुत देर तक नहीं रहेगा! कल दीपक बुझ जायगा। सब तरफ अन्धकार छा जायगा!

[प्रेमशंकरका प्रवेश।]

भोला०—कौन! प्रेमशंकर!—क्या खबर है?

प्रेम०—शिवदयालु आये है।--नीचे बैठे हैं।

भोला०—ओः !—उन्हे लडकीकी शादी करनी है। ठीक है, मैने उनसे आज आनेके लिए कहा था।—प्रेमशंकर! जाकर उन्हे ५०००) रुपये दे दो।

प्रेम०—लिखापढ़ीके लिए वे तमस्सुख नहीं लाये है।

भोला०—कुछ जरूरत नहीं।—भले आदमी है!

प्रेम०—मनुष्यका इतना विश्वास न कीजिए साहब!

भोला०—क्यो! मनुष्यका विश्वास न करूँ! ईश्वरकी श्रेष्ठ सृष्टि, पृथ्वी पर भगवानके अवतार, सब गुणोंके आधार मनुष्यका विश्वास न करूँ! जिस रूपमें हम देव देवियोके स्वरूपकी कल्पना करते है उसको अविश्वास करूँ! जगतके प्रभु, समाजके शासक, सभ्यताके पुत्र, धर्मके स्थापक, ज्ञानके गुरु, स्वार्थत्यागके शिष्य, स्नेहके दास, मनुष्यका विश्वास न करूँ? कहते क्या हो प्रेमशंकर! तो फिर क्या पशुका विश्वास करूँ?

प्रेम०—बहुतसे मनुष्य ऐसे है, जो पशुओसे भी अधम है।—[illegible] पर अत्याचार करते है, बन्धुओका सर्वनाश करते है, [illegible] है, बूढे बापको धक्का देकर इस संसारमे निकालना चाहते है—

भोला०—छी छी! मनुष्यकी निन्दा मत करो। मनुष्य [illegible] है। मै मनुष्यकी निन्दा नहीं सुनना चाहता।—जाओ, गुमाश्तेसे [illegible] दो—

प्रेम०—लेकिन—

भोला०—जाओ भैया!

(प्रेमशंकरका प्रस्थान।)

भोला०—सरस्वती!

सर०—क्यो दादाजी!

भोला०—बात क्यों नहीं करती ?—चुप क्यों है ?

सर०—क्या बात करूँ दादाजी ?

भोला०—क्या बात करेगी !—यह भी ठीक है । अब जितनी बातें है सब उसी नई मूछ, घुंघराले बाल और टेढी माँगके साथ होगी ।—क्यों ?

सर०—जाइए ।

भोला०—मेरे साथ तो बस यही एक ही बात है—'जाइए'। कहाँ जाऊँ ? तुझे छोडकर कहीं जानेको जी नहीं चाहता । तेरी यह मीठी आवाज बिहाग-रागकी तरह आकर जैसे मेरी ऑखोको चूम लेती है, देह मानो किसी नशेमें ढाली पड जाती है और इतनेहीमे जैसे दो कोमल गोल गोल भुजाये फूलमालकी तरह मेरे गलेमें आकर पड जाती है !—क्यों कैसी कविता की !

सर०—वाह !—आप कविता क्यो नहीं लिखते दादाजी !

भोला०—तुक नहीं मिलती—अगर कोई तुक मिला देता, और अक्षरोका हिसाब रखता, तो मै एक बहुत बडा कवि हो जाता । लेकिन तुक नहीं मिलती ।

सर०—क्यो—बेतुकी कविता लिखिए ।

भोला०—बेतुकी कविता करनेवाले अनेक है । बेचारे बडे परिश्रमसे बेतुकी कविता करते है । क्या मै उनकी कीर्तिमे साझा लगाऊँ !—इसीसे नहीं लिखता ।

सर०—इसे देशका और मातृभाषाका सौभाग्य समझना चाहिए !

भोला०—वह सूर्य अस्त हो गये !—देख उधर देख सरस्वती !—आकाशमे जैसे कोई तरह तरहके रंगोका जाल बुन रहा है ।—कैसा सुंदर दृश्य है !

सर०—(देखकर) वाह, कैसा सुन्दर है !

भोला०—कल शामको इसी छतके ऊपर मेरे और इस आकाशके बीचमे ढेरका ढेर अन्धकार ही होगा ।—वह सुन सरस्वती ।

सर०—क्या दादाजी ?

भोला०—गाना सुन पड़ता है ?

सर०—(कान लगाकर) हाँ—(आग्रहके साथ) कौन गा रहा है दादाजी ?

भोला०—यह भवानीप्रसाद, एक कालीका उपासक भक्त है । मैंने इसे अपने पास रख लिया है—विचित्र मनुष्य है !

सर०—कैसे !—

भोला०—बहुत बातचीत नहीं करता । वह देखो, अपनी धुनमे मस्त होकर गाना गाता जाता है । जैसे उसने अपना सारा हृदय, अपना यह लोक और परलोक इसी गानेमे ढाल दिया है ! वह देखो, ते गाते इधर ही आरहा है ।—सुन ।

(गाते गाते भवानीप्रसादका प्रवेश और प्रस्थान ।)

भूप—तिताला ।

अबकी तोहि पहिचान्यो श्यामा, अब मैं तोहि छोड़ौं ।
भवके दुःख जलन सब भूल्यो, तोसों नाता जोड़ौं ॥ अब० ॥

गोरखधंधा बीच फसायो, माता होय रुआयो ।
बाल-बिलाप सुने माताकी ममता हिय भरि आयो ॥ अब० ॥

हाथ गह्यो मेरो, मैं भैया भीति भावना भूल्यो ।
आसू पोछि गोद मोहि लीन्हो हृदय हँसि फूल्यो ॥ अब० ॥

भवसागर भटक्यो, नहिं पायो तिहिको कूल-किनारा ।
देखि ध्रुवतारा तू तारा, पायो सहज सहारा ॥ अब० ॥

भोला०—पृथ्वी पवित्र होगई—मेरा हृदय जगदम्बाकी भक्तिसे भर गया ।—सरस्वती ! (सरस्वतीके गलेसे लिपट जाना ।)

सर०—दादाजी ! (एक हाथ भोलानाथकी कमरमे डालकर दूसरे हाथसे कपडेसे आसू पोछना ।)

तीसरा दृश्य ।

स्थान—गौरीनाथके घरका बाहरी बैठकखाना ।

समय—रात्रि ।

[गौरीनाथ, प्रेमशंकर और कालीचरण बैठे हैं ।]

गौरी०—दुनियाभरके लोग भोलानाथके गुण गाते देख पड़ते है ! उसकी जमींदारीकी ऐसी आमदनी है, इतनी आमदनी है ! फिर पोतीके ब्याहमे क्यों ऋण लिया था ?

प्रेम०—मौका पडने पर ऋण दिया भी जाता है, लिया भी जाता है।

गौरी०—उन्हे उधार देते तो कभी नही देखा लेते ही देखा हैं ।

प्रेम०—वे उधार कम देते है,—देते है तो एकदम दे डालते है।

गौरी०—एकदम दाता कर्ण है !

प्रेम०—और नहीं तो क्या !

गौरी०—दो दिनो बाद हाथ धोकर राहमे बैठना पडेगा, और क्या।

कालीचरण—बहुतोके हाथ धोनेसे ही साफ हो जाते है ।--'साफ' शब्दका यहा पर मै विकल्पमे व्यवहार करता हूं, याद रक्खो प्रेमशंकर !--और बहुतोके (गौरीनाथकी ओर इशारा करके)हाथ समुद्रके जलमे धोनेसे समुद्रका जल लाल हो जाता है, लेकिन हाथका दाग नही जाता ।—साधुभाषा कह रहा हूं, क्यों न ? शेक्सपियरने कहा है—The multitudinous seas incarnadine, (विराट्

आरक्त समुद्र) खूब कहा है—लेकिन बहुत ही जटिल संस्कृतमें कहा है। मेरी यह उक्ति खालिस हिन्दी है। और—

गौरी०—मगर जान रक्खो, राहमे बैठनेमे अब अधिक विलम्ब भी नहीं है। मै—

प्रेम०—राहमे बहुत लोग बैठते है। पर अन्तर इतना है कि जो दान देकर इस दशाको पहुँचता है वह राहमे बैठता जरूर है, लेकिन सिंहासनके ऊपर बैठता है—राह चलनेवाले लोग उसे देखकर, उसके आगे भक्तिभावसे घुटने टेककर उसकी पूजा करते हैं। बहुत लोग दान न करके भी इस दशाको पहुँचते है। वे जब राहमे बैठते हैं तब राह-चलते सियार-कुत्ते भी उनके लात मारकर चले जाते है।

गौरी०—दान ! दान ! दान ! भोलानाथने दान करके किया क्या है ! मैने ऋण देकर जमींदारी खरीदी है और वे दान करके जमींदारी खो रहे है—यही बात है न !

प्रेम०—उन्होने जमींदारी बेशक नही खरीदी, लेकिन उन्होने भी [illegible]ा है।

[illegible]री०—क्या !

[illegible]म०—कीर्ति !

गौरी०—कीर्ति क्या है ? कुछ नहीं। फः ! हवा है। [illegible] [illegible]ी है। कुछ नहीं होता। मगर जमीन ए[illegible] [illegible] चीज है—जोतने बोनेमे उसमे फसल पैदा होती है।

काली०—यह तो गौरीनाथ तुमने खूब कहा भाई ! '[illegible]' के साथ कहा है। पोपने कहा है कि solid pudding against empty proise. (कोरी प्रशसाके बदले तर हलवा) लेकिन कीर्ति

फू: ! हवा है । फुससे उड जाती है—खूब ! गौरीनाथ ! shake hands (हाथ मिलाना ।)

प्रेम०—आप जानते है. वे सबेरे सारी आमदनी दान-पुण्यमे खर्च किये बिना पानी नही पीते !

गौरी०—डाहके मारे ।

प्रेम०—डाह आप करते है । भोलानाथजीकी बड़ाई सुनते ही आपका चेहरा क्यो मलीन हो जाता है ?

काली०—But envy withers at anothers joy and hates the excellence it cannot reach. (द्वेष दूसरेकी प्रसन्नतासे म्लान हो और अपनी पहुँचके परे श्रेष्ठतासे घृणा करता है ।)

प्रेम०—भोलानाथजी तो आपसे डाह नहीं करते ।

गौरी०—अजी मन-ही-मन करते हैं, केवल मुँहसे बुराई नहीं करते । बूढा बडा पाजी है ।

प्रेम०—खबरदार, भोलानाथजीको पाजी न कहना !—मै इसे सहन नही करूगा ।

गौरी०—क्या ! मारोगे क्या !

प्रेम०—जरूरत पडे तो इसमे भी कम नहीं हूँ ।—जाने रहना

गौरी०—हिश् ! तुम्हारी इतनी मजाल नहीं है ।

प्रेम०—तो देखोगे ! (आस्तीन चढाता है)

काली०—अरे करते क्या हो ! यह बिल्कुल दार्शनिक अवस्था नही है । तर्क करके मीमासा करो । इससे आगे मत बढो ।

प्रेम०—ना. तुमसे हाथापाई करना मेरे लिए लज्जाकी बात है ।—तुम भी क्या आदमी हो ।

कालो०—आहा—God made him. (ईश्वरने अपने हाथसे बनाया है।)

[शिवदयालु और कामताप्रसादका प्रवेश।]

प्रेम०—अब यह पूरा पूरा शैतानका दरबार हो उठा।

(क्रोधपूर्वक प्रस्थान।)

शिव०—मामला क्या है!

गौरी०—यह बदमाश मेरे घर पर मुझसे झगडा करने आया है... कहता है, मारूँगा।—आ न (आस्तीन चढ़ाते हुए) आ न, पाजी।

काली०— Why गौरी this is worse than quixotic (गौरी, तुम तो डान कुइकजोटासे भी बढ गये।)Don Quixote गये थे युद्ध करने wind mill (पवन-चक्की) के साथ। लेकिन तुम युद्ध करने जारहे हो—wind (पवन) के साथ।

गौरी०—अच्छा, और किसी दिन देख लूँगा (बैठ जाता है।)

काली०—यही अच्छा है—said like a wise man (सम ... बात कही।)

गौरी०—(शिवदयालुसे) अच्छा। उधरकी खबर क्या है?

शिवदयालु—नीलाम पर चढ गया है। २५ नं० लाट कमलापुर। २७ जुलाई तारीख है।

गौरी०—यह मालूम है! नीलामी इश्तिहार न जारी होगा!

शिव०—नहीं जारी होगा। इसका भी इन्तजाम कर लिया है।

गौरी०—वाहवाह, क्या बात है! अच्छा तो तुम इस समय जाओ। मै जरा एटर्नीके पास जाऊँगा।

शिव०—क्यों, मै ही चला जाता हूँ।—बतलाओ न, क्या करना होगा!

गौरी०—इस समय तुम्हे और कोई काम नही है ?

शिव०—मुझे और काम ! मेरा यही तो काम है ।

गौरी०—अच्छा तो यह कागज ले जाओ । दस्तखत किये देता हूं । और सब वह जानते है । लो । (वक्स खोलकर कागज निकालना और शिवदयालुके हाथमे देना ।)

(शिवदयालुका प्रस्थान ।)

काली०—For Satan finds some mischief still for idle hands to do (शैतान सदा कुछ न कुछ शैतानी आलसियोके लिए ढूंढ ही निकालता है ।)

गौरी०—(कामताप्रसादसे) इधरका क्या हाल है ?

कामता०—सब ठीक है ।

गौरी०—कितना मॉगता है ?

कामता०—बहुत नहीं; (कानमे) बहुत ही सुन्दरी है ।

गौरी०—रूप-रग अच्छा है ?

कामता०—ओः ! एक अच्छा, एक बहुत ही अच्छा !

गौरी०—तो ठीक कर डालो ।

कामता०—अच्छा तो मै जाता हूँ । एक जरूरी काम है ।

(प्रस्थान ।)

काली०—कहता हूं—उधर न झुको गौरीनाथ ।—घरमें बैठकर ब्राडी पियो—बस ! लेकिन औरत—तुम जानते नही हो—

What dire offence from amorous causes springs,
What mighty contests rise from trivial things

(कामुकताके कारण बडे बडे दारुण उत्पात हो जाते हैं । छोटी बातोके चलते चलते बडे बडे युद्ध ठन जाते है ।)

(प्रस्थान ।)

गौरी०—मै सिरके बालकी नोकसे पैरोकी उँगलीके नाखून तक बदमाश हूँ ! क्या काम नहीं कर सकता ।—चोरी ? जहाँतक संभव है, यह चोरी ही है ! इश्तिहार रद करके यह जमींदारीकी चोरी है।—सो यह सभी करते रहते है । दुनियामे दौलत और जमीन जमा करनेके लिए इसकी जरूरत पड़ती ही है । महफिलमे खड़े होकर घूँघट काढना कैसा !—और इधर ? मनोरञ्जन भी चाहिए ही ।—इससे भी बढकर बहुतसे खराब काम किये है । एकदिन—

[हीराका प्रवेश ।]

हीरा—यही है !

गौरी०—(चौंक कर) कौन हो तुम ?

हीरा—कौन हूँ मै !—आँखे खोलकर देखो, पहचान पाते हो कि नहीं । (लैंप उठाकर उसकी रोशनी अपने मुँह पर डालती है ।)

गौरी०—(विस्मयके साथ) हीरा !

हीरा—पहचान लिया ?

गौरी०—तुम यहाँ कहाँ ?

हीरा—पागलखानेसे आई हूँ !

गौरी०—पागलखानेसे ?

हीरा—हाँ पागलखानेसे । वहाँ मै क्यों गई थी, सुनोगे ?

गौरी०—क्यो गई ?

हीरा—तुम्हारी ही असीम कृपासे ।—सुनोगे ?

गौरी०—क्या ?

हीरा—अपनी दयाकी कहानी ! उसके हरएक अक्षरमे टपटप करके खून टपक रहा है । उसकी हरएक लाइन एक एक शैतानका जीवनचरित है । अच्छा सुनो । तुम जब उस कठोर जाड़ेमें नंगा और

अन्नके विना मुझे एक फटे कंबलके साथ उस टूटे खंडहरमें छोड़ आये थे तभी मैं पागल हो जाती—केवल अपने नन्हेसे बच्चेका चाँदसा मुखड़ा देखकर ही मै होशमे बनी रही। लेकिन उस गाढे अन्धकारमे मेरे जीवनका सहारा वह दीपक भी बुझ गया। मेरा बच्चा उस माघ-पूसके कड़े जाडेमे भूखके मारे तड़प-तड़प कर मर गया। मै अपने शरीरकी गर्मीसे घेरकर उसकी रक्षा करती थी—कलेजा निचोड़ निचोडकर बूंद बूंद दूध निकालकर उसे पिलाती थी। लेकिन जिसने खुद तीन दिनसे कुछ खाया पिया नहीं, उसके शरीरमें गर्मी कहाँ ? उसके कलेजेमें दूध कहाँ ? मेरा बच्चा सर्दीसे अकड़कर, भूखसे तड़पकर, मर गया। (स्वर काँपने लगता है)

गौरी०—इसमें मेरा क्या !

हीरा—तुम्हारा क्या !—हाँ—सो ठीक ही है, इसमे तुम्हारा क्या ! —वह तो तुम्हारी सन्तान न थी। वह मेरी आँखोका तारा, मेरे आँचलका रत्न, मेरी गोदीका लाल, मेरा सर्वस्व था। (रोना)

गौरी०—तो अब रोनेसे क्या होगा !

हीरा—कुछ नहीं होगा। रोनेसे कुछ होगा, यह आशा करके लोग नहीं रोते। रुलाई आती है, इसीसे लोग रोते है। मै रोरोकर तुम्हारा हृदय गलाने नहीं आई हूँ। तुम्हारे पास आश्रयकी भीख माँगने नहीं आई हूँ। एक दिन था जब तुम यदि एक शीशी लवेंडरकी खरीद कर ला देते थे तो उसे मै सिरआँखोसे लगा, ले लेती थी। लेकिन आज तुम अगर कुबेरकी संपदा लाकर मेरे पैरों पर रख दो, तो मैं उसे लात मारकर चली जाऊँगी।

गौरी०—तो फिर यहाँ क्यों आई हो ?

हीरा—मरनेसे पहले तुम्हारी कीर्त्ति तुमको सुनाने ।—सुनो ! जब मैने देखा—मेरा बच्चा न रोता है, न हिलता है, न आँखे खोलता है—तब मैं चिल्लाकर रो उठी—इतने जोरसे चिल्लाई कि शायद पृथ्वी पर आजतक कोई भी उतने जोरसे न चिल्लाया होगा। लेकिन किसीने वह मेरा चिल्लाना नहीं सुन पाया। जान पडता है, शीतकालके कोहरेने राहमे चिल्लाहटका गला दबा दिया। उसके बाद वहीं बच्चेकी लाश गोदमे लिये मै इधर उधर दौडने लगी। एक जगह ठोकर खाकर गिर पड़ी। जब होश आया तब मैने अपनेको पुलिसके हाथमे पाया। मेरे बच्चेकी लाश मेरी गोदमे नही थी। इसके बाद पुलिसके सिपाही मुझे अदालतमे हाकिमके पास ले गये। डाक्टरने मेरी जाँच की। मुझसे न जाने क्या क्या सवाल किये—कुछ समझमे नही आया। मैने क्या जवाब दिया, सो भी कुछ याद नही है। उसके बाद हाकिमने मुझे एक बड़े भारी मकानमे भेज दिया। पीछे माळूम पडा, वह पागलखाना है। दस वर्ष तक वहीं रहकर परसो वहाँसे निकलकर आई हू।—यही कीर्ति है।

[illegible]०—इसमें मेरा कोई दोष नही है।

[illegible] ना, तुम्हारा दोष नहीं है। सब दोष इसी बदनसीब [illegible]तिका है। सब दोष मेरा है। दोष मेरा है, जो मैने तुम पर [illegible] किया। दोष मेरा है, जो मैने धर्मको तिलाजलि दे दी। दोष [illegible]रा है, जो तुम्हें बेखबर सोते पाकर भी गला दबाकर तुम्हारे [illegible] पापी जीवनका अन्त नही कर डाला।

गौरी०—क्या बकती है पागल औरत !

हीरा—(हँसकर) ओः! अभीसे सफाई तैयार कर रहे हो !—मै पागलखानेसे निकलकर आई हूँ, लेकिन अब पागल नहीं हूं।

डाक्टरने परीक्षा करके कह दिया है कि अब मै पागल नही हूँ । मुझे वहांके अफसरोंने छोड दिया है । पागलका प्रलाप बताकर ऐसे एक भयानक सत्यको, ऐसे एक निष्ठुर परित्यागको, ऐसी और इतनी बड़ी पिशाचलीलाको उडा देना चाहते हो ! आग कहीं फूसके दबाये दबती है !

गौरी०—(नर्मीके साथ) हीरा !—

हीरा—डरो नहीं, इस बातको मै संसारमें प्रकट नहीं करूँगी । अदालतमें विचार होनेसे तुमको केवल जेल होगी !—बस सब खतम हो जायगा । तब अपने कलंककी बात प्रकट करनेसे क्या लाभ ! मै अगर रास्तेमें खडे होकर चिल्लाकर कहूँ कि "तुमने एक हृदयको तोड़ डाला है, एक जीवनको मरुभूमिके समान उजाड़ बना दिया है, एक कुलकामिनीको डुबा दिया है," तो यह संसार हँसकर उस बातको उड़ा देगा । कहेगा, "तुमने आप अपना सर्वनाश किया है; उसका दोप क्या है । शिकारीका रोजगार ही हत्या करना है । पुरुषका स्वभाव ही स्त्रीका सर्वनाश करना है । तुमने क्यो अपनेको फँसा दिया ! "— तुमको कोई दोप न देगा ।—मेरे अगर सौ जबानें होतीं, और हरएक जबान डंकेकी चोट उस बातको प्रकट कर सकती, तो भी संसार पत्थरकी तरह निश्चल स्थिर होकर उसे सुना करता । मकान गिरकर चूरचूर न हो जाते, वृक्ष जल न उठते । सब पहलेकी तरह जैसेके तैसे खड़े रहते ।—लेकिन अपने भयानक भविष्यका खयाल करके काँप उठो, काँप उठो, काँप उठो ।

गौरी०—चिल्लाओ नहीं ।

हीरा—चिल्लाऊँ नहीं !—अगर हो सकता तो इतने जोरसे चिल्लाती कि उससे आकाश चौ-चीर होकर फट जाता । उस चिल्ला-

हटमे जगत्के सारे आर्त्तनाद एक साथ पडते। उससे ईश्व
आसन हिल उठता। लेकिन—हाय भगवान्!—मनुष्यकी इ
इतनी प्रबल और शक्ति इतनी दुर्बल क्यों दी!

(मत्थेमें हाथ दे मारती है और पागलोंकी तरह जल्दीसे भाग जाती है।

चौथा दृश्य।

स्थान—मुन्नीका घर।

समय—तीसरा पहर।

[मुन्नी गाती है।]

सोहनी। गजल।

सूर्य होते अस्त सन्ध्याके समय—आहें भरूं।
देरतक मैं दूरतक आकाशको ताका करूं॥
जब कि सोऊँ रातको रोऊं पड़ी एकान्तमें।
तर करूं तकिया, कहो कैसे अहो धीरज धरूं॥
वह उषा आकर निरादर कर पलट जाती है फिर।
वायु विषवर्षा करे बिस्तरपै मैं तड़पा करूं॥
यह सुबहका चहचहाना पक्षियोंका, कानमें—
शूलसा लगता, विवश हूँ, यत्न इसका क्या करूं॥
मैं न जानूं, कौन अपना है, किसे अपना कहूं।
सब यहां आवें, हसें, चल दें; कहो किसपर मरूं।
और लोगोंके लिए ही है हमारी जिन्दगी।
औरका जीवन बिताती हूं, सभोंका दम भरूं॥
मैं न जानूं किस लिए जीती हूँ, जीवन व्यर्थ है।
है न कुछ उद्देश्य इसका, सबका मुंह ताका करूं॥
आंखसे आंसू न निकलें, उनको पी जाती हूं मैं।
सब तरह अपमान सहती हूं मिटाकर आबरू॥

[उस्तादजीका प्रवेश।]

मुन्नी—आइए उस्तादजी !—मेरी तबियत आज ठीक नहीं है ।

उस्ताद—ठीक नही है !—क्या हुआ बेटी ?

मुन्नी—तबियत अच्छी नहीं है, और कुछ नहीं । अभी मै एक गीतकी कसरत कर रही थी ।

उस्ताद—बहुत अच्छी बात है—लेकिन—

मुन्नी—(हँसकर) उस्तादजी, आपकी हर बातमे एक 'लेकिन' जरूर ही होना चाहिए ।

उस्ताद—ओहो ! समझ गई । लेकिन वह हमारी आदत हो गई है ।—लेकिन—(मुन्नी जोरसे हँसती है ।)

उस्ताद—है—! मीठी आवाज है ! तुम्हारी हँसी ही गीतसे बढकर सुरीली और रसीली है—अब और क्या गीत गाओगी बेटी ।

मुन्नी—यह हँसी सुनकर ही क्या कोई रुपया दे देगा उस्तादजी !

उस्ताद—नहीं देगा तो क्या हर्ज है—

मुन्नी—खाना-पीना कैसे चलेगा ?

उस्ताद—यह बेशक मुश्किलकी बात है । लेकिन गीत बेचनेकी चीज नही है । गाओगी दिलसे, जो सुनेगा वही मशगूल हो जायगा । गुल क्या बुलबुलके लिए रंग-बेरंग हँसी हँसता है बेटी ?

मुन्नी—बहुत खूब !—अच्छा तो आज सलाम करती हूं उस्तादजी !

उस्ताद—सलाम ! क्या कल आऊं ?

मुन्नी—जी हां । कल जरूर आइए । आदाब ।

उस्ताद—बंदगी ।　　　　　(प्रस्थान ।)

मुन्नी—तुमने सच कहा उस्तादजी—यह गाना बेचकर खाना होगा ! और भी एक बात, मुझे दु:ख होगा यह सोचकर, तुमने नहीं कहा । ले-

किन् वह बात इसी बातके भीतरमे व्यक्त होती है।—सबसे बढ़कर दुःख यह है कि इस रूपको बेचकर पेट पालना होता है! स्त्रीका रूप —जो ईश्वरका श्रेष्ठ दान है; स्त्रीका रूप–जो इन्द्रधनुषके समान उस अनादि उज्ज्वल रूपको रंजित करता है; स्त्रीका रूप—जिसकी महिमासे पृथ्वी गर्वके साथ सिर उठाकर स्वर्गको द्वन्द्वयुद्धके लिए ललकारती है, मानो कहती है—दिखाओ, इसके समान तुम्हारे पास क्या है; स्त्रीका रूप—जिसके चरणोमे सारे ससारका सौन्दर्य आकर सिर झुकाता है; जिसकी ओर देखकर शब्दसंगीत बज उठता है, भाषा छन्दोंमे स्वच्छन्दरूपसे गा उठती है, ज्ञान पागल हो उठता है, भक्ति घुटने टेककर प्रणाम करती है, जिस सौन्दर्यके [illegible] हाथके स्पर्शमे पशु भी वश हो जाता है; वही स्त्रीका रूप बेचकर खाना पड़ता है? ओः? (टहलते टहलते सहसा बड़े आईनेमे अपना प्रतिबिम्ब देखकर) वह कौन!—नहीं, मेरी ही परछाहीं है!—(देखना) महिमामय ईश्वर, इस रूपको पुरुष गंदे भावसे छू सकता है! इस रूपको देखकर विस्मय और भक्तिके साथ इसके चरणोके नीचे आकर लोट न । ? तब भी इस रूपको लालसाके ग्राससे बचानेके लिए अग्नि निकलना पडता है!—आश्चर्यकी बात है!

[दासीका प्रवेश ।]

मुन्नी—(चौंककर) कौन!

दासी—लाला गोपालदास आये हैं।

मुन्नी—दुतकार दे! कुत्ते झपटा दे!

दासी—दुतकार दूं?

मुन्नी—हॉ—निकालो! निकालो!

दासी—यह क्या!—क्या कहती हो! यह क्या कर रही हो!

मुन्नी—बस बस जा, चले जानेके लिए कह दे। कह दे, मै उनसे मुलाकत नहीं करूँगी।

दासी—अगर वे पूछें—'क्यो?'

मुन्नी—कुछ जवाब न देना।—अच्छा जवाब देना! कहना, मै उनसे नफ़रत करती हूँ। ..(तेजीसे प्रस्थान।)

पॉचवॉ दृश्य।

स्थान—लक्ष्मीका घर।

समय—रात।

[लक्ष्मी और दीनानाथ खड़े हुए बातचीत कर रहे हैं।]

लक्ष्मी—मुझे अब जीनेकी साध नहीं रही—लड़केकी बहू आगई है। अब बस भगवान् मौत दे दे। ईश्वर! पार लगाओ किसी तरह!

दीना०—इतनी जल्दी क्या है।—और भी थोड़ा देखे जाओ।

लक्ष्मी—अब और देखना नहीं चाहती भैया!—कौन जाने, इसके बाद क्या होगा!—दिन रहते ही खिसक जाना अच्छा है।

दीना०—वह देखो, भगवानदास आ रहा है।

[भगवानदासका प्रवेश।]

भग०—अम्मा!

लक्ष्मी—क्यो बेटा! (दीनानाथकी ओर देखना।)

दीना०—मेरी ओर क्यों देख रही हो!—ओः! समझा। मै जाता हूँ। (प्रस्थान)

लक्ष्मी—(भगवानदासके कन्धे पर हाथ रखकर) क्यो बेटा! तुम्हारा मुँह कुछ उदास देख पडता है! (आग्रहके साथ) क्या हुआ बेटा?

भग०—अम्मा, तुमने बहूसे बक-झक की है?

लक्ष्मी—बहूने क्या कुछ तुमसे कहा है?

भग०—नहीं—तुम बक रही थी; मैने अपने कानसे सुना है।

लक्ष्मी—अपने कानसे ही जब सुना है—तब क्यो पूछ रहे हो कि मैने बक-झक की है या नही ?—हाँ बेटा, मैने बहूको बक-झक की है।—गिरिस्तीके कामकाज सिखानेमे बीचबीचमें कुछ धमकाना ओर बकना ही पड़ता है।

भग०—उसे कामकाज सीखनेकी जरूरत ही क्या है ?

लक्ष्मी—बापरे ! कामकाज सीखे बिना कहीं काम चल सकता है !—मै तो सदा बनी ही नही रहूँगी। एक दिन गिरिस्तीके सब काम उसे ही तो देखने पडेंगे।

भग०—जब जरूरत होगी, देखा जायगा।—अभी क्या जरूरत है।

लक्ष्मी—बहू बेटियोको घर गिरिस्तीके कामकाज सीखना जरूरी होता है—उसमे अभी और तभी क्या !—इसके सिवा अब मै बूढ़ी हुई हूँ--अकेले सब काम होता भी नहीं।

भग०—अब तक तो होता था !—अम्मा मै बहू लाया हूँ, दासी
मेरी कमजोर औरतसे कामकाज न हो सकेगा।

लक्ष्मी (कुछ देरतक विस्मयसे पुत्रकी ओर ताककर [illegible])

[illegible]—अच्छा जबतक जियूँगी, मै ही करूँगी।—तू अपनी [illegible]रतको गुडियाकी तरह सँवार-सिंगार कर आलेमें बिठा दे।

भग०—ना, बहू अब यहाँ नहीं रह सकेगी। उसकी तन्दुरुस्ती खराब हो रही है। तुम उसकी बिल्कुल चिन्ता नहीं [illegible]। [illegible] सिवा !--

लक्ष्मी—इसके सिवा—रुक क्यों गये ?—कह डालो बेटा।

भग०—सच कहनेमे संकोच ही क्या !—वह बड़े घरकी लड़की है—किसीकी लाल आँख उसने कभी नही देखी। तुम जो कर सकती हो, सो उससे नही होसकता।

लक्ष्मी—ओः !—अच्छा !—मै अब बहूसे एक बात भी नहीं कहूँगी।

भग०—नहीं—और वह उसके—नहीं—वह अपने दादाके पास चली जायगी।

लक्ष्मी—ठीक है ! तेरे ददियाससुर लखनऊमे है, और तेरा कालिज भी लखनऊमें है—इसीसे !—क्यो ?

भग०—नहीं अम्मा, इसलिए नहीं।—वह यहाँ देहातमे नही रह सकेगी।—इस टूटेफूटे झोपड़ेमें उससे न रहा जायगा। खासकर तुम उसका कुछ भी खयाल नहीं करतीं। वह अपने घर चली जायगी।

लक्ष्मी—और यह उसके गैरोका घर है।—अच्छी बात है !—पर वह क्यो जायगी !—मै ही जाती हूँ ! मै काशीवास करूँगी। अबसे पहले ही मुझे सब छोड़कर काशीवास करना चाहिए था। यदि ऐसा किया होता तो तेरा वही मातापरका स्नेह हृदयमे रखकर मर सकती। मै तेरी माता हूँ—आज एक पराई लड़की आकर मुझे मेरी जगहसे हटाये देती है—यह भी देखना पडा ! ईश्वर ! मै बुढापेमे भी घर-गिरिस्तीमे फँसी हुई हूँ, सब भूल चुकी हूँ, तो भी लडकेका खयाल मेरे जीसे नहीं हटता। जिस समय सब कुछ तुम्हारे चरणोंमे विसर्जन कर देना चाहिए था उस समय मै संसारमें रची-पची रही। उसकी सजा तुमने खूब दी भगवान् !—सिर झुकाकर उसे स्वीकार करती हूँ—बस अब और नही। भगवानदास, तू मेरी काशीयात्राका प्रबन्ध कर दे।

भग०—अच्छा ! कल ही कर दूँगा !

लक्ष्मी—अपनी स्त्रीको लेकर तू मुखसे घरगिरिस्ती कर । मैं मुन कर ही सुखी होऊँगी । तू सुखसे रह बेटा ! और कुछ न चाहिए लेकिन यह बात सदा मेरी छातीमे काँटेकी तरह खटकती रहेगी कि तूने स्त्रीको मासे भी बढकर समझा ।—न जाने कहाँकी बेहया जल मुही बहू—

भग०—बस, मुँह संभालकर बात करो । वह जलमुही है या तुम जलमुही हो ?

[दीनानाथका प्रवेश ।]

दीना०—चुप रह, बे-अदब ! माको जबाब देता है ! अपना सर्वनाश करने बैठा है अभागे !—निकल बाहर हो घरसे !

भग०—यह किसका घर है ?

दीना०—बुआ (लक्ष्मी) का घर है ।—अभी तेरी मा मरी नहीं ... ने रहना । जा, तू अपनी माका त्याज्य पुत्र है । माको जाता ... ह !—बुआ ! तुम्हारा यह त्याज्य पुत्र है । इसे बाहर निकाल ...

मुझे एकदम भूल जाना।—मै भी फिर तुझे देखने न आऊँगी। हो जितने दिन जीती हूं उतने दिन अपनी माको उसी दृष्टिसे देख-- मेरे बच्चे! (कॉपते कोपते भगवानदासके पैरो पर गिर पड़ती है।)

[सरस्वतीका प्रवेश।]

सरस्व०—यह क्या करती हो अम्मा! यह क्या करती हो।— लडकेके पैरो पर मा पडी हुई है।—उठो अम्मा, पृथ्वी उलट जायगी, सूर्य आकाशसे गिर पडेगा, आकाश जम जायगा, समुद्र सूख जायगा, ब्रह्माण्ड कोप उठेगा। (भगवानदाससे) क्या! चुपके सन्नाटेमे आकर मेरे मुँहकी ओर क्या ताक रहे हो!—उधर देखो। देखो, तुम्हारे पैरों पर माता पडी हुई है! (लक्ष्मीसे) उठो अम्मा। (उठाती है।) नासमझ लडकेका अपराध क्षमा कर दो। (भगवानदाससे) फिर भी चुपचाप खडे हो! हाथ जोडो। पैर पकडो--अपनी ऑखोंके ऑसु-ओसे माताके पैर धो दो। किया क्या तुमने!

भग०—अम्मा, क्षमा करो। (पैर पकडता है।)

सर०—अम्मा अपने लडकेको गोदमे उठालो। और—-मै तुम्हारी दासी हूं। गिरिस्तीके कामकाज करना मायकेमे नही सीखा है, सो तुम सिखा लो।—मेरे अपराध क्षमा करो। (पैरोंपर पडती है।)

लक्ष्मी—-उठो बेटी! अगर क्रोधमे मैने तुम्हे कुछ कहा हो तो उसे भूल जाओ। बूढी हो गई हूं। बुद्धि ठिकाने नहीं है। मेरी बेटी!

(लक्ष्मी भगवानदास और सरस्वती दोनोको छातीसे लगाती है।)

दीना०—(ऑसू पोछते पोछते) हायरे माताकी ममता! ईश्वरने इस जातिको काहेसे बनाया है! इस मनुष्य-जीवनकी तपी हुई रेतीके बीच यह पुत्र-स्नेहका समुद्र उमड रहा है।—मनुष्यो, इसमे स्नान करो, इसे पान करो और पवित्र होओ।

दूसरा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—लक्ष्मीका घर। **समय**—सन्ध्याकाल।

[लक्ष्मी और दीनानाथ।]

लक्ष्मी—मेरा भगवानदास जरूर आवेगा। बड़े दिनकी छुट्टियोंमें सालभरके बाद, वह मेरे पास न आवेगा? इन छुट्टियोंमें वह सदा आता रहा है। आज मेरी तबियत खराब होनेकी खबर पाकर भी न न आवेगा। यह भी कहीं हो सकता है दीनानाथ!

दीना०—कभी कभी बहुत दिनोंका अभ्यास एक दिनमें छू जाता है बुआ!

लक्ष्मी—ना ना, ऐसा कहीं हो सकता है! ऐसा कहीं हो सकता है?

दीना०—खासकर ऐसा खराब अभ्यास!—माताकी भक्ति नुष्य नशेबाजीको नहीं छोड सकता, कुसंगको नहीं छोड़ सकता किन माको एक दिनमें छोड सकता है।

लक्ष्मी—छोड सकता है? मनुष्य भी छोड सकता है? हां, पर अवश्य छोड़ सकता है।

दीना०—बहुतसे ऐसे मनुष्य हैं जिनमें और पशुओंमें यही अन्तर है कि पशुके चार पैर और पूँछ होती है, और मनुष्यके दो ही पैर होते हैं और पूँछ नहीं होती।

लक्ष्मी—तुमने कहा था, उसने चिट्ठीमें लिखा है कि पहली तारीखको आ जायगा । तभीसे मैं दिन गिन रही हूँ ! आज पहली तारीख है । वह जरूर आवेगा ।—उसने चिट्ठी भी तो लिखी है ।

दीना०—चिट्ठी तो लिखी है । लेकिन उस चिट्ठीका अगर ढंग तुम देखती बुआ ! पेन्सिलसे—चीलबिलौआ—पढना कठिन है ! मानो घोडे पर चढे-चढे लिखी है— और वह घोड़ा उस समय सरपट भाग रहा था । उसने मेरी चिट्ठीका जवाब भर दे दिया है यही मेरे लिए—तुम्हारे लिए—परम सौभाग्य है ।

लक्ष्मी—ना । मेरा भगवाना वैसा लड़का नहीं है । भगवाना और आवेगा, जरूर आवेगा । मेरा जी कह रहा है, आवेगा ।

दीना०—माताका जी बहुतसी झूठी बातें भी कहता है बुआ !

लक्ष्मी—(सहसा आग्रहके साथ) वह शायद आरहा है ।

दीना०—कहाँ ?

लक्ष्मी—वह गाडीकी घरघराहट नहीं सुन पड़ती ?

दीना०—सुन पड़ती है ।—संसारमें शायद भगवानदास ही अकेले गाड़ी पर चढता है ।

लक्ष्मी—वह देखो देखो—वह गाड़ी—

दीना०—गाडी जरूर है, इसमें सन्देह नहीं !

लक्ष्मी—चुप—नहीं—वह नहीं है, गाड़ी चली गई—

दीना०—हायरे माताकी ममता !

लक्ष्मी—अबकी बड़े दिनकी छुट्टी हुई है ?

दीना०—हां बुआ ! सिर्फ हुई ही नहीं, समाप्त भी हो आई है ।

लक्ष्मी—तो फिर—बच्चेकी तबियत तो नहीं खराब होगई ?

दीना०—हायरे माताका हृदय !

लक्ष्मी—मुझे ले चलो दीनानाथ ! मै उसके पास जाऊँगी ।

दीना०—कहाँ जाओगी ?—समधियाने ? जाओ, देखोगी, तुम्हारा लड़का चन्द्रमाका अमृत पी रहा है, फूलोकी हवामे नहा रहा है। तुम जाकर उसका सुखका सपना मिटा दोगी। तुमको भी कष्ट पहुँचेगा और उसे भी व्यथा होगी।

लक्ष्मी—यह भी कहीं हो सकता है कि छुट्टियोमे वह घर न आकर अपनी सुसराल गया हो ! यह क्या हो सकता है !

दीना०—जाओ, जाकर देखो !

लक्ष्मी—तुम उसे नहीं जानते। मैं उसे जानती हूँ। मैने उसे नौ महीने अपने पेटमे रक्खा है। वह वैसा लडका नही है।

दीना०—ईश्वरने किस सामग्रीसे यह माका हृदय बनाया है ! बुआ ! चबूतरे पर बैठकर राह देखनेसे ही क्या वह आ जायगा ? घरके भीतर जाओ। ठण्ड पड़ रही है। तुम्हे बुखार चढ आया है। आज एकादशीका व्रत भी है। ठण्डमेसे उठ जाओ।

लक्ष्मी—(उठकर) जाती हूँ भैया।

दीना०—अच्छा तो मै जाता हू बुआ ! कल सबेरे फिर आऊगा ! ठडकमे न बैठना, शाम हो आई है ! (प्रस्थान)

लक्ष्मी—मेरे जीवनकी भी शाम हो आई है !—भगवान् !—तो क्या सचमुच भगवान नहीं आवेगा ! सचमुच क्या—यह क्या, गला क्यों रुंधा जाता है ! आँखोके आगे अँधेरा क्यो छाया जाता है !—नहीं, वह आवेगा !—वह आवेगा ! यह क्या हो सकता है ! अभी लडका ही तो है !—नहीं, मै रातभर इसी चबूतरे पर बैठकर

उसकी राह देखूंगी। वह आवेगा।—और अगर न आवे—वही शायद ' मा ' कहकर पुकार रहा है। मै आती हूं, मेरे बच्चे! (दौड़कर जाना चाहती है।)

[बूढ़े भिक्षुकका प्रवेश।]

भिक्षुक—आज रातको ठहरनेके लिए जरासी जगह दो मा!

लक्ष्मी—ओः!— (दोनो हाथसे मुंह ढकना)। आओ बेटा।

दूसरा दृश्य।

स्थान—गौरीनाथकी बाहरी बैठक।

समय—सवेरा।

[गौरीनाथ और शिवदयालु।]

गौरी०—नीलाम आज ही है?

शिव०—हां आज ही है।

गौरी०—आः! पाँच हजार रुपये तुमको कहीं नहीं मिले? इस मौके पर मेरे हाथमे भी नगद रुपये नहीं हैं। तुम और एक दफा जाओ। न पाओगे तो फिर बैंकसे उधार लेना होगा! जाओ—

शिव०—अच्छा जाता हूं! एक काम करूं!

गौरी०—क्या?

शिव०—बुरा क्या है!—मियोंकी जूती और मियोंका सिर हो तो कैसा? (हँसना और प्रस्थान।)

गौरी०—क्या चाल सोची है!—इतना हँसता क्यों है!—लो वे प्रेमशंकर और कालीचरण दोनों आ रहे है।

[प्रेमशंकर और कालीचरणका प्रवेश]

गौरी०—क्यो प्रेमशंकर! अचानक इस गरीबकी झोपड़ीमें पधारना कैसे हुआ?

प्रेम०—कालीचरणजीके साथ टहलते टहलते और बातें करते करते भूलकर चला आया हूँ। जाता हूँ। (जाना चहता है।)

गौरी० —अरे जाते हो क्यो! बैठो।—इस समय तुम्हारे भोलानाथकी क्या हालत है। इस समय भी क्या दुनिया भरके लोग उनका गुणगान करते हैं?

प्रेम०—करेंगे क्यो नहीं? अवश्य करते है।

गौरी०—इस समय भी क्या वे दोनो हाथोसे जी खोलकर अपनी दौलत गरीब-दुखियोको लुटाते है?

प्रेम०—हॉ, लुटाते है।

गौरी०—अब है ही क्या, जो लुटाते है?

प्रेम०—यही चूनी-भूसी जो कुछ उनके पास है—

(गौरीनाथ हॅसता है।)

काली०—गौरीनाथ! तुम्हे खूब आनन्द आ रहा है?

गौरी०—नही, आनन्द नही। मै भोलानाथके घमण्डको देखकर विस्मित था। आज उनका वह विषका दॉत टूट गया है, यही कह रहा था—और कुछ नही!

प्रेम०—गौरीनाथ! भोलानाथजीमे अनेक दोष हो सकते है, लेकिन घमण्ड तो मैने कभी देखा नहीं।—मिट्टीका बना हुआ मनुष्य क्या कर सकता है।

गौरी०—मिट्टीका मनुष्य!—घमण्डके मारे धरती पर उनका पैर नहीं पड़ता था।

प्रेम०—यह आप क्या कह रहे है गौरीनाथ! वे राहमें पैदल ही चलते है, यद्यपि वे चाहे तो चार घोड़ोकी गाडी पर चल सकते है। क्या! हॅस क्यो रहे हो?

गौरी०—वे पैदल चलते हैं, लेकिन सिर उठाकर । आसपास लोगोकी तरफ फिर कर देखनेकी भी उन्हे फुर्सत नहीं है । वे लोगोको घृणाकी दृष्टिसे देखते है ।

प्रेम०—वे संसारमे किसीको भी घृणाकी दृष्टिसे नही देखते—तुमको नहीं । नहीं तो जो पापी है, जिसके दोनो हाथ दीन-दुखियोके खूनसे रँगे हुए हैं, जो इश्तिहार दबाकर छलसे जमींदारी चुराता है—

गौरी०—कौन कहता है ?

प्रेम०—मै कहता हूँ ।

गौरी०—तुम मुझे बदनाम करते हो ?

प्रेम०—करता हूँ और करूँगा । तुम्हारे किये जो हो, कर लो ।

गौरी०—मैं तुम्हे जेल भिजवा दूँगा !

प्रेम०—हिस ! मानो जेल भिजवाना तुम्हारे हाथहीकी बात है !—जेल भिजवाओगे-भिजवाओ न ।

गौरी०—तुमने मेरा अपमान किया है—इन्हीं कालीचरणजीके सामने ।

प्रेम०—जरूरत पड़े तो बाजारमें चिल्लाकर इस बातको कह सकता हूँ ! क्या यही चाहते हो ?

काली०—Tell it not in Gath, publish it not in the streets of Askelon (गाथमे इसे न कहना । ऐसकीलनकी सड़कोंमें इसे प्रकाशित न करना ।)

गौरी०—यह बात तुम कह सकते हो कि मै धोखा देनेवाला हूँ ?

प्रेम०—धोखा देनेवाला ! अरे तुम्हारे योग्य विशेषण तो कोषमे खोजनेसे भी नहीं मिलता । चोर, लपट, धोकेबाज आदि अनेक शब्द कोषमें है । किन्तु इन सब शब्दोको मिलाकर तुम्हारा विशेषण बनानेसे भी तुम्हारा

ठीक वर्णन नहीं हो सकता। चाहे जितना कहूँ, कुछ न कुछ बाकी ही रह जाता है। चाहे जितना नीचे तक जाऊँ, पर तुम्हारी थाह नहीं मिलती। चाहे जितना मापूँ, पर तुम्हारा अन्त नही मिलता। इतिहासमें मैंने तुम्हारे सदृश कोई चरित्र नहीं पढा। संसारमें खोजनेसे भी तुम्हारी जोडी नहीं मिल सकती। तुम एक अनियम, तुम एक अपचार, तुम एक व्याधि और तुम एक कूडा-कचरा हो!

गौरी०—सुनते हो कालीचरण! तुमको गवाही देनी पडेगी (प्रेम-शंकरसे) तुम्हे जेल न भिजवाऊँ तो मेरा नाम गौरीनाथ नही।

प्रेम०—इसके लिए जेल जाना हो तो मै तैयार हूँ। तुमको पाजी न कहेनकी अपेक्षा जेल जाना बहुत सहज है। (प्रस्थान।)

काली०—गौरीनाथ तुम हार गये।

गौरी०—मै क्यों हारने लगा!

काली०—'हारने लगा' नही। हार गये। बीती हुई बात है। इसकी अपेक्षा सहज, सरल, साफ-साफ, संस्कृतमिश्रित हिन्दीकी गाली मैंने पहले कभी नही सुनी थी। और ऐसे निडर भावसे कह गया!—' तो चाहिए—

Who dares think one thing and another tell
My heart detests him as the gates of hell

(जिसमे यह साहस है कि विचारे कुछ और, और कहे कुछ और, उससे नरक-द्वारकी तरह मेरा मन घृणा करता है।)

—लेकिन यह आदमी बिलकुल ही अकुतोभयभावसे कह गया।

गौरी० —कैसे?

काली०—गालीगलौजका कोई अंग समझनेमें कष्ट नहीं हुआ। खूब फुर्तीके साथ कह गया। किसी जगह पर नहीं रुका। कहते कहते एक

दफा खाँसा तक नहीं। जरासा खाँसता तो भी मै समझ लेता कि शायद खौफ खा रहा है। बीचबीचमे 'उत्प्रेक्षा' का भी उपयोग करता गया—जान पडा, गालियों दे रहा है, और साथ ही गालियाँ देनेके आनन्दका उपभोग भी कर रहा है ! और अन्तमे जो गाली दी, उतनी जोरदार गाली तो पहले कभी किसीने किसीको भी न दी होगी ।

गौरी०—क्या गाली ?

काली०—यही कि तुमको पाजी न कहनेकी अपेक्षा जेल जाना बहुत सहज है ।—I would rather go to hell than not call you a villain (तुम्हे दुर्वृत्त न कहनेकी अपेक्षा मुझे नरक जाना स्वीकार है।)—किसने कहा है ?—ठहरो, याद कर लूँ। अत्यन्त मौलिक है !—खूब है !

गौरी०—तुमको इसमे बड़ा मजा आ रहा है ! कहाँ तुमको क्रोध करना चाहिए था—

काली०—क्रोध करता, अगर प्रेमशंकर कोई भोंडी, सामान्य या छोटे लोगोंके समान गाली देता । लेकिन ऐसी सभ्य, सरस, प्राञ्जल और जोरदार—वाह ! क्या बात है ! मै एक दिन दावत करूँगा ।

गौरी०—किसकी ?

काली०—प्रेमशंकरकी । इसी रविवारको, दोपहरके समय । तुम भी आना; तुमको भी न्यौता देता हूँ । यह गालीगलौज और एक दफा सुनूँगा—याद रखना ।—वाह क्या बात है !—लो, वे भोलानाथजी आ रहे हैं । तो अब मैं भाग जाऊँ ।—ye cannot serve both God and Mammon. (परमेश्वर और लक्ष्मी दोनोंकी उपासना एक साथ नहीं हो सकती ।)

(प्रस्थान)

गौरी०—फिर भी ये लोग लाखलाख मुहसे भोलानाथकी बडाई करते है !—लेकिन भोलानाथ आज मेरे घरमे ! जान गया क्या ! निश्चय मेरे पैर पकड़कर प्रार्थना करने आया है। आओ तो भैया !—मैं कब छोडता हूँ।

[भवानीप्रसाद और भोलानाथका प्रवेश।]

भोला०—गौरीनाथ ! ये लो रुपये।—दो तो भवानीप्रसाद !

गौरी०—रुपये—कैसे ? (भवानीप्रसाद रुपये देते है) कितने है ?

भोला०—पॉच हजार रुपये है।—जब हो सके, दे देना।

गौरी०—(विस्मयके साथ) रुपये ! क्यो !

भोला०—सुना है कि तुम्हे जरूरत है।—लो।

गौरी०—इनका व्याज ?

भोला०—व्याज काहेका ! सुना कि तुमको जरूरत है, इसीसे ले आया। लो। जब मुझे जरूरत हो तब तुम दे देना। यही बस चाहिए। व्याज काहेका! मुझ पर नाराज न होना। मुझे घृणा न करो। मुझे प्यार करो, प्यार करो। गौरीनाथ—भाई !

(गलेमे लगाना चाहता है।)

गौरी०—इसकी लिखापढी ?

भोला०—लिखापढीकी कुछ जरूरत नहीं है। मुझे तुमपर [विश्वास] है। विश्वासमें ही मोक्ष है। विश्वासमे ही मुक्ति है। विश्वासके ही [सहा]रे संसार चल रहा है। अविश्वासमें ध्वस है। अविश्वासमे ही नरक है। रसोई बनानेवाला ब्राह्मण भोजनमें विष मिला सकता है। नौकर पीछेसे आकर छुरा भोंक सकता है। इन सबका अबतक विश्वास करता आया हूँ। और तुम तो भले आदमी हो, तुम्हारा विश्वास नहीं करूँगा ? रुपये न फेरना हो, न फेरना। बदलेमें

केवल यही चाहता हूं कि तुम मुझे प्यार करो, प्यार करो ।—चलो भवानीप्रसाद ! यह क्या, तुम आँसू पोछ रहे हो ?

भवानी०—जी नहीं । मुझे इस समय एक कहानी याद आगई ।

भोला०—याद आगई ? वह क्या ?

भवानी०—एक दिन एक भेड़ नारायणके पास गई थी, आप जानते है ?

भोला०—गई थी ? क्यो गई थी ?

भवानी०—नालिश करने । जाकर कहा विष्णुभगवान्, बाघ हम लोगोको पाते ही खा जाते है । आप इसका कुछ उपाय कीजिए ।

भोला०—नारायणने इसका क्या जवाब दिया ?

भवानी०—उन्होने यही कहा—" भाग भाग; तेरे चिकने-चुपड़े शरीरको देखकर तो खानेके लिए मेरी ही इच्छा डोल उठी है—तब बाघोकी कौन कहे । खानेके लिए ही तो विधाताने तुम्हे उत्पन्न कियाँ है । नहीं तो वे कमसे कम सभ्य जानवरोकी तरहके दो पैने सींग देते, या सरपट दौडनेवाले चार पैर देते " ।

भोला०—हा: हा: हा:—

भवानी०—गौरीनाथ ये रुपये क्यो चाहते है, सो आप जानते हैं ?

भोला०—जरूरत क्या है ! उनको रुपयोंकी जरूरत आ पड़ी है—इतना ही जानना यथेष्ट है ।

भवानी०—तो भी सुन रखिए । गौरीनाथ इन्हीं रुपयोंसे नीलामी इश्तिहार रद करके आपका ही एक ताल्लुका खरीदेंगे । ताल्लुका नीलाम पर चढ गया है ।

भोला०—नीलाम पर चढ गया है ।

भवानी०—जी हाँ। आप उसके हाथमे एक छुरी देकर और गला आगे बढाकर कहते है—बड़ी खुजली हो रही है।

भोला०—यह भी क्या हो सकता है भवानी।—छी ऐसी बात न कहो।—वह मनुष्य ही तो है।

भवानी०—आजकल मनुष्य मनुष्यको खा जाता है। राक्षसोंकी अब जरूरत नही है, इसीसे वे अब इस पृथ्वी पर नही देख पड़ते।—भोलानाथजी ! खुला संदूक पाकर साधु भी चोर हो जाता है।—गौरीनाथका कुछ दोष नहीं है।

भोला०—छी छी छी, ऐसा न कहो। यह भी कहीं हो सकता है भवानी। और यही अगर हो,—गौरीनाथ ! मेरी सारी जमींदारी लो, मेरा सर्वस्व ले लो, केवल मुझे प्यार करो—प्यार करो !

भवानी०—भोलानाथजी !—मुझसे कहे विना रहा नही जाता। भगवान् ! इस पापपूर्ण कलियुगमे भी ऐसे मनुष्य होते है !—

गौरीनाथ खरीदो, इसके बाद इन्हींके रुपयोसे यदि इनकी जमींदारी खरीदना चाहो, और खरीद सको तो, खरीद लो।—आइए भोलानाथजी।

भोला०—चलो भाई।—गौरीनाथ, मुझे प्यार करो। मुझसे घृणा न भाई। (गले लगानेको तैयार होता है।)

।ी०—चले आइए। सयाने सयानेसे गलेमिलौवल होती है। और भोलेभालेकी गलेमिलौवल है कलियुगमें धूर्त्तता।—

९।

(दोनोंका प्रस्थान।)

गौरी०—यह क्या !—आँखोमें आंसू क्यो भर आये। नहीं मै बड़ा शैतान हूँ ! क्या काम है जो मैंने नहीं किया, और क्या काम मै कर नही

सकता ! यह तो साधारण बात है !—भोलानाथ ! तुम मेरे मनको अपने इस व्यवहारसे गलाओगे ! मै ऐसा पत्थर नहीं हूं, जो पसीज उठूं ।

(हंसते हुए प्रस्थान ।)

तीसरा दृश्य ।

स्थान—लक्ष्मीका घर ।

समय—पिछली रात ।

[लक्ष्मी मृत्युशय्या पर पडी है । पास ही दीनानाथ उपस्थित हैं ।]

लक्ष्मी—रामका नाम लो, रामका नाम लो । मै रामनाम सुनते सुनते मरना चाहती हूं ।

दीना०—क्यों बुआ ! वैद्यजी कह गये है—कुछ डर नहीं है ।

लक्ष्मी—वैद्यजी ठीक कह गये है । मुझे कुछ डर नही है । मैंने कभी किसीका बुरा नही चेता । जो उचित समझा वही किया । मुझे भगवान् अपने चरणोंमे स्थान देंगे ही । तब काहेका भय !

दीना०—नही, मै यह कहता हूं कि तुम जल्दी आराम हो जाओगी बुआ ।

लक्ष्मी—मै अब आराम होना नहीं चाहती भैया । किस लिए जियूं ? साठ बरसकी अवस्था हुई है । जिन्दगीमे दुःखके सिवा मै और कुछ नही जानती । पांच लडके हुए ! चार चले गये । एक है, सो वह होने पर भी नहींके बराबर है । अब और किस सुखके लिए जीना चाहूंगी !

दीना०—भगवाना आवेगा । चिन्ता न करो । राहमे ही होगा ।

लक्ष्मी—(लंबी सांस लेकर) मैं भी राहमें हूं !

दीना०—मैं कहता हूँ कि वह आवेगा। मै क्या झूठ कहता
उस दिन कहा था, वह नहीं आवेगा, वह नहीं आया। आज क
हूँ, वह आवेगा, वह अवश्य ही आवेगा। माकी ऐसी बीमारीकी
पाकर भी क्या वह वहाँ बैठ रह सकेगा!

लक्ष्मी—आवेगा? आवेगा? कब?—अब और कब आवे
मरनेसे पहले अगर एक बार उसे देख पाती। नहीं देख पाई।

दीना०—ये सब कैसी बाते कर रही हो! छी!

लक्ष्मी—हायरे! मरनेके समय भी बारबार उसीकी याद आती
कहाँ चाहिए कि भगवानका नाम लूँ, पर लडकेका नाम याद आता है
रामका नाम लो। रामका नाम लो। लड़का कौन है! कोई न
मेरे लड़का नहीं है, कभी नही था। दयामय! इस अन्तकालमें
चरणोंमे स्थान दो। इस अन्धकारमें मत छोड़ो!—भैया! क्या सच
मेरा भगवाना नही आया!

दीना०—आता है। घबराती क्यो हो बुआ! सो रहो।

लक्ष्मी—अब एकदम ही सो रहूँगी। भैया, मेरे मरजानेके बाद अ
भगवाना आवे तो उससे कहना, मै बड़े सुखसे मरी हूँ, मरनेके स
मुझे कुछ भी कष्ट नहीं हुआ। वह आकर अगर रोवे, तो उसे स
समझाना कि मरनेके समय मुझे कुछ भी कष्ट नहीं हुअ
एक बार मरनेके समय उसे देखनेको जी चाहा था।—
...नेका कुछ काम नहीं। मेरे लालको दुख होगा! कहना मै सुख
हूँ। और कुछ नहीं। और अगर वह न आवे—(गला
... है।) [illegible]

दीना०—हायरे माताकी ममता!—बुआ भगवानदास आरहा
आज रातको ही आ जायगा। जान पड़ता है, पहली गाड़ी नहीं मिल

लक्ष्मी—आवेगा? आवेगा? सच कहते हो? वह आवेगा? भैया कहो, वह आवेगा। सच हो, झूठ हो, कहो—वह आवेगा। यही विश्वास साथ लेकर मै परलोक सिधारूँ!—ना, वह नही आवेगा, वह नही आवेगा। (मुँह फिरा लेती है।)

दीना०—सो रहो बुआ!

लक्ष्मी—यह लो सोती हूँ।—तो भगवाना नहीं आया! मै उसकी स्त्री पर बकी-झकी थी, इसीसे रूठकर लाल चला गया है; अब नही आवेगा।—ये चिड़ियाँ बोलने लगीं—क्यो?

दीना०—हाँ बुआ।

लक्ष्मी—तो सवेरा होगया?

दीना०—हाँ।

लक्ष्मी—तुम रात भर नही सोये?

दीना०—सोया क्यो नही।

लक्ष्मी—नही, तुम नही सोये। तुम रातभर मेरे सिरहाने बैठे रहे हो। मैंने जब जब आँख खोली है, देखा है कि तुम्हारा यह उतरा हुआ चेहरा—ये दोनों स्नेहपूर्ण नेत्र मेरी ओर देख रहे है। दीनानाथ, जाकर सोओ।

दीना०—मै सो चुका हूँ बुआ।

लक्ष्मी—ये पक्षी बोल रहे है।—दीनानाथ! खिडकी तो खोल दो भैया। एक बार अपने धानसे भरे हुए खेत, और पक्षियोके गानसे गूँजता हुआ अपना बाग, एक बार—अन्तिम बार जी भरकर देख लूँ। फिर तो देख पाऊँगी नही। खोल दो।

(दीनानाथ खिडकी खोल देता है।)

दीना०—मैं कहता हूँ कि वह आवेगा। मै क्या झूठ कहता हूँ! उस दिन कहा था, वह नहीं आवेगा, वह नहीं आया। आज कहता हूँ, वह आवेगा, वह अवश्य ही आवेगा। माकी ऐसी बीमारीकी खबर पाकर भी क्या वह वहाँ बैठ रह सकेगा!

लक्ष्मी—आवेगा? आवेगा? कब?—अब और कब आवेगा? मरनेसे पहले अगर एक बार उसे देख पाती। नही देख पाई।

दीना०—ये सब कैसी बाते कर रही हो! छी!

लक्ष्मी—हायरे! मरनेके समय भी बारबार उसीकी याद आती है! कहाँ चाहिए कि भगवान्‌का नाम लूँ, पर लडकेका नाम याद आता है—रामका नाम लो। रामका नाम लो। लड़का कौन है! कोई नहीं! मेरे लड़का नहीं है, कभी नही था। दयामय! इस अन्तकालमें मुझे चरणोमे स्थान दो। इस अन्धकारमें मत छोडो!—भैया! क्या सचमुच मेरा भगवाना नही आया!

दीना०—आता है। घबराती क्यो हो बुआ! सो रहो।

लक्ष्मी—अब एकदम ही सो रहूँगी। भैया, मेरे मरजानेके बाद अगर भगवाना आवे तो उससे कहना, मै बड़े सुखसे मरी हूँ, मरनेके समय कुछ भी कष्ट नहीं हुआ। वह आकर अगर रोवे, तो उसे समझाना कि मरनेके समय मुझे कुछ भी कष्ट नहीं हुआ। केवल एक बार मरनेके समय उसे देखनेको जी चाहा था।—ना, यह कहनेका कुछ काम नही। मेरे लालको दुख होगा! कहना मै सुखसे मरी हूँ। और कुछ नहीं। और अगर वह न आवे—(गला रुँध जाता है।)

दीना०—हायरे माताकी ममता!—बुआ भगवानदास आरहा है। आज रातको ही आ जायगा। जान पडता है, पहली गाडी नहीं मिली।

लक्ष्मी—आवेगा? आवेगा? सच कहते हो? वह आवेगा? भैया कहो, वह आवेगा। सच हो, झूठ हो, कहो—वह आवेगा। यही विश्वास साथ लेकर मै परलोक सिधारूँ!—ना, वह नही आवेगा, वह नही आवेगा। (मुँह फिरा लेती है।)

दीना०—सो रहो बुआ!

लक्ष्मी—यह लो सोती हूँ।—तो भगवाना नहीं आया! मै उसकी स्त्री पर बकी-झकी थी, इसीसे रूठकर लाल चला गया है; अब नही आवेगा।—ये चिडियॉ बोलने लगीं—क्यों?

दीना०—हॉं बुआ।

लक्ष्मी—तो सवेरा होगया?

दीना०—हो।

लक्ष्मी—तुम रात भर नही सोये?

दीना०—सोया क्यो नही।

लक्ष्मी—नही, तुम नही सोये। तुम रातभर मेरे सिरहाने बैठे रहे हो। मैने जब जब ऑख खोली है, देखा है कि तुम्हारा यह उतरा हुआ चेहरा—ये दोनो स्नेहपूर्ण नेत्र मेरी ओर देख रहे है। दीनानाथ, जाकर सोओ।

दीना०—मै सो चुका हूँ बुआ।

लक्ष्मी—ये पक्षी बोल रहे है।—दीनानाथ! खिडकी तो खोल दो भैया। एक बार अपने धानसे भरे हुए खेत, और पक्षियोके गानसे गूँजता हुआ अपना बाग, एक बार—अन्तिम बार जी भरकर देख लूँ। फिर तो देख पाऊँगी नही। खोल दो।

(दीनानाथ खिड़की खोल देता है।)

लक्ष्मी—यह वे ही सब है ! अभीतक सन्नाटा छाया हुआ है। सब सो रहे है। अरे तुम जागो। मेरी ओर देखो। मै जाती हूँ, सदाके लिए तुम सबको छोड़ जाती हूँ। देखो।—दीनानाथ !

दीना०—बुआ !

लक्ष्मी—एक बार जरा बाहर तो जाओ भैया, मै अपनी गऊको जरा देखूँगी। उसके बछड़ा पैदा हुआ है। उसे जरा ले आओ। मै देखूँगी।

दीना०—फिर देखना।

लक्ष्मी—नही दीनानाथ ! फिर देखनेको समय न मिलेगा। जाओ भैया।

(दीनानाथका प्रस्थान।)

लक्ष्मी—वह 'बॉ बॉ' करके मुझे पुकार रही है। मै हर रोज अपने हाथसे उसे खानेको देती थी। किसी दिन अगर किसी कारणसे न दे सकती थी तो वह अच्छी तरह खाती न थी; दिन भर मुंह लटकाये रहती थी। मेरा उदास मुख देखकर उसकी ऑखोंमे ऑसू आ जाते थे !—वह फिर बॅ-बा रही है।—अरे मै यहॉ हूँ—बौली !—मै ॅ। हूँ !—

दीना०—(नैपथ्यमे) यह देखो, बुआ मै ले आया।

लक्ष्मी—हॉं यही मेरी गऊ है !—बौली !—मै जाती हू !—अबमे ,नाथ तुम्हारी देखरेख करेगा। दीनानाथ—भैया—बस—सब समाप्त हो आया है ! भगवान् !—तो भगवाना सचमुच ही नहीं आया। ई—श्व—र—(मृत्यु)।

[दीनानाथका प्रवेश]

दीना०—बुआ बुआ !—दीपक बुझ गया।—एक बुलबुला समुद्रमे लीन हो गया। एक ओसका कण कमलके पत्तेमे ढुलक पड़ा।

एक पवित्र साम-गानका नाद उठकर आकाशमे लीन होगया।—जाओ बुआ, उस पार; जहाँ सब लोग जगदम्बाकी गोदमे सुखकी नींद सो रहे हैं। पुत्र—कन्या सब निठुर है। उनको भूल जाओ। माता जगदम्बाकी गोदमे शान्ति पाओ।—मैया!—अपनी बेटीको गोदमे स्थान दो।

चौथा दृश्य।

स्थान—भोलानाथके महलकी छत।

समय—चाँदनी रात।

[भोलानाथ और सरस्वतीका प्रवेश।]

भोला०—क्यो सरस्वती! कैसा लगता है?

सर०— क्या?

भोला०—जीवन! खूब मधुर जान पडता है, क्यो!—जैसे एक अबाध वसन्त, अगाध ज्योत्स्ना—उसके आगे हमारा जीवन मानो किसी गिनतीका ही नहीं जान पडता।—क्यो!

सर०—किस तरह?

भोला०—जिस तरह जब कोई फिटन हाँकता जाता है तब उसके आसपास जो लोग पैदल चले जाते है वे उसे बहुत ही छोटे दर्जेके आदमी जान पडते है।

सर०—किसने कहा?

भोला०—तूने।

सर०—कब कहा!

भोला०—अरे सब बाते क्या मुहसे ही कही जाती है! आँखोसे भी बहुतसी बाते हुआ करती है!

सर०—हुआ करती है!

भोला०—नहीं होती !—बहू जैसे बड़े बूढोंके दृष्टिजालके बीच घूँघटके भीतरसे नये स्वामीकी तरफ देख लेती है, वैसे ही आँखों आँखोंमे न जाने कितनी बाते हो जाती है।

सर०—कौनसी बाते ?

भोला०—उन बातोंका अर्थ यही होता है कि ये सब केवल संसारकी उलझनमें भटक-भटक कर मर रहे है; और जो कुछ मजा है-वह हम और तुम लूट रहे है।

सर०—कभी नहीं।

भोला०—अरे नाराज क्यो होती है बेटी ! मै सब जानता हूँ मै सदासे तो ऐसा था नही। मेरा भी एक जमाना था। तब—" मिलनमे सब गवाँया, विरहमे सब पाया।" का मामला था।—तब फूलोंका पराग पीता था, सुगन्धित वसन्त-पवनकी लहरोमे ढुल पड़ता था। तेरी भी इस समय वही अवस्था है।—ले, 'मिथ्या' के राजत्वको अच्छी तरह भोग कर लें। शीघ्र ही यह सपना दूर हो जायगा।

सर०—दूर हो जायगा ? सचमुच ?—मुझे डर लग रहा है दादाजी !

भोला०—अभी इसमे देर है। —क्या मेरे प्रेमका इतिहास तूने सुना ?

सर०—नहीं। अच्छा अपने प्रेमकी रामकहानी सुनाइए ना !

भोला०—अच्छा तो सुन। और उसके साथ—अपना हाल मिला लेना। सुन ! प्रथम प्रणयमे चन्द्रमाके प्रकाशमे—अर्थात् छतके ऊपर जब हम दोनों जने अकेले बैठते थे, तब मै एक बार उस श्रीमुखकी ओर और एक बार चन्द्रमाकी ओर ताकता था—कौन अधिक सुन्दर है, सो कुछ निश्चय नहीं कर सकता था।

सर०—और वे नहीं देखती थीं?

भोला०—कौन?

सर०—दादाजी।

भोला०—वे!—अरे बापरे!—और किसी ओर देखनेकी तो उन्हें मोहलत ही नहीं मिलती थी। लेकिन वे देखती क्या थीं, सो कुछ मेरी समझमें नहीं आता था।—मेरी मूछोंका ताव, या आँखकी पुतली, या नाककी गढन, या दाढ़ीका कटा हुआ धानका खेत (क्योंकि एक दिन भी हजामत न बनानेसे वह खेत उग आता था)। वे जब आदर करके मेरे इस श्रीमुख पर हाथ फेरती थीं, तब जान पड़ता था, जैसे उस कटे हुए खेत पर कोई सरावन फेर रहा है।—इस चेहरेको देख।

सर०—देख रही हूँ।

भोला०—कैसा चेहरा है?

सर०—बहुत अच्छा है।

भोला०—एः! तब तू निश्चय मुझे प्यार करती है।—यह बात हुए बिना कोई भी इस चेहरेको अच्छा नहीं कह सकता। बहुत लोग जो मेरे घर आते थे, वे मुझे घरका नौकर समझकर तमाखू भरनेकी आज्ञा देते थे। इसीसे चिढकर मै ऐसी टेढी माँग निकालता था कि चेहरेको मैंने बिलकुल भलेमानसोंका ऐसा बना डाला था और क्या! यही देखकर वे रीझ रही थीं!—मिलता है?

सर०—इसके बाद?

भोला०—मै कहता हूँ, मिलता है?

सर०—कुछ कुछ। इसके बाद?

भोला०—हम जान पडता था, पृथ्वी पर और कोई नही है
नही है, भाई नही है, बन्धु नही है, है केवल 'प्राणेश्वर' और
श्वरी' ।—मिलता है ?

सर०—उसके बाद ?

भोला०—हम लोगोकी बातचीत समाप्त होने नही पाती
मै अगर कहता था कि हमारे क्लासमे एक लडका है उसका न
' महेन्द्र, ' तो वह उसीमे एक रसिकताका अनुभव
हॅसते हॅसते लोटपोट हो जाती थीं ! और वे अगर कहती थ
उनके ' इन्द्र ' को एक दिन एक भौंरेने काट खाया था, तो मै
हॅसते जमीन पर लोट जाता था ।

सर०—बातचीत किस तरह होती थी ?

भोला०—पहले दो अक्षरोसे शुरू होता था। मै कहता था '
वे कहती थी ' नाथ ' । उसके बाद तीन अक्षरोंसे काम लिया
था । मैं कहता था ' प्रेयसी ' वे कहती थी ' वल्लभ ' । फिर
अक्षरोकी नौबत आती थीं । मै कहता था ' प्राणेश्वरी ', औ
थीं ' प्राणेश्वर '—उसके बाद सो जाते थे ।

सर०—अच्छा ! विरहकी अवस्थामे क्या होता था ?

भोला०—रोज एक चिट्ठी मिलती थी ।

सर०—उसमें क्या लिखा रहता था ?

भोला०—इसका कुछ सिरपैर न था ! ' तुम चाहते हो हम च
है '—यही एक बात घुमा फिराकर उस चिट्ठीमे लिखी रहती थ

सर०—उसके बाद ?

भोला०—उसके बाद और क्या ! उसके बाद तू ही कह ।

सर०—अच्छा ! उसके बाद मै कहती हूं ! सुनिए ।

भोला०—अच्छा कह। तो फिर तू इस जगह खडी हो और मैं स जगह खड़ा होऊं।

सर०—क्यो ?

भोला०—इस समय तू वक्ता और मैं श्रोता।

(दोनों स्थान बदलते हैं।)

सर०—अच्छा—अब सुनिए।

भोला०—सुनता हूँ।

सर०—उसके बादकी अवस्था क्या हुई, सो आप जानते हैं ? आपके घर लौटनेमे अगर देर होती थी तो दादीजीका मिजाज ठीक मक्खनकी तरह मुलायम नहीं मिलता था। और दादीजीकी रसोई खराब बननेसे आपका गला भी ठीक ईमनकल्यानकी तान नहीं अलापता था।

भोला०—हो—अलापता तो न था।—उसके बाद ?

सर०—बाहरी बैठक घर और भीतरी अन्तःपुर ये दो जुदी जुदी जगह है, यह अच्छी तरह जान पड़ने लगा।

भोला०—जान पडने लगा। उसके बाद ?

सर०—उसके बाद जो अवस्था हुई—वह बड़ी भयानक थी !

भोला० (आग्रहके साथ) किस तरहकी !

भोला०—आश्चर्य ! बिलकुल ठीक मिल रहा है !—तूने यह मत्र जाना किस तरह ?

सर०—कल्पनासे । आपके तो कल्पनाशक्ति है ही नही !

भोला०—इतनी नही है ।

सर०—उसके बाद—सुनिए । उस समयकी अवस्थाके साथ ऋतुराज वसन्तका कोई सादृश्य नही लख पडता था । हॉ, वर्षाके साथ अवश्य ही कुछ कुछ मेल था ।

भोला०—वर्षाके साथ ?

सर०—कमसे कम उसके साथ गरजने, बरसने, और बिजलीके चमकनेका तो काफी मेल था ।—मिलता है कि नही ?

भोला०—अरे अक्षर अक्षर मिलता है ।—वह देख तेरा प्राणेश्वर दूर पर भूखे भिक्षुककी तरह तेरी तरफ ताक रहा है । उस दृष्टिका अर्थ यही है कि हट जा बूढे ।—लो मै जाता हूँ ।—

(जानेको तैयार होता है ।)

सर०—जाइएगा क्यो ?

भोला०—ना ना, नही तो तेरा प्राणेश्वर चिढ जायगा ।

सर०—नहीं, चिढेगे क्यो ?

भोला०—मेरे यहॉ रहनेसे तुझे प्रेयसी कहकर पुकारनेमे तेरे प्राण-के ओठ चिपक जायेंगे; ठीक उसी तरह हाथ पकडकर, गर्दन बॉकी करके, मुखकी ओर देखकर हॅसते हॅसते कह न सकेगा—“प्रिये, मै तुम्हारा ही हूॅ । ”

सर०—अच्छा देखिए न ।

भोला०—देखूॅगा ।—अरे भैया, इधर आओ । कूद आओ ! हा: हा: हा:—आओ भैया !—लो वह आ रहा है ।—चुप ।

[भगवानदासका प्रवेश]

भग०—(सिर झुकाये हुए) आप पुकार रहे है ?

भोला०—इस पुकारनेकी अपेक्षामे तुम थे कि नहीं !—इसे पहचानते हो ?—क्या ! चुप खड़े हो एकबार—क्या कहकर इसे पुकारते हो—पुकारो तो ! न हो, नाम लेकर ही पुकारो । ‘ सरस्वती—ई ई ई’—आहा, कैसा मधुर है ! मेरी ही जीभ मिठासके मारे चिपकी जाती है, तव तुम्हारी कौन कहे।—तुमसे पुकारा ही क्यों जायगा । मेरा वहुत दिनोका अभ्यास है, तव भी नाम लेकर पुकारते पुकारते मानो दुल पडता हूँ और फिर भी देखता हूँ कि पुकारना पूरा नहीं हुआ ।

सर०—दादाजी, आप न जानें क्या क्या वे-सिरपैरका वक जाते है !

भोला०—यह उन्मादका प्रलाप है !—क्यों भैया, चुप क्यो हो ? सिर क्यो झुका लिया !—मगर मेरी पोतीकी ओर तिर्छी नजरसे देखते जाते हो । और वह भी—हूँ !

(सरस्वती हँस देती है ।)

भोला०—ओरे ! ओरे ! मै और तेरी दादी, दोनो ठीक इसी तरह करते थे रे, ठीक इसी तरह करते थे !—कैसे दिन गुजर गये ! ([illegible] नाम लेता है)—अच्छा अभी तक ऑखोसे वातचीत हो रही थी, अब कुछ मुँहसे भी हो ।—बेटी ! मेरा नत-दमाद गूँगा है क्या ! [illegible] मैं हटा जाता हूँ । (प्रस्थान ।)

[भवानीप्रसादका प्रवेश ।)

भवानी०—दादाजी ! आप समझते है, कोई नहीं देखता ! देखता है—एक आदमी देखता है और रोता है । आप जितना ही

हँसते है, वह उतना ही रोता है। मुँहमे आपके हँसी और हृदयमे रोना है। जिसे पराये घर भेज देना होगा उसे इतना प्यार करना ठीक नहीं दादाजी। वह जन्मसे ही पराई सम्पत्ति है। लोग लडकीके मर जाने पर इतना रोते क्यो है, मालूम नही। (प्रस्थान।)

पर्दा बदलता है।

स्थान—महलकी छत।

समय—चॉदनी रात।

भगवानदास और सरस्वती।

भग०—तुम्हारे दादा तुमको खूब प्यार करते है ?

सर०—बहुत प्यार करते है !

भग०—तुम उन्हे प्यार करती हो ?

सर०— उन्हे ?—जगतमें मै और किसीको इतना प्यार नहीं करती। मै अपने दादाके लिए जानतक दे सकती हू !

भग०—और मेरे लिए ?

सर०—तुमसे अभी के दिनकी जान पहचान है ?

भग०—अच्छा—अच्छी बात है !

सर०—क्या, खफा हो गये ! (हाथ पकडकर) छी:।—खफा न होओ।

भग०—(हाथ छुडाकर) जाओ, तुम मुझे प्यार नही करतीं।

सर०—करती हू। क्योंकि तुम मेरे स्वामी हो। यह प्यार करना अभ्यासकी बात है। और दादाको जो प्यार करती हू वह प्यार करना स्वाभाविक है।

भग०—वही अधिक है।

सर०—निश्चय। उनमे और तुममे बडा अन्तर है।

भग०—क्या अन्तर है?

सर०—मै अगर मर जाऊ तो दादाजी शोकके मारे अन्धे हो जायगे, और तुम सालके भीतर ही नई जोरू ब्याह कर ले आओगे।

भग०—कभी नहीं।

सर०—अच्छा दिखा दूंगी।

भग०—किस तरह?

सर०—(हँसकर) सचमुच ही मरकर दिखा देनेको जी चाहता है कि मर्दोंकी जाति कैसी निठुर और झूठी होती है।

भग०—कैसे?

सर०—तुम लोग पहले प्यार दिखते हो—समुद्रकी लहरोंकी तरह किनारे पर बाढ़ उठाकर मानो उसे ग्रास करनेके लिए आते हो। उसके बाद जी भर जाने पर उसी समुद्र-तरंगकी तरह शिथिल होकर किनारेपरसे फिर जाते हो।

भग०—मै तुम्हे उस तरह नहीं प्यार करता।

सर०—किस तरह प्यार करते हो?

भग०—मेरा यह प्यार आकाशकी तरह अनन्त, उदार और स्वच्छ है।—इसका अन्त नहीं है, इसमे तृप्ति नहीं है। यह प्यार पहाड़की तरह अटल है, ध्रुवताराकी तरह स्थिर है।—तुम हँस रही हो!—जाओ, तुम मुझे प्यार नहीं करतीं।

सर०—मै तुम्हारी कविता सुन रही थी।—तुम्हारी मा कैसी है? कोई चिट्ठी आई है?

भग०—इस चर्चाके भीतर माका प्रसंग कहाँसे आ सकता है!

सर०—यह प्रसंग इस चर्चाके भीतर नहीं, इसके बाहर है।—अच्छा! 'मा' पदार्थ बहुत ही गद्यमय है। क्यों ?

भग०—क्यों ?

सर०—नहीं तो क्या तुम छुट्टियोंमें एक बार उनके पास जाते भी नहीं! छुट्टियाँ ससुरालमें ही बिता दी! आँखोंकी लाज भी नहीं है। यहाँ करते क्या हो! वहाँ तुम्हारी मा शून्य दृष्टिसे तुम्हारी राह देख रही है।

भग०—किसने कहा ?

सर०—मैं जानती हूँ। यह बात भी किसीके कहनेकी है?—हाय स्वामी! तुमने माको नहीं पहचाना। जिस दिन वे नहीं रहेंगी उसी दिन उन्हें पहचानोगे।

भग०—तुमने पहचाना ?

सर०—हाँ—क्योंकि मेरे अब मा है नहीं। यह रत्न खोये बिना ठीक पहचाना नहीं जाता—इसकी कदर नहीं होती। तुम्हारी बूढ़ी मा आँखोंमें आसू भरे तुम्हारी राह देख रही है, और तुम यहां एक तुच्छ स्त्रीके पैरोंमें पड़े हुए हो!—जिसे सालभर पहले पहचानते नहीं थे, जिसमें एक मात्र गुण है रूप और जवानी!

भग०—तो तुम्हारी यह इच्छा नहीं है कि मैं यहाँ रहूँ।

सर०—मेरी इच्छा है कि यहीं रहो—लेकिन माको छोड़कर नहीं। उसके चरणोंमें अपने स्वार्थकी बलि दे सकते हो—लेकिन कर्तव्य और मातृभक्तिकी नहीं।

भग०—यह मेरे विचारनेकी बात है। तुम्हारा इसमें क्या!—तुम्हारा काम है मुझे आदर, आलिंगन और चुम्बन देना।

मर०—मैं तुम्हारी रखेल रंडी नहीं हूं। मै तुम्हारी स्त्री हूँ ।—तुम्हारे लिए मुझे डर मालूम होता है ।

भग०—क्यो ?

मर०—जब माताका तुम्हे खयाल नहीं है तब नहीं जानती, तुम कौन पापकर्म नही कर सकते । मातृभक्ति—जो कर्तव्य सब कर्त्तव्योकी जड है, जीवनकी पहली महाशिक्षा है, मनुष्यप्रकृतिका अस्थिमज्जागत सनातन धर्म है; मातृभक्ति—जिसके कोमल करस्पर्शसे कर्त्तव्यकी कठिनता दूर हो जाती है, भक्ति और स्नेह हँस उठते है—जिस कर्त्तव्यको तर्ककी अपेक्षा नहीं है, जो कर्त्तव्य युक्तिकी सहायता नहीं चाहता, विधि और विधानको नहीं मानता; मातृभक्ति—जो एक स्वर्गीय प्रतिभासे मनुष्यजीवनको मण्डित कर देती है, आनन्दके साथ प्रकृतिके ऋणको चुकती है, आत्माको स्फूर्ति देती है, अभ्यासगत संस्कारको जीवनका मूल मन्त्र बना देती है, मनुष्यकी सारी कोमल प्रवृत्तियोके ऊपर हुकूमत करती है, घटना-विपर्ययके ऊपर क्रीडा करती है, मृतप्राय शक्तिको जीवित करती है, और मृत्युकी भयानक अंधेरी रातको प्रकाशित करदेती है; उस मातृभक्तिसे जो रहित है उस पशुमे और क्या है ! वह जीवनमे क्या पापकर्म नहीं कर सकता ! इसीसे कहती थी—सावधान ! ससारमे मासे बढकर कोई नहीं है—बहन, कन्या, स्त्री, कोई नहीं है ।—कहो, तुम्हारी मा अच्छी तरह है ?

भग०—हॉ ।

मर०—झूठ ! जरूर वे अच्छी नही है । सच कहो । वे मांदी हैं ?

भग०—हॉ—लेकिन बहुत नहीं ।

मर०—फिर झूठ ! मै तुम्हारी स्त्री हूँ, मुझसे झूठ !—ना, मुझे जान पड़ता है तुम्हारी मा बहुत सख्त बीमार है ! क्यो ? क्या! चुप

हो ! समझ गई । तुम्हारी मा इस समय कहाँ है ? मै दासीकी तरह उनकी सेवा-टहल करूँगी । बीमारीकी हालतमे मै उनकी देखरेख करूँगी । तुम न जाओगे, मै जाऊँगी । बोलो, उनको क्या हुआ है ?

भग०—निमोनिया—और कुछ नहीं ।

सर०—तो मैने जो सपना देखा, वह झूठ नहीं है ? मैं उनके पास जाऊंगी । आज ही जाऊँगी । तुम यहीं रहो । बचपनहीमे मेरी मा मर गई है । सेवा करनेकी साध नहीं मिटी । 'मा' कह कर पुकारनेकी भी साध नहीं मिटी । अगर और एक मा पाई है तो अबकी उन्हें मा कहकर, सेवा करके, अपनी साध मिटाऊँगी । मै जाऊँगी ।

भग०—इस अवस्थामे तुम्हारा कहीं जाना ठीक नहीं ।

सर०—ठीक नहीं है ! तुम उनके लडके होकर यह बात कह रहे हो !—तुम्हारी मा, जिन्होने तुमको गर्भमे रक्खा है !—बोलो, तुम्हारी मा इस समय कहाँ है ?

[दीनानाथका प्रवेश ।]

दीना०—स्वर्गमे ! उत्सव करो—खुशी मनाओ भगवानदास ! आफत दूर हो गई । उसके मृतशरीर पर तुम दोनो जने ताण्डव नृत्य ै । तुम्हारी बला गई ।

र०—क्या वे मर गईं ?

ीना०—बहू ! धन्य है तुम्हारी यह बहुओकी जाति ! तुम स्वामि- पशुओसे भी अधिक अधम कर डालती हो, भाईको भाईका शत्रु बना देती हो, पुत्रको माताकी गोदसे छीन लेती हो ! धन्य है यह तुम्हारी जाति ! बलिहारी !—और तू भगवानदास ! नीच, दुष्ट और माकी जान लेनेवाला है ! नरकमे भी तुझको स्थान न मिले—मै तो यही कहूँगा ! मैं तुझको शाप देता हूँ कि तू अगर सोना छुए तो

यह मिट्टी हो जाय । तू अपनी मरी हुई माताके मुखकी छाया देख देखकर सदा कोपता रहे। मै तुझे यही शाप दिये जाता हूँ । याद रखना ।

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—बागकी बारहदरी ।

समय—रात्रि ।

[गौरीनाथके दोस्त लोग भिन्नभिन्न प्रकारकी अवस्थाओंमे उपस्थित हैं। वहाँसे कुछ दूरी पर भोजन बनानेवाले नौकर भोजनका सामान पात्रोंमे सजा रहे हैं ।]

माधव—आजकी पार्टी (दावत) खूब जोरशोरके साथ होगी ।

शारदा०—अबकी जान पडता है. दुर्भिक्ष पडेगा ।

बुद्धूलाल—ओरे भग्गू तमाखू भर ले ।

शंकर—मनोहरलालकी स्त्री बहुत मॉदी है ।

शारदा०—यह साबित हो गया है कि बख्तियार खिलजीने ‘ नदिया ’ (नवद्वीप) पर हमला नहीं किया ।

माधव—अबकी जाडा खूब पड रहा है ।

नारायण—अजी गीतगोविन्द तुम्हे कैसा लगता है ।

हरिचन्द्र—अरे भग्गू सोडावाटर भी लाया है ?

चन्द्रभानु—तुम्हारे लडके वाले कै है ?

शारदा०—अशोकके समयमे बौद्धधर्मका प्रचार नहीं हुआ । एक ताम्रपत्रका लेख मिला है ।

पार्व०—जोजी ! Give me a glass of liquid fire—distilled damnation (मुझे एक ग्लास तरल अग्नि—चिर-दण्डका—मद—दो)

[गौरीनाथका प्रवेश ।]

शंकर—लो ये गौरीनाथ बाबू आगये ।

गौरी—कहाँ ! अभीतक नहीं आई ?

शंकर—जापानियोंने जिस दिन पोर्टआर्थर पर दखल किया था, उस दिन हमारे आफिसमे जो लोग रूसके पक्षमे थे उन्होने तमाखू नही पी ।

माधव—सचमुच !—वह देखो—

[सारगियोंके साथ मुन्नीबाईका प्रवेश ।]

चन्द्रभानु—हट जाओ, हट जाओ । बी साहबके लिए रास्ता कर दो, रास्ता कर दो ।

(चन्द्रभानु सबको हटाकर रास्ता करता है । माधव चादरसे रास्ता झाडता है । बुन्दूलाल चादरसे मुन्नीके हवा करता है । शारदा शान्तभावसे तमाखू पीते पीते शंकरके साथ धीरे धीरे बातें करता है । बैजू जाकर मुन्नीका हाथ पकड़ता है और कहता है—" आइए । ")

मुन्नी—हाथ छोड़िए । (छुड़ा लेती है ।)

बैजू—अरे बापरे ! यह तो रण्डी नहीं, काला नाग है । एकदम फन फैलाकर फुफकार उठा ! आओ रानी ! (फिर हाथ पकड़ना चाहता है ।)

मुन्नी—खबरदार, मुझे छूना नही ।

बैजू—अजी गौरीनाथ ! (सिर घुमाकर इशारेसे प्रश्न करता है ।)

काली०—अजी बी साहबकी भाषा तो एकदम अखबारी भाषा है-बुभाषा है ! ये तो कोई बहुत ही भले मानुसोंमे हैं । । Is the vision ! Or a fairy ! She seems to me too fine to be a woman (यह काल्पनिक चित्र है या अप्सरा ? मेरी समझमे नारी तो ऐसी सुन्दरी हो नहीं सकती ।)

गौरी०—इतनी नाराज क्यो होती हो रानी ! तुम तो वेश्या हो ।

मुन्नी—जिसकी मा वेश्या और बाप वेश्यागामी है, वह वेश्या न होकर क्या स्वर्गकी देवी होगी? तो भी मै वेश्या नही हूँ।

[सब चौंककर मुन्नीकी ओर देखने लगते हैं।]

वृद्ध०—तुम वेश्या नही हो? तो तुम क्या सीता सती हो!

मुन्नी—हाय! अस्वीकार भी नही कर सकती। यह कलंक—यह दोष—विधाताने मेरे मत्थे पर दाग दिया है। मै क्या कर सकती हूँ!—जाने दो। साहब, गाना शुरू होगा?

गोरी०—तुमसे सिर्फ गानेके लिए कहा गया है, या नाचोगी भी?

मुन्नी—जी नहीं, सिर्फ गाऊँगी।

कामता०—और हम ऑखे बंद करके सुनेगे?—इसे क्या तुमने उपासनाका मन्दिर समझा है!

माधव—अच्छा गाओ।

मुन्नी—(सारंगीवालोसे) छेडो।

(सगतके लोग पेट बॉधते है।)

गोरी०—ठहरो! पहले ठीकठाक कर ले! (मुन्नीसे) तुम क्या सिर्फ गानेके लिए आई हो?

मुन्नी—जी हॉ।

गोरी०—सो न होगा।

मुन्नी—आपकी खुशी। (जाना चाहती है।)

गोरी०—जाती कहॉ हो!—पेशगी रुपये लेकर—

मुन्नी—(सगतवालोसे) रुपये फेक दो।

(एक सारंगीवाला नोट और रुपयोकी पोटली फेक देता है। मुन्नी और उसके साथी जाते है।)

माधव—हो! एकदम क्वीन सेमिरेमिस् है।

बैजू—आज का मनोरंजनका सब सामान मिट्टी कर दिया ।—अजी पुकारो—पुकारो । गाना ही हो । शिवदयालु ! पुकारो ।

(शिवदयालु बाहर जाकर मुन्नी और उसके साथियोंको बुला लाता है।)

गौरी०—अच्छा गाओ, तुम कैसी हो, सो और दिन देख लूँगा।

मुन्नी—(साथियोंसे) सारंगी मिलाओ ।

(सगतके लोग तबला और सारगी मिलाते हैं।)

शारदा०—(शंकरसे) तुम महामूर्ख हो !

शंकर—तुम वज्रमूर्ख हो ।

शारदा०—सन् १४१५ ।

शंकर—सन् १४१६ ।

शारदा०—बेअदब !

शंकर—चुप रहो !

गौरी०— क्या है ! क्या हुआ ! क्या हुआ !

शारदा०—Battle of Agincourt (अजिनकोर्टके युद्ध) का सन् १४१५ है ।

शंकर—नहीं, Battle of Agincourt (अजिनकोर्टके युद्ध) सन् १४१६ है ।

शारदा०—पाजी !

शंकर—बेवकूफ !

शारदा०—आजाओ तो (आस्तीन चढाता है।)

शंकर—आओ न, देखूँ (आस्तीन चढ़ाता है।)

गौरी०—अरे करते क्या हो ! करते क्या हो !—हुआ क्या ?

शारदा०—Battle of Agincourt (घूसा तानता है।)

शंकर—हाँ Battle of Agincourt (घूसा तानता है।)

शारदा०—सन् १४१५ (हुङ्कार)

शंकर—सन् १४१६ (हुङ्कार)

चन्द्र०—अरे Battle of Agincourt किस सनमे हुआ—इस बातको लेकर घूसे क्यो तानते हो ?—क्या यही इसका झगडा करना है ! यहाँ तो दिल बहलाने आये हो !

शारदा०—अच्छा—आओ, बाहर आओ । (धोती समेटकर बाँधता है ।)

शंकर—आओ न (धोती समेटकर बाँधता है ।)

शारदा०—मैदानमे चलो ।

शंकर—चलो ।

शारदा०—(कूदता हुआ) Battle of Agincourt.

शंकर—(कूदता हुआ) Battle of Agincourt

दोनो—Battle of Agincourt (हुङ्कारके साथ जाते हैं ।)

गौरी०—अरे ! ये करते क्या है ! Battle of Agincourt के लिए दोनो लडभिड क्यो रहे है !

काली०—बेशक दोनो बहादुर है ! सचमुच ही जैसे दोनो जनें Battle of Agincourt करने गये है ! लँगोटा मार लिया है, आस्तीने चढा ली है घूसे तान लिये है. कूदते-फांदते है और क्या करते हैं ? Strange, all this difference should be betwixt Tweedledum and Tweedledee (आश्चर्य है कि बेकार इतना [illegible] हो रहा है ।)

गौरी—[illegible] साहब गाऊं ?

काली०—गाओ ।

काली०—ठहरो, पहले यह ठीक हो जाय कि Battle of Agincourt किस सन्‌में हुआ ! मुझे बड़ी चिन्ता है ! रातको नींद नहीं आती ।

(सबका हँसना ।)

गौरी०—तुम हिन्दीके पद भी गाती हो, या सिर्फ उर्दूकी गजलें ?

मुन्नी—दोनो गाती हूँ ।

काली०—तो फिर उर्दू ही गाओ—जिसे समझ सकूँ । Hindi is Greek to me. (हिन्दी मेरे लिये ग्रीक भाषा है ।)

वैजू—नहीं, पहले एक हिन्दीका पद हो जाने दो । (सुरमें) "प्रेम है सबल सहायक सग ।"

काली०—उस्ताद !

चन्द्र०—नहीं जी, उर्दू ही गाओ—ये सब रहने दो । उर्दू ही गाओ ।

माधव—लेकिन अरबी न छाँटना ।

बुध्दू०—हाँ अरबी—फारसी कोई नहीं समझेगा ।

काली०—देखो न, क्या गाती है । Perhaps it may turn out a song or perhaps turn out a sermon (कौन जाने, गीत या धर्मोपदेश हो ।)

गौरी०—पहले एक हिन्दी गाओ ।

मुन्नी—जो हुक्म । (गाती है ।)

पलकनसों पग झारो री मै जब घर आवे मेरा प्यारा ।
गरवा लगाऊँ, तपन बुझाऊँ,—तन मन धन सब वारा ॥

[हीराका प्रवेश ।]

वैजू—यह कौन है ?

गौरी०—(उसे देखकर चौंककर) तुम !—यहाँ !

हीरा—वाह ! खासा सजा हुआ विलासभवन है, चौड़ा साफ और दर्शनीय कमरा है. अलौकिक और हृदयको पागल बना देनेवाला संगीत है।—(गौरीनाथसे) क्यो ! मुँह पर कालिख क्यो आगई ? वह बात नहीं कहूँगी. डरो नही। राह राह जा रही थी, यहाँ रोशनी देख पड़ी, हँसीके साथ सुन्दर गानेकी आवाज सुन पडी; सोचा, जरा झाँक कर देखे जाऊँ कि यहाँ प्रेतका नाच कैसा हो रहा है।

गौरी०—तो—अब जाओ।

हीरा—जरा ठहर ही जाऊँ तो क्या हर्ज है। बाहर घोर अन्धकार है। रास्तेमे तमाम कीचड ही कीचड़ है। जाडेकी ठंडी हवा चल रही है। बहुत दिन पहलेकी उस काल—रात्रिका स्मरण हो आया। जीमे आया, उस पाजी पापीको देखे जाऊँ।

गौरी०—दरवान !

हीरा—कुछ कहती नहीं हूँ; डरो नहीं। इस समय इस सुसज्जित नाट्यशालामे, इस मधुर गीतसे गूँजते हुए प्रकाशपूर्ण विलास-भवनमे, अगर वह बात कहूँ—तो संगीत भयसे थम जायगा, प्रकाश आतङ्कसे मुँह छिपा लेगा, हँसी आर्त्तनाद कर उठेगी।

गौरी०—ए दरवान !

हीरा—उसके बाद उसी अन्धकारमे एकाएक मसानकी चिता नवसे जल उठेगी, सुगन्धित पवन सड़े हुए मुर्देकी दुर्गन्ध उगलने लगेगा, जमीन फोड़कर शैतान उछलने लगेंगे। नहीं, वह बात प्रकट नहीं करूँगी। उस बातको सुनकर बन्धु बन्धुके मुँहकी ओर आँख उठाकर देख न सकेगा, स्त्री अपने स्वामीके गले लगानेकी आड़में छिपा हुआ छुरा देखेगी, सन्तान अपनी माताके दूधमे विष मिले होने-

कालीο—ठहरो, पहले यह ठीक हो जाय कि Battle of Agincourt किस सन्‌में हुआ ! मुझे बडी चिन्ता है ! रातको नींद नहीं आती ।

(सबका हँसना ।)

गौरीο—तुम हिन्दीके पद भी गाती हो, या सिर्फ उर्दूकी गजले ?

मुन्नी—दोनो गाती हूँ ।

कालीο—तो फिर उर्दू ही गाओ—जिसे समझ सकूँ । Hindi is Greek to me. (हिन्दी मेरे लिये ग्रीक भाषा है ।)

वैजू—नहीं, पहले एक हिन्दीका पद हो जाने दो । (सुरमें) " प्रेम है सबल सहायक सग । "

कालीο—उस्ताद !

चन्द्रο—नहीं जी, उर्दू ही गाओ—ये सब रहने दो । उर्दू ही गाओ ।

माधव—लेकिन अरबी न छाँटना ।

बुध्दूο—हाँ अरबी—फारसी कोई नहीं समझेगा ।

कालीο—देखो न, क्या गाती है । Perhaps it may turn out a song or perhaps turn out a sermon (कौन जाने, गीत या धर्मोपदेश हो ।)

गौरीο—पहले एक हिन्दी गाओ ।

मुन्नी—जो हुक्म । (गाती है ।)

पलकनसों पग झारो री मै जब घर आवे मेरा प्यारा ।
गरवा लगाऊँ, तपन बुझाऊँ,—तन मन धन सब वारा ॥

[हीराका प्रवेश ।]

वैजू—यह कौन है ?

गौरी०—(उसे देखकर चौंककर) तुम !—यहाँ !

हीरा—वाह ! खासा सजा हुआ विलासभवन है, चौडा साफ और दर्शनीय कमरा है, अलौकिक और हृदयको पागल बना देनेवाला सगीत है ।—(गौरीनाथसे) क्यो ! मुँह पर कालिख क्यो आगई ? वह बात नहीं कहूँगी, डरो नही । राह राह जा रही थी, यहाँ रोशनी देख पड़ी, हँसीके साथ सुन्दर गानेकी आवाज सुन पडी; सोचा, जरा झॉक कर देखे जाऊँ कि यहाॅ प्रेतका नाच कैसा हो रहा है ।

गौरी०—तो—अब जाओ ।

हीरा—जरा ठहर ही जाऊँ तो क्या हर्ज है । बाहर घोर अन्धकार है । रास्तेमे तमाम कीचड़ ही कीचड़ है । जाड़ेकी ठंडी हवा चल रही है । वहुत दिन पहलेकी उस काल-रात्रिका स्मरण हो आया । जीमे आया, उस पाजी पापीको देखे जाऊॅ ।

गौरी०—दरवान !

हीरा—कुछ कहती नहीं हूँ; डरो नहीं । इस समय इस सुसज्जित नाट्यशालामे, इस मधुर गीतसे गूँजते हुए प्रकाशपूर्ण विलास-भवनमे, अगर वह वात कहूँ—तो सगीत भयसे थम जायगा, प्रकाश आतङ्कसे मुँह छिपा लेगा, हँसी आर्त्तनाद कर उठेगी ।

गौरी०—ए दरवान !

हीरा—उसके वाद उसी अन्धकारमे एकाएक मसानकी चिता भकसे जल उठेगी, सुगन्धित पवन सड़े हुए मुर्देकी दुर्गन्ध उगलने लगेगा, जमीन फोडकर शैतान उछलने लगेंगे । नहीं, वह वात प्रकट नहीं करूँगी । उस वातको सुनकर वन्धु वन्धुके मुँहकी ओर ऑख उठाकर देख न सकेगा, स्त्री अपने स्वामीके गले लगानेकी आड़मे छिपा हुआ छुरा देखेगी, सन्तान अपनी माताके दूधमे विप मिले होने-

का सन्देह करेगी। कुछ नहीं कहूँगी--डरो नहीं। तो भी जी चाहता है कि एक बार उस बातको जगत्के आगे प्रकट कर दूँ. फिर क्या होता है--सो जरा देखूँ। जरा कहकर देखूँ, क्या होता है।

गौरी०---कहाँसे एक पगली आकर भिड गई है! निकालो इसे---

हीरा---क्या कहा पगली? निकालो इसे? तो कहूँ!---हाँ, कहूँगी। इस बातको फैला दूँगी! अब इसे दबाकर रक्खा नहीं जाता।---साहबो! मैं पगली नहीं हूँ। मै जो बात आज कह रही हूँ वह पागलका प्रलाप नही है।

गौरी०---दरबान! दरबान!

(दरबानको पुकारता हुआ बाहर जाता है।)

हीरा--हम लोग ईश्वरको साक्षी मानते है, लेकिन ईश्वर कभी गवाही देने नहीं आते। वे हाथ समेटे बैठे है। मरा मनुष्य गवाही नहीं देता;---केवल स्थिर, आभाहीन, दृष्टिहीन नेत्रोंसे ताका करता है। मगर मै जो बात इस सभामे प्रकट करूँगी उसके हरएक अक्षरको चाहे जिस अदालतमे साबित कर सकती हूँ।---ना, मै पागल नही हूँ। यह दुर्बल, फटे चीथडे पहने, रूखे बाल बिखेरे, धूलसे भरी है, कंगाल औरत---एक अच्छे खानदानकी पढी-लिखी औरत है।

[गौरीनाथका फिर प्रवेश]

गौरी०---दरबान गया कहाँ? निकल जा कहता हूँ, नही तो---

हीरा---साहबो, आप लोगोके आगे यह जो एक सीधे-सादे भले-मानुसकी पोशाक पहने खडा है,---सो ठग, व्यभिचारी, हत्या---

गौरी०---(दौडकर हीराका गला जोरसे दबाता है।) चुप रह---

हीरा---बचाओ---बचाओ (गला छुडानेकी चेष्टा करती है) तो मै आज यह बात प्रकट करके मरूँगी।---बचाओ।

मुन्नी—सामने ही एक स्त्रीकी हत्या हो रही है; और सब मर्द पत्थ-
रकी मूरतोकी तरह चुपचाप बैठे तमाशा देख रहे है। जब मर्द ऐसे नामर्द
—तब मर्दका काम स्त्री जातिको ही करना पड़ेगा। (दौडकर गौरी-
नाथका गला पकडत्ती है) छोड दो—छोड़ो अभी—नहीं तो—

गौरी०—(हीराको छोडकर) चुप रहो! (मुन्नीका गला पकड़ता है ।)

मुन्नी—इसके लिए भी तैयार होकर आई हूँ (अपने शलूकेके नीचेसे
उसी दम एक तेज और चमकता हुआ छुरा निकाल कर और गौरीनाथके
हृदयको लक्ष्य करके) सावधान !

(गौरीनाथ उसी दम मुन्नीको छोड़कर पीछे हटता है। मगर मुन्नी छुरा
हाथमें लिये वैसे ही खड़ी रहती है । इसी बीचमें प्राय सभी महफिलके आदमी
उठकर खडे हो जाते हैं और चुपचाप विस्मयके साथ मुन्नीकी ओर ताकते हैं।
हीरा दोनों ऑखें फाड़ कर मुन्नीको देखती है। फिर भयपूर्ण स्वरसे चिल्लाकर
मुन्नीसे पूछती है—" कौन हो तुम ?—कौन हो तुम ? " इसके साथ मूर्छित
हो जाती है ।)

तीसरा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—भोलानाथकी बाहरी बैठक।

समय—सबेरा।

[भोलानाथ, प्रेमशंकर और कालीचरण।]

प्रेमशंकर—आप दोनो हाथोसे संपत्ति लुटाये देते है—अन्त आपको हाथ धोकर राहमे बैठना पड़ेगा।

भोला०—जब बैठना होगा, बैठूँगा।

प्रेम०—तो भी लुटाये जायँगे?

भोला०—जबतक है, जरूर लुटाऊगा!

प्रेम०—अब और है क्या, जो लुटाइएगा?

भोला०—इसके क्या माने! इस घरको क्या तुम साधारण संपत्ति समझते हो भैया!—और जमींदारी भी है!

प्रेम०—जमींदारीके इलाके तो एक एक करके सब बिक गये

भोला०—कैसे!—तो फिर रुपये कहाँसे आते है?

प्रेम०—ये रुपये तो नीलाममे मालगुजारी अदा करनेसे बची हुई रकमके हैं। आपको यह भी नही मालूम? आप जानते है, इस समय आपकी जमींदारीकी आमदनी कितनी है?

भोला०—कितनी है?

प्रेम०—आपको कुछ भी खबर नही है?

भोला०—नहीं?

प्रेम०—आश्चर्य है !—अच्छा, जमींदारीकी आमदनी एक लाख रुपये होगी ?

भोला०—सो होगी।

प्रेम०—या पचास हजार ?

भोला०—सब मिलाकर !—

प्रेम०—इतनी भी नहीं है।

भोला०—नहीं है ? सच ?

प्रेम०—इस समय सालाना आमदनीके दस हजार तक होनेमे भी सन्देह है।

भोला०—यह क्या !—

प्रेम०—दो लाख थी, अब दस हजार रह गई है।

भोला०—हॉ ! बाकी एक लाख नब्बे हजार क्या हुई ?

प्रेम०—मालगुजारी न पहुॅचनेसे सब इलाके नीलाम हो गये।

भोला०—जाने दो—आफत गई।

प्रेम०—यह सब आपके गुमाश्तेकी करतूत है। वह सारा लगान वसूल करके उसकी रकम खुद ही हडप कर गया है।

भोला०—सच ! उसने क्यो ऐसा किया ?—मुझसे मॉगता तो मैं ही उसे दे देता।

प्रेम०—इसके सिवा उसने गौरीनाथसे मिलकर नीलामी इश्तिहारका निकलना बन्द कराकर जमींदारी नीलाम करा दी है।

भोला०—नीलाम करा दी है ? नहीं नहीं, यह भी कहीं हो सकता है ! तुमने सुननेमे भूल की है।

प्रेम०—सुननेमे भूल की है !—पहले सुना ही था, पर इस समय विशेष रूपसे जॉच करके सब जान लिया है।—सुनिए, अब भी

जरा हाथ समेटिए; नहीं तो दो दिन बाद भोजनका सुभीता न रहेगा।

भोला०—(हँसकर) यह भी कहीं हो सकता है भैया ?

प्रेम०—जो कुछ जमींदारी बची है, आजसे मैं उसकी देखरे करूँगा। आप अब हाथ समेट कर बैठिए।

भोला०—हाथ कहीं समेटे जा सकते हैं ? गरीबकी प्रार्थना सुन कर आप ही आँखोंमें आँसू भर आते हैं, उसे छातीसे लगा लेने लिए हाथ आप ही आगे बढ जाते हैं। हाथ समेट लूँ ! यह भी कह हो सकता है भैया !

काली०—The robbed that smiles, steals something from the thief (लुट जाने पर हँसना लूटनेवालेहीका कुछ हर लेना है

(प्रस्थान।)

भोला०—प्रेमशंकर ! चेष्टा करनेसे अपने घरका खर्च कम क सकता हूँ। मगर दूसरोंका दुःख छुड़ानेमें हाथ समेटना असंभव है तुम नहीं जानते, त्यागमें क्या आनन्द है, दानमें क्या सुख है आँखोंके आँसू पोंछ देना, सूखे ओठोंमें हँसी पैदा कर देना, मलिन ...को प्रसन्न करना—यह भी एक सृष्टि है। कठोरसे प्यार करना, ...को कृतज्ञ बनाना—तुम जानते नहीं प्रेमशंकर—हे हे हे—तुम ...भी बिलकुल ही बच्चे हो !

प्रेम०—और इधर एक एक करके आपकी सब जमींदारी गौरीनाथने खरीद ली।

भोला०—खरीद ले। उसे तो आनन्द मिलता है।

प्रेम०—चोर धर्मकी बात नहीं सुन सकता। (प्रस्थान।)

भोला०—प्रेमशंकर बहुत नाराज हो गया है।—वह कौन आ रहा है? दीनानाथ है! हाँ दीनानाथ ही तो है! आओ दीनानाथ। बहुत दिनोंके बाद आये!

[दीनानाथका प्रवेश ।]

भोला०—आओ मेरे प्रियतम बाल्य-बन्धु—(जल्दीसे उठकर गले लगाकर) कब आये?

दीना०—आज ही।

भोला०—ओः! कबसे तुम्हे नहीं देखा!—मेरी सरस्वती तो अच्छी है?

दीना०—बहुत अच्छी तरह है!

भोला०—और भगवानदास?

दीना०—उससे भी अधिक।

भोला०—बैठो बैठो! सरस्वतीका हाल कहो! कबसे उसे नहीं देखा—तबियत अच्छी नहीं रहती—बाई सताये रहती है—पर इसे छोडो, बताओ, सरस्वतीके साथ तुम्हारी मुलाकात होती थी?

दीना०—हा होती थी?

भोला०—वह तुमसे कुछ मेरी बातचीत करती थी!—कहती थी कि वह मुझे अब भी उसी तरह प्यार करती है!

दीना०—प्यार क्यो न करेगी!—तुमने उसका व्याह जो कर दिया है!

भोला०—कैसा व्याह कर दिया है!

दीना०—बहुत ही अच्छा! ऐसी सोनेकी प्रतिमा एक चाडालको सौंप दी है।

भोला०—इसके क्या माने!—

दीना०—उसकी अवस्था जरा खुद जाकर देख आओ!—इस समय उसको देखकर पहचान नहीं सकोगे।

भोला०—क्यो !

दीना०—क्यों क्या ! मानसिक कष्टसे—भरपेट भोजन न मिल-नेसे—

भोला०—भरपेट भोजन न मिलनेसे ! क्यो ! मैं उसे हर महीने ५००) रु० भेजता हूँ, सो क्या नही भेजे जाते ?—प्रेमशंकर !—

दीना०—भेजे जरूर जाते है और पहुँचते भी है ; मगर तुम्हारा लाड़ला नत-दमाद उनमेसे ४००) रु० एक वेश्याके चरणोमें अर्पण कर देता है ।

भोला०—क्या ! किसके चरणोमें अर्पण कर देता है ?

दीना०—और किसके चरणोमे ! उसी वेश्याके चरणोमें !—खूब छाँटकर लड़का खोजा था ! तुम्हारी सम्पत्तिका उपभोग एक वेश्या कर रही है ।—बलिहारी !

भोला०—तुम क्या कहना चाहते हो कि भगवानदासने एक वेश्या रक्खी है ?

दीना०—सो क्या तुम नहीं जानते ? सुना नहीं ?

भोला०—नहीं ! बिटियाने तो यह कुछ लिखा नहीं !

दीना०—लिखा नहीं कि भरपेट खानेको नहीं मिलता ?

भोला०—कहाँ !—नहीं तो ।

दीना०—लिखा नहीं कि उसका बच्चा भरपेट आहार न मिलनेसे ज्वरमें दवा न पानेसे मर गया ?

भोला०—कौन ! बच्चा ?

दीना०—हाँ बच्चा ।

भोला०—मर गया ?—यह सब क्या कह रहे हो ?

दीना०—यह भी नहीं सुना ?

भोला०—मर गया ?—कहाँ ! बिटियाने तो कुछ नहीं लिखा ।

दीना०—लिखा नही ! आश्चर्य है !

भोला०—मर गया ? ठीक मालूम है ?

दीना०—मेरे कहने पर विश्वास नहीं होता ?

भोला०—समझ गया सरस्वती । यह सुनकर मुझे कष्ट होगा, यही समझकर यह बात तूने नही लिखी !—ओः ! इसी अवस्थामें तुझे पुत्रशोक भी सहना पड़ा बेटी !

दीना०—भाग्यकी बात है !

भोला०—भगवानदासने वेश्या रक्खी है ?

दीना०—हाँ ।

भोला०—वेश्या ?

दीना०—समझमे नहीं आता ? मै तो विशुद्ध हिन्दीमें कह रहा हूँ । ग्राम्य भाषामें कहूँ ?

भोला०—वेश्या रक्खी है !—क्यों !

दीना०—लो ! इस 'क्यो' का जवाब मै क्या दूँ !—वेश्याको लोग क्यों रखते है !

भोला०—भगवानदास क्या अब सरस्वतीको प्यार नहीं करता ? कहते क्या हो !

दीना०—प्यार क्यो नहीं करता ! तुम्हारी पोती ही तो उस वेश्याका खर्च जुटाती है ।

भोला०—सिर फिरा जा रहा है—ठहरो । भगवानदास सरस्वतीको अब प्यार नहीं करता !

दीना०—वैसे ही प्यार करता है जैसे सांप मेंडकको किया करता है ।

भोला०—लेकिन पहले तो खूब प्यार करता था !

दीना०—करता होगा।

भोला०—इस बातको मैंने कभी स्वप्नमे भी नहीं सोचा ! सरस्वतीको प्यार किये बिना कोई रह सकता है ! यह बात मेरी धारणामे ही नहीं आसकती। वह मेरी सरस्वतीको बहुत प्यार करता था ! सरस्वतीके सिवा और किसीको जानता ही न था ! वह सरस्वतीके नाम पर उछल पड़ता था ! यह सब क्या मैने स्वप्न ही देखा था ! वह क्या मेरा भ्रम ही था ! यह तो मैंने कभी सोचा ही नहीं !

दीना०—पृथ्वी पर ऐसी अनेक बाते होती है जिनके बारेमे पहले कभी कोई नहीं सोचता।

भोला०—(चिन्तितभावसे) वह उसे बहुत चाहता था !—खूब याद है। एक दिन, याद आता है,—उस दिन विजयादशमी थी—उस दिन शरद ऋतुके शान्त सन्ध्याकालमे, मेरी पोती आमके बागमे एक अमरूदके पेड़की शाखामे दोनो हाथ डाले खडी हुई थी, अस्त होते हुए सूर्यकी सुनहली किरणें उसके मुखपर पड रही थी; दूर पर शहनाई बज रही थी; हवासे वृक्षोके पत्ते हिल रहे थे, भगवानदास एक गुलाबका फूल तोडकर हँसते हँसते सरस्वतीके जूडेमे लगा था; एक भौरा एक फूलसे उडकर दूसरे फूल पर बैठ रहा था। म आड़मे खडा हुआ उस मधुर चित्रको अपने हृदयपटल पर अंकित हा था। उस दिन तो भगवानदास उसे प्यार करता था !

दीना०—उस समय कौन नहीं प्यार करता ! वह युवकके सामने युवती थी, भूखेके सामने स्वादिष्ट भोजन था !—प्यार न करता !

भोळा०—उसके बाद सन्ध्याको दीपक जल जाने पर सरस्वतीने आकर ज्यों ही मुझे प्रणाम किया, त्यो ही मैने अपने कांपते हुए हाथोंसे उसे

उठाकर हृदयसे लगा लिया और वारंवार उसके मुखका चुम्बन किया। उसके वाद हँस कर उससे पूछा—"सरस्वती! बागमे क्या हो रहा था।" सरस्वतीने हँसकर कर कहा—"आप शायद छिपे छिपे देख रहे थे! आप वडे ऐबी है!"—यह "आप वड़े ऐबी है!" उसने इस तरह कहा —क्या कहूँ दीनानाथ—वह मानो अभीतक मेरे कानोमे गूँज रहा है।

दीना०—लो! अब प्रेमका इतिहास शुरू हुआ।

भोला०—उसके बाद उस दिन रातको सरस्वती और भगवानदास दोनो मुझसे विदा हुए। बिदा करते समय सरस्वतीको जोरसे छातीसे लगाकर मै चिल्लाकर रो उठा। सरस्वती भी रो उठी।

दीना०—उसका खयाल करके अब सचमुच ही न रोइए।

भोला०—(कुछ प्रकृतिस्थ होकर) उसके वाद मैने कहा—"सरस्वती मुझे याद करेगी?" तब सरस्वतीके मुखमे हँसी और ऑखोमे ऑसू थे.—वह वडा ही अपूर्व दृश्य था दीनानाथ,—उस समय सरस्वतीने कहा "दादाजी, आपको जब भूलूँगी तब चिट्ठी लिखकर जता दूँगी।" उसके वाद गाडी पर चढकर दोनो जने चले गये। सरस्वतीने गाड़ीसे मुँह वढाकर कहा—"चिट्ठी लिखिएगा दादाजी!" गाड़ी चली गई! पृथ्वीने दोनो हाथोसे मुँह ढँक लिया। उस रात्रिके आकाशमे एक लँबी सॉस उठकर लीन हो गई। यह आज तीन सालकी वात होगी।—हॉ ठीक तीन सालकी!

दीना०—इसको अस्वीकार कौन करता है?

भोला०—उसके वाद तबसे अवतक उसका वही हँसीसे सुशोभित चेहरा मानो मेरी ऑखोके आगे नाचता रहता है, उसका वह स्वर वायुमड-लमे गूँजा करता है। कितनी ही वडी वडी रातोमे मैने उस मानसी मूर्त्तिको ऑसुओंसे स्नान कराया है। वह तो मानवी नहीं है दीनानाथ!—

वह तो देवी है, वह कविकी कल्पना है, वह ध्यानकी धारणा है, वह मानसी प्रतिमा है—इसीसे शायद भगवानदास उसे जान नहीं सका।

दीना०—जान तो खूब सका था;—लेकिन अब उन बातोंको सोचनेसे क्या होगा ! कोई उपाय करो।

भोला०—उपाय !—हाँ उपाय तो अवश्य करना चाहिए। लड़का बिगड़ गया है।—दीनानाथ तुम भोजन कर चुके ?

दीना०—हाँ कर चुका।

भोला०—ऊँहूः।—कुछ ठीक उपाय नहीं सूझता।—भवानी-प्रसाद।

दीना०—इस समय आप कोई उचित उपाय कीजिए।

भोला०—हाँ कुछ करूँगा।—सो तो करना ही चाहिए।—कुछ करूँगा।—अजी भवानीप्रसाद !

[भवानीप्रसादका प्रवेश।]

भोला०—अजी एक गाना तो गाओ।

दीना०—क्या गाना गावेगे !

भोला०—मेरे सिरके भीतर न जाने क्या हो रहा है।—हां जी—वेश्याका चेहरा कैसा है ?

ना०—लो ! इतनी देरके बाद आप पूछ रहे है कि उसका कैसा है !

भोला०—वह देखनेमें मेरी पोतीसे अच्छी है ? मेरी पोतीसे बढकर कर खिंची हुई भौंहें हैं ? उससे बढकर काली आँखें है ?—कभी उल्लाससे चमक उठती है और कभी जलसे भर आती है। उससे बढकर मीठी हँसी है ?—दोनों लाल लाल ओठ मानो दूध ऐसे दाँतोंसे हर घड़ी हँसा-बोला करते है। उससे बढ़कर सुडौल गोल भुजायें हैं ?—सोनेके

जड़ाऊ गहनो और चूडियोने जैसे उन्हे वड़े आदरसे घेर रक्खा है। उससे वढकर कोमल हथेलियाँ है?—चमेली और गुड़हल वहाँ जैसे प्रभुत्वके लिए युद्ध कर रहे है। उसका रंग क्या मेरी पोतीके रंगसे भी वढकर गुलावी है—कण्ठके स्वरमे झनक है—धीमी चाल है—लज्जासे नम्र भङ्गिमा है—काले केश है? आहा, वह गर्दन हिलाती थी, और पासके केश उड़कर प्यारसे उसके मुखको चूमने लगते थे।—

दीनी०—लो अब कविता शुरू हो गई।

भोला०—सवसे अच्छी है उसकी दोनों आँखें! उसका देखना कितनी ही तरहका था।—गाओ भवानीप्रसाद। कोई सुन्दर गीत गाओ।

(भवानीप्रसादका गान।)

सोहनी। गजल।

अब क्यों मुझे, मैया, पुकारो, मै तुम्हारे पास हूँ।
वस गोद लेकर प्यार कर लो—पुत्र हूँ मैं दास हूँ॥

दोहा। खेल चुका सन्ध्या हुई दौड़ तुम्हारे पास—
आया हूँ, खोऊँ नहीं तुमको, है यह त्रास॥

मुझको तुम्हारा ही सहारा औरसे मैं क्या कहूँ।
वस गोद लेकर प्यार कर लो०॥

दोहा। धीरे धीरे छारहा अन्धकार यह मात।
अभय वाहुसे घेर लो, होवे नही निपात॥

वस मैं तुम्हारे हृदयसे लगकर अभय हो सो रहूँ।
वस गोद लेकर प्यार कर लो०॥

दोहा। पाया अवकी जो तुम्हें श्यामा, तो मैं आज—
तुम्हें छोड़नेका नही छूटे सभी समाज॥

तेरी शरणको छोड़कर किसके चरण जाकर गहूँ ?
बस गोद लेकर प्यार कर लो० ॥

(गाते गाते भवानीदासका प्रस्थान ।)

दीना०—यह क्या भोलानाथजी, तुम तो रोते हो !

भोला०—नहीं । चलो दीनानाथ, जरा टहल आवें ।

दीना०—चलो ।

(दोनोंका प्रस्थान ।)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—मुन्नीके घरका भीतरी हिस्सा ।

समय—सन्ध्याकाल ।

[मुन्नी अकेली है ।]

मुन्नी—आज कुछ भी अच्छा नहीं लगता । जैसे आकाश बदलीमे ढँक रहा है, वैसे ही मेरा मन भी ढँक रहा है । मेरे जीवनका प्रधान काम है मानो समयको गवाँना । मेरे जीवनका प्रधान सुख है—आप अपनेको भूले रहना । लेकिन फिर भी खाती हूँ, सोती हूँ, हँसती-बोलती हूँ; इस नीच रूपको दर्पणमे देखती हूँ, सवारती हूँ, सिगारती हूँ—और कोई काम नही है, इस लिए । (लंबी साँस लेना) एक नदी, एक ऊसर खेत, एक जीवोंसे खाली वन, एक मुर्दा शरीर (खिड़कीके पास जाकर बाहरकी ओर देखकर) पानी पड़ रहा है, -झिम रिम-झिम वर्षा हो रही है । हवा नहीं है, बिजली नहीं है, गर्जन नहीं है । एक मलिन, स्थिर, बुझा हुआ दिन है । मेरे जीवनका चित्र है !—कौन !—उस्तादजी ।

[उस्तादजीका प्रवेश ।]

उस्ताद—हाँ बेटी ।

मुन्नी—आदाब। बैठिए उस्तादजी।

उस्ताद—सलाम (बैठकर) हमको बुलाया था बेटी ?

मुन्नी—जी हाँ।

उस्ताद—किस वास्ते ?

मुन्नी—उस्तादजी ! आप मुझसे नाराज है ?

उस्ताद—नहीं तो।

मुन्नी—बेशक हैं। इतने दिनोंतक मुझसे मुलाकात भी नही की, खबर भी नहीं ली ! एक खत भी नहीं भेजा !

उस्ताद—तुम हमारी कौन हो बीबीसाहब !

मुन्नी—नाराज़ मत हूजिए !

उस्ताद—हमारे गुस्सा होनेसे तुम्हारा हर्ज क्या है ?—ऐसा ही दस्तूर है। तुम लोग किसी जवान मर्दके मिलते ही उस पर आशिक हो जाती हो—उसका दम भरने लगती हो। ऐसा ही दस्तूर है—ऐसा ही दस्तूर है (आँखें पोंछना) लेकिन—मिजाजशरीफ ?

मुन्नी—आपकी दुआ है।

उस्ताद—वह तुम पर आशिक है ?

मुन्नी—कौन ?

उस्ताद—वही मर्द।

(मुन्नी सिर झुका लेती है।)

उस्ताद—ऐसा ही दस्तूर है। मर्द जवान है।—तुम भी प्यार करती हो ?

मुन्नी—अलबत ! आप क्या समझते हैं, मै रुपयेके वास्ते—

उस्ताद—कभी नहीं। लेकिन उसके बीबी है ?

मुन्नी—किसके ?

उस्ताद—तुम्हारे खाविदके, तुम्हारे प्यारेके, तुम्हारी जानके !—उसके बीवी है ?

मुन्नी—(सिर झुकाकर धीमे स्वरसे) है।

उस्ताद—(उठकर) जहन्नुममे जाओ। (क्रोधके साथ प्रस्थान।)

मुन्नी— (कुछ देर चुप रहकर) समझ गई उस्तादजी ! सच बात है। यह बात नहीं है कि इस बातका खयाल मुझे पहले न आया हो। मैने सोचा था, प्यारसे—प्रेमसे—सब पवित्र होता है, मिट्टी भी सोना हो जाती है।—लेकिन—नहीं, यही बात कैसे कही जा सकती है !—प्रेम जिसके साथ है; उसीका न्यायसे अधिकार है ! नहीं तो—

गजल।

तुम्हें चाहा है, चाहूँगी तुम्हें ही प्रीतिप्रण धारे।
हृदयसे मैं निबाहूँगी तुम्हारे प्रेमको प्यारे॥
तुम्हारे दुःखमें दुखिया, तुम्हारे सुखमे सुख पाती—
रहूँगी और प्रिय तुम भी कभी होना नहीं न्यारे॥
तुम्हारा हास्यसे उज्ज्वल खिलेगा मुखकमल हरदम।
रहूँगी उसके गौरवकी मनोहर गन्ध विस्तारे॥
घटायें जब घिरी होगी गगनतल पर घनी, तब मैं—
तुम्हारे नैनके जलमे बहूँगी, तुम पै सब वारे॥
मिलनमें मै तुम्हारे ही मिलनके गीत गा गाकर—
तुम्हारा ही मनोरंजन करूगी छोड़ सुख सारे॥
विरहमें हो मलिनमुख दुख-भरी सूनी नजरसे मै—
तुम्हारी राह ताकूंगी, रहूँगी मौन मन मारे॥
नयन खोले हैं ज्योत्स्ना-जागरणमें जो तुम्हारे, तो—
तुम्हारे मुप्त नयनो साथ मूँदूँगी नयन प्यारे॥
सदा जीवन-मरणमें मै तुम्हारी ही रहूँगी बस,
मिलूँगी तुमसे हरएक जन्ममें आकर नयन-तारे।

दृश्य।]

[भगवानदासका प्रवेश]

मुन्नी—कौन ! बाबूजी ?

भग०—हाँ, मैं हूँ।

मुन्नी—आओ प्यारे ! (आगे बढ़कर गले लगनेके लिए हाथ बढ़ाती है)

आओ प्राणप्यारे !—

भग०—(पीछे हटकर) यह क्या बात है ! ...। अपराध है ! मै

मुन्नी—मैं आपको प्यार करती हूँ, यह ...—तुम—तुम ! तुम मेरे

आपको—नहीं मैं अब 'आप' नहीं कहूँगी, तुम मेरी जानकी जान हो, तुम

प्रियतम हो, तुम मेरे हृदयके ...र्क बीचमें करके) तुम मेरे हो, और

मेरे—(भगवानदासको दोनों ...

किसीके नहीं। ...ता है !

भग०—यह क्या ...ाह न हो तो प्रेम निषिद्ध है?—कौन कहता है—

मुन्नी—व्याह ... कबूलियत लिख देना है—घेरेसे जमीनको

व्याह ? वह तो ... ही नहीं, जमींदारकी रिआया भी जमीनको

घेर लेना है। ...च सकती है। लेकिन स्त्री—मरते दम तकके

छोड़ दे सकत...डी है। चाहे उसका अनादर किया जाय, उसके

लिए खरीदी ...से छोड़ दिया जाय—उसे अपने पतिके चरण-

लातें मारी ...रते करते ही मरना होगा।—यही तो स्त्रीका धर्म

कमलोंका ...

बताया ग...ा ये सब बातें क्यों कह रही हो मुन्नी।

भ... द प्रेम व्याहके बिना किया जाय तो वह वेश्यासक्ति है।—

...है ?—यही तो प्रेम है। दासभाव नहीं है, विपत्ति नहीं

कौ...ी नहीं है, भविष्यका अन्देशा नहीं है—एक बाधाहीन

है

मुन्नी—मैं भी आपकी कोई नही हूँ। मै लताकी तरह ऊपर उठकर आज आपको घेरे हुए हूँ। लेकिन जिस दिन मै आपको नहीं रुचूँगी, उस दिन आप मेरे हाथोंके इस क्षीण बन्धनको तोड़कर चले जायँगे।

भग०—कौन कहता है!

मुन्नी—मै जानती हूँ! मै जानती हूँ!

भग०—कभी नहीं जाऊँगा।

मुन्नी—नही जाओगे! सच कहो—नहीं जाओगे! सच कहो—छाती पर हाथ रखकर कहो—तुम मुझे प्यार करते हो? सच? सच?

भग०—प्यार करता हूँ।

मुन्नी—स्त्रीसे बढकर? अपनेसे बढकर? आत्मासे बढकर?—जैसे मै प्यार करती हूँ वैसे?

भग०—हाँ मुन्नी।

(मुन्नी एक लंबी साँस लेती है। दासी दीपक जलाकर लाती है और रखकर चली जाती है।)

भग०—रात हो गई। एक कोई गाना गाओ।

मुन्नी—आपकी स्त्री देखनेमें कैसी है?

भग०—बहुत सुन्दर है।

मुन्नी—बहुत ही।

भग०—न हो, एक दिन जाकर देख आओ।

मुन्नी—वह आपको प्यार करती है?

भग०—हाँ।

मुन्नी—लेकिन इस तरह?

भग०—किस तरह ?

मुन्नी—मेरी तरह ?—जैसे समुद्रकी उठती हुई लहर ? राहुका ग्रास ? दावानलका आलिंगन ? भूखे बाघका गर्जन ?—मै जैसे क्रोधसे भरी हुई नागिनकी तरह फन उठाकर—ना ना, भागिए भागिए !—मै आपका सर्वनाश हूं; आपके लिए अभिशाप हूँ; आपके लिए नरक हूं ।—भागिए भागिए ।

तीसरा दृश्य ।

स्थान—मुन्नीके घरके सामनेकी सडक ।

समय—चांदनी रात ।

[भोलानाथ, भवानीप्रसाद और दीनानाथका प्रवेश ।]

भोला०—यही घर जान पड़ता है ।—क्यो दीनानाथ ?

दीना०—लेकिन तुम्हारा उससे क्या ! तुम बूढे आदमी हो—इस समय—

भोला०—नहीं, मै एकदफा उसे देखूँगा ।

दीना०—देखकर क्या होगा ?

भोला०—देखूंगा, वह कितनी बडी सुन्दरी है । नहीं तो मेरी पोतीको छोडकर—नहीं, मै एक बार देखूँगा !—क्यो भवानीप्रसाद ! इतने करुणभावसे सिर क्यो हिला रहे हो !

दीना०—लेकिन—

भोला०—ना ना, मेरी पोतीका इस समयका चेहरा तुमने देखा नहीं दीनानाथ । इसीसे कहते हो । उसके वे गुलाबी रंगके गाल राखके समान सफेद पड गये हैं । उसकी आंखोके कोयोमे मानो किसीने स्याही

पोत दी है। उसके उस चौडे ललाटमे दाग पड गये है । उसका कोमल शरीर रक्तरहित होनेमे रूखा पड़ गया है। उसके मुखमे अव्यक्त वेदना है। उसकी ऑखोमे दुःस्वप्न है।

दीना०—सो तो समझा। लेकिन इस वेश्याको देखकर क्या होगा!

भोला०—वह—वह मुझे देखकर हॅस पडी—वह मानो किसी कंकाल (हड्डियोके ढॉचे) की हॅसी थी; उसने मुझे दादाजी कहकर पुकारा, वह स्वर मानो सूखे व्यग्यका आभास था, उसने मुझे प्रणाम किया, साथ ही उसकी दोनो ऑखोंसे ऑसुओकी धारा बह चली, उसने ऑचलसे मुंह ढॅक लिया। मैने उससे कहा—मेरे साथ चल। उसने इसका क्या उत्तर दिया, जानते हो?

दीना०—क्या!

भोला०—उसने कहा—" ना दादाजी! आपने तो जन्म भरके लिए मुझे अपने घरसे विदा कर दिया है—अब यह मेरा घर ही मेरे लिए मसान है। " उस समय मै उससे लिपटकर—बूढा आदमी मै—चिल्लाकर रो उठा।

दीना०—बस!—बस!—अब यहॉ चिल्लाकर न रो उठना!

भोला०—ना! रोनेमे क्या होगा!—लेकिन मै एक दफा उस सुन्दरीको अवश्य देखूँगा।

दीना०—देखकर क्या करोगे

भोला०—अगर वह मेरी पोतीसे भी बढकर सुन्दरी होगी तो उसे खरीद कर ले जाऊँगा और पूजा-मन्दिरके आलेमे स्थापन करूँगा।

दीना०— तुम क्या सिडी होगये हो?

भोला०—शायद यही बात है ।

(भवानीप्रसाद हताश भावसे दीवार पर हाथ टेककर और ऊपरकी ओर देखकर लंबी साँस लेता है ।)

भोला०—मै पागल हो गया हूँ दीनानाथ । सत्य ही पागल हो गया हूँ । मै एक वार–(ऊपरसे मुन्नी खिड़की खोलकर झाँकती है) यही है न ?

दीना०—कहाँ ?

भोला०—वह देखो !

दीना०—हाँ यही है !

भोला०—देखूँ तो ! (चश्मा लगाकर एक टक उसकी ओर देखना) सुन्दरी है ।–हाँ सुन्दरी है ।–दोनो ओठ वैसे पतले नहीं है, लेकिन लालसासे भरे हुए है । मुँह गोल और डौल अच्छा है ।–सुन्दरी है । दोनो आँखे वड़ी नहीं है, लेकिन उनमें असर है । लंबे बाल है ।–सुन्दरी है ।–मगर मेरी पोतीके समान नहीं है । वह देखो । हँस रही है ।–बहुत ही अच्छा स्वर है । बुरा नहीं है, लेकिन इस हँसीमें जान नहीं है !—हाँ, स्वर अच्छा है ।

दीना०—बूढा डूव गया ।

भोला०—भवानीप्रसाद ! इस बड़ी सडक पर गाड़ी ठहरी रहेगी । पाँचसौ रुपयेका महीना ।–लेकर एकदम रेलगाड़ी पर ।–काशी ! समझे !–एक वार नशा उतर जाने पर फिर सब ठीक हो जायगा ।–चलो दीनानाथ ।–समझे भवानीप्रसाद—पाँचसौ ।

[भोलानाथ और दीनानाथका प्रस्थान ।]

भवानी०—रंग खूब जमता आ रहा है । कहा नहीं जा सकता, इसके बाद क्या होगा । सुना है, स्त्रीके कारण सुन्द–उपसुन्दमें घोर

युद्ध हुआ था। लेकिन ननदमाद और ददियाससुरका युद्ध—पुराणमे भी नही लिखा। चाहे जो हो, ये सब कुछ न कुछ करते है। और मैं ?—हल् अक्षरकी आडी लकीरकी तरह नीचे पडा हुआ हू, और गाना गाता हूँ। जगत्के किसी काम नही आता—यही है शायद।—हाँ। साथमे कौन है ?—यह क्या! स्वप्न देख रहा हूँ क्या! (आडमे छिप जाता है।)

[बाते करते करते मुन्नी और हीरा घरका द्वार खोलकर बाहर निकलती है।]

हीरा—तो मै जाती हूँ।

मुन्नी—कहाँ ?

हीरा—कोई खास दिशा नही है, कोई निर्दिष्ट मार्ग नही है।—जिधर चली जाऊं। तुम्हारी अँगूठी अपने पास रक्खूँगी—लिये जाती हूँ। हो सकेगा तो फिर एक दिन घूमती फिरती इधर आऊंगी।—सोचा था, आत्महत्या करूँगी—मगर नहीं करूँगी। घरमे भी प्रवेश नही करूगी।

मुन्नी—क्यो ?

हीरा—नही। जिस घरको छोडकर चली गई उसमें पेर न रक्खूँगी। उनके पवित्र देवमन्दिरमे प्रवेश करनेका मुझे अधिकार नही है। देखा नहीं, मै तुम्हारे घरके भीतर भी नही गई ? इसका कारण क्या है, जानती हो ?

मुन्नी—क्या कारण है ?

हीरा—घरके भीतर जानेसे ही जान पड़ता है कि उसके कोने कोनेमे हजारों नाग फन फैलाकर मेरी ओर झपट रहे है, उसकी हवा रुक आकर मेरी छातीको दबाये लेती है; सांस नही ली जाती।

भवानी०—अभागिन औरत !

हीरा—(चौंककर) यह किसकी आवाज है !—वह कौन है।—हाँ भूत रहते है क्या। भागूँ—भागूँ।

(वेगसे प्रस्थान।)

भवानी०—पागल है !

मुन्नी—छुटकारा और दास्यभाव, आशा और निराशा, लाभ और विनाश, स्वर्ग और नरक, ये सब मेरे जलते हुए मस्तिष्कके धुआँधार गमंचमे हाथ पकड़कर नृत्य कर रहे है। (घुटने टेककर हाथ जोड़कर परकी ओर देखकर)—क्षमा करो। मै नहीं जानती थी। मै नहीं ानती थी।

भवानी०—(आगे वढ़कर) वेटी !

मुन्नी—कौन है आप ?

भवानी०—ब्राह्मण।

मुन्नी—भिक्षा चाहते हैं ?

भवानी०—नहीं।

मुन्नी—फिर ?

भवानी०—कुछ कहना है।

मुन्नी—क्या ! कहिए !

भवानी०—तुम कौन हो वेटी !

मुन्नी—मेरा नाम है मुन्नी—मै वेश्या हूँ।

भवानी०—झूठ कह रही हो ?

मुन्नी—नही ब्राह्मण !

भवानी०—तो फिर रो क्यो रही थीं ?

मुन्नी—यह पूछकर आप क्या करेंगे ?

भवानी०—तुम्हें क्या दुःख है, मुझसे कहो।

मुन्नी—वेश्याको क्या दुःख है ? उसे आप पूछते क्या हैं !

भवानी०—समझ गया ! तो इस दूषित वायुको छोड़कर, मेरे साथ आओ बेटी; माताके चन्दन-पुष्प-सुगन्धित मन्दिरमें शान्ति पाओगी।

मुन्नी—शान्ति पाऊँगी ! ब्राह्मण ! तुम क्या पागल हो !

भवानी०—शायद !

मुन्नी—या मेरी ही समझमें कुछ नहीं आता। मेरा ही दिमाग सही नहीं है।—शान्ति पाऊँगी ! मैं ! मुझे शान्ति ! (पिस्तौल दिखाती है।)

भवानी०—(डरकर) यह क्या !

मुन्नी—मुझे अब समय नहीं है। (प्रस्थान।)

भवानी०—कौन है यह स्त्री—आश्चर्य ! (जाना चाहता है।)

[भगवानदासका प्रवेश।]

भवानी०—यही वह लंपट है। देखूँ क्या करता है।

भग०—मुखिया ! मुखिया ! (द्वार पर धक्का देता है।)

[द्वार खोलकर दासीका प्रवेश।]

[illegible]—मालकिन घरमें नहीं हैं जी !

भग०—कहाँ गईं ?

मुखिया—मालूम नहीं। (प्रस्थान।)

भग०—'मालूम नहीं' के क्या माने !—रातको [illegible] बिना कहे-सुने !—

भवानी०—(आगे बढ़कर) तुम कितना देते हो ?

भग०—तुम कौन हो ?

भवानी०—ब्राह्मण ।—तुम कितना देते हो ?

भग०—चार सौ रुपयेका महीना ।

भवानी०—उसने पाँच सौ लगा दिये है ।

भग०—किसने !

भवानी०—एक पके हुए बाल और झुर्रीदार गालवाले कालके कौर पुराने खूसट बूढेने । उसके तीन पन चले गये है, एक पन है । सो उसके भी होनेमें सन्देह है । लेकिन उसके पास रुपये है ।

भग०—उसके साथ निकल गई ?

भवानी०—वह तो तुम्हारी ब्याहता स्त्री नही है कि लात-घूँसे खाकर भी पैरो पर पड़ी रहेगी । तुम देते हो चार सौ, उसने लगा दिये पाँच सौ !

भग०—अच्छी बात है ! मै छः सौ दूँगा ।

भवानी०—हाँ नीलाम पर चढा दो । प्रेमको नीलाम पर चढा दो । उसके बाद वह सात सौ लगावेगा, तुम आठ सौ लगाना ।

भग०—तुम कौन हो ?

भवानी०—मैं कौन हूँ, तुमको पहचान लेना चाहिए था । लेकिन बात यह है कि प्रथम प्रेममे आसपास देखनेकी किसीको फुरसत ही नही मिलती ।—नहीं तो—

भग०—चले जाओ ।

भवानी०—लो जाता हूँ भैया ! मारना नहीं !—

भग०—अच्छा मै देखे लेता हूँ—वह कैसा है और मै कैसा हूँ मै छोड़नेवाला नहीं हूँ । देख लूँगा । (प्रस्थान ।)

भवानी०—जाओ जाओ—अधःपातमे जाना चाहते हो, जाओ खुद ईश्वर भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते, दादाजी क्या चीज है जो नष्ट होना चाहता है वह अवश्य नष्ट होगा। उसे कोई नहीं रोक सकता। लेकिन यह स्त्री—विचित्र है! 　　(प्रस्थान।)

[हीराका हाथ पकड़े हुए गौरीनाथका प्रवेश।)

गौरी०—आओ, कहता हूँ।

हीरा—छोड़ दो।

गौरी०—घर चलो—सुखसे रक्खूँगा।

हीरा—घर!—नही घर न जाऊँगी। प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ।

गौरी०—धूप, पानी, जाडेमे क्यो बेकार—

हीरा—धूप, पानी, जाडा दुष्टोकी संगतिसे कहीं अच्छा है। धूप जब जलाती है—जलाती है; यह नहीं कहती कि मै गुलाबजलसे नहला देनेके लिए आई हूँ। जाडेके दाँत जब शरीरमे चुभते है—सीधे बैठते है, उसमे कुछ धोखाधडी नहीं है। वर्षा जब होती है—प्रेमालिंगन नहीं करती, सीधे सीधे शत्रुभावसे मुहके ऊपर पटापट पडने लगती है!—छोड दो।

[illegible]०—मेरे साथ आओ।

[illegible]—मै नहीं आऊँगी।—तुम दगाबाज नराधम हो। कहती हूँ, दो, नही तो चिल्लाकर शहर भरके लोगोको यहा जमा कर दूगी। [illegible] हूँ— छोड दो।

गौरी०—मुझे कुछ कहना है।

हीरा—यहीं कहो।

गौरी०—अच्छा तो इस पेडके नीचे ही चलो।

हीरा—चलो ।　　　　(दोनोका प्रस्थान)

[शिवदयालु और कामताप्रसादका प्रवेश ।]

शिव०—क्योजी, गौरीनाथ एक औरतके पीछे पीछे गया है न ?

कामता०—हॉ गया है !—वही स्त्री जान पड़ती है ।

शिव०—कौन स्त्री ?

कामता०—वही जो उस दिन बागमे एकाएक आगई थी ।

शिव०—हो ! तो इसके भीतर निश्चय ही कोई गूढ रहस्य है।—चलो चलो, देखे क्या करता है ।　　　　(दोनोंका प्रस्थान ।)

[दीनानाथ और भवानीप्रसादका प्रवेश ।]

दीना०—राजी नही हुई ?

भवानी०—नही !

दीना०—तुम समझाकर ठीक तौरसे नहीं कह सके ।

भवानी०—सो हॉं कह तो नहीं सका ।

दीना०—क्यो ?

भवानी०—घबरा गया ?

दीना०—क्यो !

भवानी०—चॉदनीके प्रकाशमे मैने उसका मलिन मुख देखा। वह घुटने टेककर हाथ जोडकर, ऊपरको मुख किये, ऑंखोंमे ऑंसू भरे प्रार्थना कर रही थी–" मुझको क्षमा करो "–किससे कहा, सो नहीं मालूम; क्यो कहा, यह भी नही जानता । लेकिन मेरी ऑखोंमे ऑसू आगये । जान पडा, मैने उसका स्वर पहले कहीं सुना है । अपने वक्तव्यको मै सिलसिलेवार समझाकर नही कह सका ।

दीना०—तुम कुछ नहीं हो—अपदार्थ हो ।

भवानी०—बिलकुल।—उसके बाद भोलानाथजीके नतदमादसे मुलाकात हुई।

दीना०—भगवानदाससे ?

भवानी०—हाँ।

दीना०—उसने क्या कहा ?

भवानी०—कहा, देख लूँगा।

दीना०—हायरे अभागे! तुझे अपनी चीज नहीं रुचती! लाल सारी और क्लियोपेट्रा-फैशनका जूडा देखकर रीझ जाता है! सधी हुई हँसी और तिरछी चितवनमे मगन हो जाता है! घरकी लक्ष्मीको छोड़कर अलक्ष्मीका आश्रय लेता है। मंगल-दीपकको छोड़कर जुगनू पकड़ने दौडता है।—

भवानी०—ऐसी उपमाये देनेसे, जान पडता है, वह समझ जाता आप गये क्यो नहीं समझाने ?

दीना०—मैं जाकर क्या करता ?

भवानी०—उपमा देने।

ना०—अरे उपमा देनेमे क्या होगा ?

वानी०—यह भी ठीक है!

०—अरे मूर्ख! तू प्रेममें पड़कर सत्यानाश जायगा, अपना और सर्वनाश करेगा। इस नशेके बारेमें कुछ कुछ समझ सकता हूँ, यह समझमें नहीं आता कि मोल लिये हुए चुम्बन और हृदय-हीन आलिङ्गनमें तुमको क्या सुख मिलता है।—बलिहारी!

भवानी०—बलिहारी!

दीना०—चलो।

भवानी०—चलिए ।

(दोनोका प्रस्थान ।)

चौथा दृश्य ।

स्थान—गौरीनाथके घरकी वैठक ।

समय—रात्रि ।

[अकेला गौरीनाथ]

गौरी०—वह काम कर चुका ।–कैसा भयंकर था ! मगर साथ ही कैसा सहज था !–पाप और महापापमे अन्तर–एक सीढी भरका है ! पापके राज्यमे भी एक सिलसिला है । नहीं तो वह राज्य चलता ही कैसे ! पापके राज्यमे रहना चाहो, तो उसके नियमोको मानकर चलना होगा ! एक जगह खड़े न रह सकोगे । या तो ऊपर उठोगे, या नीचे गिरोगे !–इन दो वातोंमेसे एक वात होगी ही । उठना चाहोगे तो शक्तिके वलसे, किये हुए पापोके भारी वोझको ठेलकर उठना पड़ेगा–यह कठिन है । नीचे गिरना चाहोगे, तो अपने वोझसे ही नीचे उतरते जाओगे । यह अत्यन्त सहज है !–वह क्या है !–ना, उल्लूका शब्द है !–जाने दो । मुर्देकी जीभ नहीं हिलती ।–वस !—वह कैसा शब्द है !–कौन ?–कहो !—

[शिवदयाल, वुध्दू, और कालीचरणका प्रवेश ।]

गौरी०—यह—यह क्या, तुम लोग इतनी रातको !

शिव०—क्या नौसे अधिक वजे होंगे ?

गौरी०—ना—सो—सो—रात कुछ इतनी अधिक नहीं है !

वुध्दू०—यही टहलते टहलते इधर चले आये !

गौरी०—सो—सो—अच्छा ही किया ।

शिव०—तुम अबतक थे कहाँ ?

गौरी०—कहाँ !—

शिव०—वही पूछता हूँ। थे कहाँ ?

गौरी०—था कहाँ !—

बुध्दू—उधर जंगलमे झाड़ीके भीतर क्या कर रहे थे ?

गौरी०—कहाँ—नही—मै तो—

शिव०—घबराये क्यो जा रहे हो ?

बुध्दू—काँप रहे हो !

गौरी०—ना। मै—मैने तो नही किया।

शिव०—क्या नही किया ?—कालीचरण, जानते हो न ?

काली०—where ignorance is bliss it is folly to be wise (जहाँ मूर्खताहीमे आनन्द है वहाँ बुद्धिमत्ता दिखाना मूर्खता है।)

बुध्दू—हमने देखा है।

गौरी०—क्या देखा है !

(शिवदयाल और बुध्दू ठहाका मारते है।)

गौरी०—ना ना, मैने नही किया। यह देखो !—यह क्या ! मे खूनका दाग !—ना, मैंने तो हत्या नहीं की। वह पानीमे गिर पडी थी।

(शिवदयाल और बुध्दू फिर जोरसे ठहाका मारते है।)

गौरी०—यो चिल्लाकर क्यो हँसते हो ?—जाओ यहांसे—निकलो।

शिव०—चलो बुध्दू।

(हँसते हँसते दोनोंका प्रस्थान।)

काली०—When ill indeed, dismissing doctor don't always succeed (कठिन बीमारीमे वैद्यको धता बतानेसे सफलता नहीं होती।)

गौरी०—तुमने भी देखा है?

काली०—समझ गया गौरीनाथ।—You have sown the wind and shall reap the whirlwind. (तुमने आग खाई है अंगारे जरूर ही उगलोगे।)

गौरी०—मैने तो खून नहीं किया।

काली०—For the wages of sin is death. (क्योकि पापका परिणाम मृत्यु ही है।) (प्रस्थान।)

[गौरीनाथ मुह बाये खड़ा रह जाता है। फिर सहसा दौड़कर बाहर जाते जाते सूखे स्वरसे पुकारता है—]

गौरी०—काली—शिवदयाल—बुध्दू।—सुनो—सुने जाओ।

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—सरस्वतीका घरका आँगन।

समय—रात्रि।

[सरस्वती अधलेटी है। पृथ्वीपर पड़ी हुई ऊपरकी ओर ताक रही है।]

सर०—अमावसकी रात है! आकाश निर्मल है!—ओः! कैसे उज्ज्वल है ये नक्षत्र!—अच्छा, ये कितनी दूरी पर है। दादाजीके मुहमे सुना है, ये हरएक सूर्य है!—इसी समय वे छत पर मेरी गोदमे सिर रखकर पडे रहते थे; मै उनके सिर पर हाथ फेरती थी; वे कितने ही देशोके—युगयुगान्तरोके—इतिहास, पृथ्वीके जन्मकी कथा, महात्मा लोगोके जीवनचरित, ज्योतिर्मण्डलका विवरण मुझे सुनाते थे। मैं

मायामय उपन्यासको मन्त्रमुग्धकी तरह चुपचाप सुनती थी।--मालूम पड़ता है वे आगये। ना--यह कौन है?

[मुन्नीका प्रवेश।]

सर०--कौन?

मुन्नी--यह क्या। ये मैले फटे कपडे पहने, रूखे बाल [illegible] जमीन पर!

सर०--तुम कौन हो?

मुन्नी--यही स्त्री है! यही सती है!--मुखमडलमे कैसी ज्योति है! मस्तक पर कैसी महिमा झलक रही है! अगोमे कैसा लावण्य है--पहाड़के नीचे भरे हुए प्रभात-शोभितसरोवरकी तरह शान्त, स्वच्छ, सुन्दर है। यही सती है! यह भूमिशय्या सोनेका सिहासन जान पड़ती है, यह इसके सिरपरका ऑचल हीरा-जड़े मुकुटके समान जान पड़ता है--यही सती है!

सर०--तुम कौन हो?

मुन्नी--शैतानकी बच्ची! इस देवीके सामने घुटने टेककर हाथ जोडकर खडी हो।--देवी! (घुटने टेककर) देवी!

सर०--कुछ समझमे नहीं आता।--कौन हो तुम बहन?

मुन्नी--हाँ--बहन कहकर पुकारो, मुझे धन्य करो, इस कीचड़से मेरा उद्धार करो--मेरा--

सर०--कौन हो तुम?

मुन्नी--इसी रही घरमे तुम रहती हो?

सर०--हाँ।

मुन्नी--मैने सुना है तुम्हारे दादा बड़े आदमी है।

सर०--हाँ है तो। फिर?

मुन्नी—वे तुमको खर्चके लिए रुपये नहीं भेजते ?

सर०—भेजते है ।

मुन्नी—कितने ?

सर०—महीनेमे पॉच सौ ।

मुन्नी—फिर !—ओ !—समझ गई ! तो इन्ही रुपयोसे तुम्हारे स्वामी वेश्याका खर्च चलाते है ?

सर०—(चौंककर) किसका ?

मुन्नी—उनके एक वेश्या है; तुम जानती हो ?

सर०—कौन हो तुम ?. किस साहससे मेरे पास आकर मेरे सामने मेरे पतिकी निन्दा करती हो !—सब झूठ है !—जाओ ।

मुन्नी—मुझसे छिपानेसे क्या होगा वहन ! मै सब हाल जानती हूॅ।

सर०—जानती हो—जानती हो । मेरे आगे उसके कहनेका कुछ प्रयोजन नहीं है ।

मुन्नी०—प्रयोजन है । यह तुम्हारा ही दोप है—

सर०—क्या मेरा ही दोप है !

मुन्नी—अपने स्वामीके कामकी आग जलानेका ईंधन तुम्ही जुटा रही हो वहन ! भ्रष्टबुद्धि स्वामीको उसकी वेश्याका खर्च देकर उसके सर्वनाशकी राह तुम्ही साफ कर रही हो । अब एक पैसा न देना । स्वामीको नष्ट होने देना क्या सतीधर्म है ? स्त्री धर्मकी साथिन है, अधर्मकी नही—

सर०—मै सुनना नहीं चाहती। पतिकी निन्दा सुनना पाप है। जाओ ।

मुन्नी—तुम्हे अगर कष्ट होता है तो मै कुछ नहीं कहूॅगी वहन । मुझे वहन कहकर तुमने मेरा साहस वढा दिया है।—अब कुछ नहीं कहूॅगी । अच्छा जाती हूॅ वहन !　　　　(जाना चाहती है।)

सर०—कहाँ जाती हो बहन ! जाना नहीं। मै बड़ी ही दीन और बिलकुल ही अकेली हूँ। मेरे कोई नहीं है ! जाना नही !

मुन्नी—यह क्या कह रही हो बहन ! तुम्हारे स्वामी तुमको प्यार नहीं करते ?

सर०—एक समय था, जब प्यार करते थे।

मुन्नी—और तुम ?

सर०—मैं भी प्यार करती थी ! पुरुष अगर जवानीकी पहली उमंगमें एक मुग्धा सरला विह्वला बालाके पैरो पर आत्मसमर्पण कर दे तो जगत्मे कितनी ऐसी बालिका है जो प्यार किये बिना रह सके ? और हम लोगोका तो ब्याह हुआ था। इस प्रेममे कोई बाधा भी नहीं थी, उन्हे प्यार करनेके सिवाय कोई उपाय नही था।

मुन्नी—उसके बाद ?

सर०—उसके बाद —

मुन्नी—कहो बहन। उसके बाद ?

सर०—उसके बाद जिस दिन देखा कि वे अपनी बूढ़ी माको छोड़कर मेरी उपासना कर रहे हैं, उस दिन पहले पहल मुझे [illegible]म हुआ !—तब जान पड़ा—यह तो प्रेम नही है; प्रेम तो कर्त्तव्यको नहीं भुलाता, कर्त्तव्य-पालन सिखाता है। यह तो [illegible]की आसक्ति है, जिसका अन्त अच्छा नहीं हो सकता।

मुन्नी—तुम झूठ नहीं कहती बहन।

सर०—मुझे डर मालूम हुआ।—उसी भयसे सिसकियाँ आगई ! अपने जीवनके भविष्यको सोचकर काँप उठी ! आज भी याद आता है—ओः !

मुन्नी—उसके बाद !

सर०—उसके बाद भोजन न मिलनेसे और सेवा-चिकित्सा न होनेसे रा बच्चा मर गया। संसारमे सब ओर मेरे लिए अन्धकार हो गया। लेकिन स अन्धकारमे भी मैने राह खोज ली। जीवनकी सब आशाओको तीकर्तव्यके पालनमे लगा दिया। मनको दृढ किया;—प्रतिज्ञा की कि ाग्यमें चाहे जो हो—पतिको प्यार कर सकूँ या न कर सकूँ, जन्मभर ामीके प्रति स्त्रीके कर्त्तव्यका—सतीधर्मका—पालन किये जाऊँगी। स समय उसी ओर लक्ष्य करके चल रही हूँ।

मुन्नी—सरस्वती ! बहन ! तुम मानवी नहीं हो, देवी हो !—

सर०—उसके बाद और सुनना चाहती हो ?—

मुन्नी—ना, और सब ही मै जानती हूँ !

सर०—जानती हो ?—कुछ नहीं जानती हो!—जानती हो ?—एक विराट् प्रेमका अमृतसागर मेरे सामने भरा पड़ा है, लेकिन प्याससे मेरी छाती फटी जा रही है ! जानती हो कि मेरा वर्तमान जैसे अन्ध-कारमय है, वैसे ही भविष्य भी अन्धकारमय है—इस अन्धकारमे नक्षत्र नही है, बिजली नहीं है, जुगनूका भी प्रकाश नहीं है ! जानती हो कि दिनोदिन तपेदिकके रोगीकी तरह मेर भीतरका सब कुछ क्षयको प्राप्त हो रहा है ! जानती हो क्या !—ना तुम क्या जानोगी ! तुम क्या जानोगी !

मुन्नी—(हाथ पकड़कर) जानती हूँ बहन !—मै तुमसे भी अधिक दुखिया हूँ। तुम तो कर्त्तव्यका पालन किये जा रही हो। लेकिन मै अपना कर्त्तव्य पाती ही नहीं।

सर०—कौन हो तुम!—तुम्हारा हृदय इतना दयासे आर्द्र है, तुम्हारा स्पर्श इतना कोमल है, तुम्हारा स्वर इतना गद्गद है!—कौन हो

तुम ! मैंने तुम्हारे सामने अपने हृदयका द्वार खोल दिया—जो अब तक किसीके सामने नहीं खोला था !—कौन हो तुम जादूगरनी ! तुमने मेरी गूढ व्यथाको मेरा हृदय निचोडकर निकाल लिया ! यह बात तो मैंने किसीके आगे कभी नहीं कही—तुम्हारे आगे क्यो कह दी ! क्यो कह दी !

मुन्नी—बहन ! जो तुमने मुझसे कहा है, उसके लिए तुमको कभी पछतावा न करना पडेगा । भगवान्से प्रार्थना करती हूं कि तुमको फिर गिरिस्तीका सुख मिले । जिसके कारण तुम्हारा सब गया है वह तुम्हारे स्वामीको तुम्हें फेर देगी !

सर०—वह तो वेश्या है—

मुन्नी—वेश्या होनेसेही उसे घृणाकी दृष्टिसे मत देखो । जाने दो बहन, अनेक पुरुष वेश्याओसे भी अधम है । (जाना चाहती है, फिर लौटती है) उस वेश्याको तुमने देखा है ?

सर०—नही ।

मुन्नी—तो लो देखो, वह अभागिन—तुम्हारे सामने ही है । (छातीमें हाथ मारकर) यही मुन्नी वेश्या है ! (तेजीसे प्रस्थान ।)

[सरस्वती एकटक उधर ही देखती है । दूसरी ओरसे
झूमते हुए भगवानदासका प्रवेश ।]

भग०—मैं उसे देख लूंगा ! पाजी !—एक बार अगर देखूंगा ! कौन ! ओ तुम हो !

सर०—हॉ मैं हूं !

भग०—हट जाओ !

(सरस्वती किनारे एक ओर खड़ी होती ।)

भग०—हट जाओ ! मेरी राह न रोकना

सर०—क्यो ! मै क्या तुम्हारी आपत्ति हू ?

भग०—तुम मेरी— (विकट शब्द करके लेट रहता है।)

सर०—तुम्हारी क्या आज तबियत अच्छी नहीं है ?

भग०—(उठकर) कहता हू, यहाँ बैठकर मिनमिन मत करो। मेरी तबियत खराब हो जाती है। तुमको देखकर मुझे बुखार चढ आता है !

सर०—यहाँ तक ! ओः—अब सहा नही जाता।

भग०—'सहा नहीं जाता'—अपने बापके घर चली जाओ; यहाँ अगर गुजर न हो।

सर०—यहा अगर गुजर न हो !—मै क्या तुम्हारी दासी हूँ या वेश्या जो यहाँ अगर मेरी न गुजर हो तो और जगह चली जाऊँ ? मै क्या पेटभर खानेके लिए तुम्हारे घरमें पड़ी हूँ ?

भग०—तो !—

सर०—हाय रे भाग्य !—मैं अपने लिए यहाँ नहीं पडी हूँ, तुम्हारे लिए पडी हूँ। यह घर, टूटा—फूटा हो, जला हो, जैसे तुम्हारा है वैसे ही मेरा है ! मेरा यह घर उजड़ी हुई हाट है—लेकिन तो भी मेरा ही घर है। अपना घर अपनी गिरिस्ती छोडकर कहाँ जाऊँगी ! स्वामीको सर्व-नाशके निकट खडे देखकर कौन हिन्दूजातिकी सती स्त्री उसे छोड़कर चली जायगी !

भग०—उः ! वाहरी सती !

सर०—देखो, मै सती हूँ या असती, इसका विचार मै एक शराबीके मुखसे, एक वेश्यागामीके मुखसे, सुनना नहीं चाहती। मेरा सतीत्व मेरा धर्म तुम्हारा नहीं।

भग०—तुम्हारा धर्म है !

तुम ! मैंने तुम्हारे सामने अपने हृदयका द्वार खोल दिया—जो अब तक किसीके सामने नहीं खोला था !—कौन हो तुम जादूगरनी ! तुमने मेरी गूढ व्यथाको मेरा हृदय निचोड़कर निकाल लिया ! यह बात तो मैंने किसीके आगे कभी नहीं कही—तुम्हारे आगे क्यों कह दी !- क्यों कह दी !

मुन्नी—वहन ! जो तुमने मुझसे कहा है, उसके लिए तुमको कभी पछतावा न करना पड़ेगा। भगवान्‌से प्रार्थना करती हूँ कि तुमको फिर गिरिस्तीका सुख मिले। जिसके कारण तुम्हारा सब गया है वह तुम्हारे स्वामीको तुम्हें फेर देगी !

सर०—वह तो वेश्या है—

मुन्नी—वेश्या होनेसेही उसे घृणाकी दृष्टिसे मत देखो। जाने रहो वहन, अनेक पुरुष वेश्याओसे भी अधम है। (जाना चाहती है, फिर लौटती है) उस वेश्याको तुमने देखा है ?

सर०—नहीं।

मुन्नी—तो लो देखो, वह अभागिन—तुम्हारे सामने ही है। (छातीमे हाथ मारकर) यही मुन्नी वेश्या है ! (तेजीसे प्रस्थान।)

[सरस्वती एकटक उधर ही देखती है। दूसरी ओरसे झूमते हुए भगवानदासका प्रवेश।]

भग०—मै उसे देख लूँगा ! पाजी !—एक वार जरूर देखूँगा।— कौन ! ओ तुम हो !

सर०—हाँ मै हूँ !

भग०—हट जाओ !

(सरस्वती किवाड पकड़े खडी रहती है।)

भग०—हट जाओ ! मेरी छाँह न छूना—

सर०—क्यों ! मै क्या तुम्हारी आपत्ति हूं ?

भग०—तुम मेरी— (विकट शब्द करके लेट रहता है।)

सर०—तुम्हारी क्या आज तबियत अच्छी नहीं है ?

भग०—(उठकर) कहता हूं, यहों बैठकर मिनमिन मत करो। मेरी तबियत खराब हो जाती है। तुमको देखकर मुझे बुखार चढ़ आता है !

सर०—यहाँ तक ! ओः—अब सहा नहीं जाता।

भग०—'सहा नहीं जाता'—अपने बापके घर चली जाओ; यहाँ अगर गुजर न हो।

सर०—यहा अगर गुजर न हो !—मैं क्या तुम्हारी दासी हूँ या वेश्या जो यहों अगर मेरी न गुजर हो तो और जगह चली जाऊँ? मै क्या पेटभर खानेके लिए तुम्हारे घरमें पड़ी हूं ?

भग०—तो !—

सर०—हाय रे भाग्य !—मैं अपने लिए यहाँ नहीं पडी हूँ, तुम्हारे लिए पडी हूं। यह घर, टूटा—फूटा हो, जला हो, जैसे तुम्हारा है वैसे ही मेरा है। मेरा यह घर उजड़ी हुई हाट है—लेकिन तो भी मेरा ही घर है। अपना घर अपनी गिरिस्ती छोड़कर कहाँ जाऊँगी ! स्वामीको सर्वनाशके निकट खडे देखकर कौन हिन्दूजातिकी सती स्त्री उसे छोड़कर चली जायगी !

भग०—उः ! वाहरी सती !

सर०—देखो, मै सती हूं या असती, इसका विचार मै एक शरावीके मुखसे, एक वेश्यागामीके मुखसे, सुनना नहीं चाहती। मेरा सतीत्व मेरा धर्म तुम्हारा नहीं।

भग०—तुम्हारा धर्म है !

सर०—हाँ मेरा धर्म है ! उस देवताकी पूजाके तुम पुष्प-पत्र मात्र हो ! मैं तुम्हारी पवित्रता चाहती हूँ इस कारणसे कि जिसमें वह पुष्प-पत्र मेरे देवताके चरणोंमें चढाने लायक हो—जिसमे वह अपवित्र स्थानमें पड़कर कलुपित न हो ।

भग०—और अगर कलुपित ही हो !

सर०—तो मै अपने आँसुओंके जलसे धोकर उसे पवित्र कर लूँगी जाने रहो, आँसुओसे बढकर गंगाजल भी पवित्र नहीं है ।

भग०—हिस !—जाओ मै तुम्हारी वक्तृता नही सुनना चाहता

सर०—तो क्या चाहते हो ?

भग०—रुपये ।—रुपये निकालो !—मै उसे महीनेमें छः सौ रुपये दूँगा । देखूँ, वह कहाँ तक देता है ।

सर०—उसे महीनेमे छः सौ रुपये देना चाहो, हजार रुपये देना चाहो, तो खुद पैदा करके दो ।—मै अब न दूँगी ।

भग०—तुम न दोगी तुम्हारे पुरखे देगे !—नहीं तो मैने व्याह ही क्यो किया था !

सर०—मेरे पुरखोंको तारनेके लिए ! मै अब न दूँगी । आप ।।स करके तुम्हारी कामकी आगमे घी डालनेके लिए अब एक पैसा न दूँगी !—छः सौ रुपये तो बहुत होते है !

भग०—नहीं दोगी ?

सर०—अब मै समझ रही हूँ कि मै दादाजीके पाससे रुपये लाकर और तुम्हे देकर तुम्हारे सर्वनाशका मार्ग साफ कर रही हूँ—अब न दूँगी ।

भग०—नही दोगी ! कहता हूँ, दो । (धक्का देता है ।)

सर०—अब एक पैसा भी नहीं।

भग०—अच्छा देखता हूं। (भीतर जाकर पिस्तौल ले आता है) नहीं दोगी?—कहता हूँ, रुपये दो! नही तो!—

सर०—मार डालो। आत्महत्याके पापहीसे बच जाऊँगी।

भग०—कहता हूं, दो! कहां रक्खे है।

सर०—कभी नहीं।

भग०—नहीं तो—(पिस्तौल दिखाकर) देखती हो!

सर०—मार डालो।

भग०—तो मरो। (पिस्तौल सीधी करता है।)

[वेगसे मुन्नीका प्रवेश।]

मुन्नी—(पिस्तौल तानकर) खबरदार!

भग०—(पिस्तौल हाथसे गिर पड़ती है।) कौन हो तुम!

मुन्नी—मै हूं मुन्नी!

भग०—ओ! तू है!—हट जा!

मुन्नी—नरकके कीडे! तुम इस सतीको—इस देवीको यन्त्रणा देकर, भूखे रखकर, मारकर, मेरा खर्च उगाहते हो!—जरा देखो, इस धूलमे लथपथ, रूखे बाल विखेरे, मलिन, हड्डियोके ढॉचेको देखो। जरा देखो—कामके गुलाम—देखो यह क्या किया है—अगर मनुष्य हो तो घुटने टेककर इस सतीसे क्षमा प्रार्थना करो। अगर यह क्षमा कर दे तो तुम अपनेको बडा ही भाग्यशाली समझो।

भग०—लुच्ची! मेरी ही रकम खाती है और मुझसे ही जबान लड़ाती है। (पिस्तौल उठा लेता है।)

मुन्नी—तुम्हारी रकम! कहते शर्म नही आती? सुनो! तुम्हारी स्त्रीका दान—तुम्हारा यह रुपया—अब तुम्हे देनेके लिए मैने ही इन्हें

मना कर दिया है। तुम्हारा रुपया ?—मैं नहीं जानती थी कि तुम ये रुपये भीख माँगकर, स्त्रीका रक्त चूसकर, अपना मनुष्यत्व बेंचकर, डाकुओंसे भी अधम होकर हथियाते हो और मुझे देते हो। मैं तुम्हारे रुपयाकों लात मारती हूँ। मैं तुमसे घृणा करती हूँ।

भग०—तो यह सब तेरी ही कारस्तानी है! तो मैं तुझे ही मारूँगा!

मुन्नी—क्या! मुझे ही मारोगे ?—देखो, मेरे हाथमें भी पिस्तौल है। तुममें और मुझमे अगर पिस्तौलका युद्ध हो तो तुम्हारा ही गिरना निश्चित है। इसमे रत्ती भर भी सन्देह नहीं है। जी चाहता है, एक बार युद्ध कर डालूँ—पाजी पुरुष और वेश्या स्त्रीका युद्ध हो। जगत् देखे, किसकी जय होती है। ना, मैं तुम्हें मारूँगी नहीं। तुम नराधम हो, तो भी तुम्हारे छुटकारेकी राह है। तुम इस लंपटसे महर्षि हो सकते हो। लेकिन वेश्या–सदा वेश्या है। तुमको मै पछतानेका समय देती हूँ। यह लो (पिस्तौल फेंक देती है।) मुझको मार डालो। दुनियाके पर्देपरसे मुन्नीका नाम मिट जाय।—यह लो, मै छाती आगे बढाये देती हूँ।

भग०—तो मर। (पिस्तौल दागता है।)

(मुन्नी जमीन पर गिर पड़ती है। नौकर और परोसी आ जाते हैं।)

चौथा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—एक सजा हुआ कमरा।

समय—रात्रि।

[भगवानदास और उसके इष्टमित्र बैठे हैं। सामने नाचना-गाना हो रहा है।]

आनन्द भैरवी—ठेका धमार।

सुखमा सुखद सोहत आज।
मुनिनके मन मोहि लीन्हे, कामको है राज ॥ सुख० ॥
मधुर मोहन छन्द मधुमय, मधुरगन्ध विराज।
चलत धीमी वायु छायो चहूं दिसि ऋतुराज ॥ सु० ॥
पत्र-पुंज निकुंज महँ नव मंजरीके संग।
करि रहे क्रीडा, नचत ज्यों पाय प्रेम-प्रसंग ॥ सु० ॥
स्निग्ध सौरभ शिशिर-सिक्त प्रसूनके हैं ढेर।
सब जगतके हास्यकी है राशि ज्यों चहुँ फेर ॥ सु० ॥
हरित विकसत घने पल्लव नवल शोभाधाम।
करत हिय महँ अंकुरित शिवको जरायो काम ॥ सु० ॥
झरत झरने शत-तरंग तरंगिणीके रंग।
चन्द्र-कर-उज्ज्वल विमलजल देखि होत उमंग ॥ सु० ॥
स्वप्नमय अधरात महँ—जब स्तब्ध सब संसार—
करत कलधुनि कोकिला पंचम सुरन उच्चार ॥ सु० ॥
मधुर तान महान बंसीकी सुनाई देत।
चढ़ि गगन लौं गूँजि रसिकनके हृदय हरि लेत ॥ सु० ॥
मुग्ध तारागन मधुर यह दृश्य देखत हर्षि।
चन्द्र किरननसों रह्यो ज्यों अमृतधारा वर्षि ॥ सु० ॥
मगन चन्द्रहिं हिय लगाय अनन्द हिय न समात।
मूंदि दृग सोवत शिथिल सी अलस-विह्वल रात ॥ सु० ॥

भग०—वाहवा ! वाहवा ! खूब ! खूब ! नीचे गिरता जा रहा हू वहा जा रहा हूँ । जरासा धक्का भी नहीं लगता—

नन्दकिशोर—जानते हो, कहाँ जा रहे हो ?

भग०—जानता हूँ ! चूल्हेमें !—चूल्हा जगह कैसी है, कुछ जानते हो नन्दकिशोर ?

नन्द०—खूब गर्म जगह है ।

भग०—गर्म ! हाँ गर्म ! बड़ी गर्म ! लेकिन—नहीं, और एक गिलास दो ।

भैरोंनाथ—अब न पियो ।

भग०—न पियूँ ? यह क्या कहते हो भैरोनाथ, शराब न पियूँ ! पियूँगा । दो । रोको मत । रोकनेसे ही गड़बड़ होगी । बीचमें आकर धक्का न देना । गिर रहा हूँ. गिर जाने दो । अन्तको—जानता हूँ—बड़ा विकट धक्का लगेगा । उस धक्केमे—बस—सब चूरचूर हो जायगा ! इस समय मगर दो ।

देवीदास—रतन !

भग०—चुप ! रोको नही ।

देवी०—अब न पीना ।

भग०—पीता हूँ ।—उसमे तुम्हारा क्या ! तुम्हारे बापकी दौल- शराब पीता हूँ क्या ? तुम रोकनेवाले कौन ! जिसकी शराब । हूँ वह—नन्दकिशोर अगर रोके तो बस ! फिर न पियूँगा ! और—यहाँ आऊँगा भी नहीं ! मुफ्तकी शराब पाऊँगा, वहाँ जाऊँगा । तुम सब कौन हो ?—

देवी०—नाराज क्यो होते हो भाई ! हम तुम्हारे अच्छेहीके लिए कहते है ! अब और हजम न कर सकोगे ।

भग०—कर सकूँगा । हजम कर सकूंगा । शराब पियूंगा । जब तक सो न जाऊं, अचेत न हो जाऊँ, पहाड़की तरह अटल न हो जाऊँ, तबतक पियूंगा ।

नन्द०—भाई तुम्हारे ही लिए कहते है-—

भग०—क्या तुम भी ! बस बाबा, जाता हूँ । तुम लोगोंके साथ बस यही आखरी— (उठना ।)

नन्द०—कहाँ जाते हो ? बैठो । न हो, शराब पियो ! जाना नही !

भग०—अब राह पर आये ! नन्दकिशोर, तुम बड़े धर्मात्मा हो । तुम मेरे सच्चे मित्र हो ! दो शराब । (शराब लेकर पीना) उसका चेहरा बडा ही सुन्दर था लेकिन उसकी आवाज—नन्दकिशोर, लाओ शराब ।

नन्द०—देता हूं ! यह लो (शराब देना ।) लेकिन सोचकर देख लो । मै तुमसे स्नेह रखता हूं, इसीसे कहता हूं ! अपना सर्व्वनाश मत करो ! पृथ्वी पर ये सब चीजे संभोगके लिए बनीं है । लेकिन इनका सेवन उचित मात्रासे ही करना चाहिए । अमृत भी अगर अधिक पियो तो वह भी पेटमे जाकर विप हो जाता है ।

भग०—सुना नहीं. 'विषस्य विपमौषधम्' !—लाओ शराब । (मद्यपान ।)

नन्द०—बस यह आखिरी गिलास है । लेकिन अब न पाओगे । हम लोग तुमसे स्नेह रखते है. इसीसे कहते है ।

भग०—तुम लोग मुझसे स्नेह रखते हो ? नन्दकिशोर ! मुझे चाहते हो ?

नन्द०—हो चाहता हूं ।

भग०—मुझमे ऐसा कौनसा गुण है

नन्द०—तुम्हारा हृदय महत् और उदार है !

भग०—मेरा हृदय महत् है ! तो तुम मुझे जानते नहीं—इसीसे। (खड़े होकर) नन्दकिशोर—तुम लोग मेरी तरफ देखो ! देखते हो! क्या देखते हो ?

नन्द०—कहाँ ! कुछ तो नहीं।

भग०—फिर देखो ! क्या देखते हो ?

देवी०—तुमको—

भग०—मै कौन हूँ ?

देवी०—रतनलाल—

भग०—नही।

देवी०—तो फिर ?

भग०—मै हूँ एक पिशाच !—शराब क्यो पीता हूँ, जानते हो?

देवी०—जानता हूँ !

भग०—कुछ नही जानते ! हाः हाः हाः—इस जगह—हाथ लगाओ ! (नन्दकिशोरका हाथ लेजाकर अपने कलेजे पर रखता है।) देखते हो!

नन्द०—देखता हूँ।

भग०—धड़क रहा है न ? तेजीसे ! आँधीकी तरह प्रबल वेगसे ! ५ˆ तरह भयङ्कर गतिसे ! देखते हो ? देखते हो नन्दकिशोर !

नन्द०—देखता हूँ।

भग०—बीते पापके लिए पश्चात्ताप, और भविष्य दण्डके लिए भय—इन दोनोने मिलकर मेरे जीवनको शैतानका कारखाना बना डाला है, यह जानते हो ? पीछेकी ओर देखकर काँप उठता हूँ, सामनेकी ओर देखकर काँप उठता हूँ। उसके ऊपर—उः ! नही जानते, मेरे जीमें कैसा खटका समाया है।—वह क्या है ! ! !

देवी०—क्या ?

भग०—मा–मा !—इस–इस तरह क्या मेरी ओर देख रही हो ! वह मुर्देका मुख—वे खुले हुए ओठ—वह स्थिर पत्थरकी ऐसी मूर्ती, वह एकटक फीकी दृष्टि—मा–मा, इस तरह न देखो, इस तरह न देखो। बल्कि शाप दे दो—शाप दे दो ।

देवी०—यह क्या वक रहे हो !—किससे बातें कर रहे हो ?

भग० —मा ! मा ! —मैं—ऐ—ऐ—

नन्द०—रतनलाल !—(भगवानदासका हाथ पकडकर हिलाता है ।)

भग०—ओ—ओ—(मूर्छित हो जाता है ।)

(सब घबराकर उसकी सेवा करने लगते हैं ।)

नन्द०—रतन ! रतन !

भग०—(उठकर) कौन रतन ?—ओ ! मै !—ना—अब नहीं रहा जाता । तो प्रकट कर दूं ; बन्धुओ ! मेरा नाम रतन नही हैं, मेरा नाम है भगवानदास—जिसने स्त्रीके लिए माताको छोड दिया; वेश्याके लिए स्त्रीको छोड दिया; प्रतिहिंसाके कारण वेश्याकी हत्या की—

देवी०—यह तुम क्या कह रहे हो रतन !

भग०—कहा ? क्या कह रहा हूँ ? हो—ना, सब गलत है । मैंने कुछ नहीं किया । मै पापी नहीं हूं । मैं परम पुण्यात्मा हूं । माकी पूजा करता था । स्त्रीको प्यार करता था । वेश्या कभी रक्खी नहीं । जो कहा था, सब गलत है—सब गलत है !

देवी०—क्या कह रहे हो ?

भग० —मै शिक्षित मनुष्य हूं । अच्छा—सज्जन—हो सकता था, अगर पहलेकी भी माता पर भक्ति रहती ! मेरी माको मुझे लौटा दो—

दो, मेरी माको लौटा ला दो, वह पहला पाप धो दो—फिर सब पा सकता हूँ।

नन्द०—क्या कह रहे हो ?—तुम्हारा नाम भगवानदास है ?

भग०—ना—ना—गलत कह रहा हूँ। मै सोऊँगा।

[नौकरका प्रवेश।]

नौकर०—बाबूजी !

नन्द०—क्या !

नौकर०—पुलिस आई है !

नन्द०—पुलिस !—क्यो आई है, जाकर पूछ।

(नौकरका प्रस्थान।)

नन्द०—एकाएक इतनी रातको पुलिस ? बागमे।

देवी०—रतनके मुँहकी ओर तुम लोग जरा देखो—एकदम जर्द पड़ गया है।

भैरों०—देखो, वह इधर ही देख रहा है!

सुखराम—नन्दकिशोरजी, तुम्हारी दावतमे आकर अन्तको गवाही देनी पड़े।

०—रतन ! रतन !

[नौकरका प्रवेश।]

नौकर—दारोगा साहब पूछते है कि यहाँ भगवानदास नामका आदमी है। लीजिए, वे आही गये।—

भग०—अरे पकड़ लिया !—(भागना।)

नन्द०—रतन ! रतन ! (पीछे जाना; और लोग पीछे पीछे जाते है।)

[दो सिपाहियोंके साथ दारोगाका प्रवेश।]

दारोगा—कहो ! यहां तो कोई नहीं है ! वहाँ पर इतनी गड़बड़ काहेकी है ? देखूं—(जानेको उद्यत होता है।)

[भगवानदासके सिवा और सबका प्रवेश।]

भैरो०—छत परसे फाँद पड़ा।

सुख०—उठते ही भागा—

दारोगा—कौन ?

भैरो०—रतन।

दारोगा०—रतन या भगवानदास ?

नन्द०—हां यही नाम उसने कहा था।

भैरो०—तुमने देखा कि भागा था ?

सुख०—अपनी आँखोंसे देखा था।

भैरो०—हाथ-पैर नही टूटे ?

सुख०—ना। छत परसे पीपलके पेड़ पर जाकर उलटता-पलटता नीचे जाकर गिरा। उसके बाद उसी दम उठकर भागा।

दारोगा—किधर !

सुख०—पश्चिमकी तरफ।

दारो०—महावीरसिंह ! जाओ—पीछा करो।

[एक सिपाहीका प्रस्थान।]

दारोगा—जनाब ! माफ कीजिएगा, मैं जरा आपके घरकी तलाशी लेना चाहता हूं।

नन्द०—क्यो दारोगा साहब ! मामला क्या है ?

दारोगा—विशेष कुछ नहीं। भगवादासके विरुद्ध हत्याके अपराधमें गिरफ्तारीका वारंट है। आप अनुमति दे तो मैं घरकी तलाशी ले।—शायद किसी जगह वह छिपा रक्खा गया हो।

नन्द०--दारोगा साहब ! मै आनरेरी मजिस्ट्रेट हूँ।

दारोगा०—माफ कीजिएगा। मुझे अपने कर्त्तव्यका पालन कर ही होगा। आप तो सब जानते है।

नन्द०—तो आइए। तलाश करके देख लीजिए।

(सब जाते हैं।)

दूसरा दृश्य।

स्थान—भोलानाथके घरका बाग।

समय—सन्ध्या।

[सरस्वतीके सामने तोतेका पिंजड़ा रक्खा है। वह उसे पढ़ा रही है। भोलानाथ टहल रहे हैं।]

भोला०—सरस्वती ! एक बात कहूँगा !

सर०—एक क्यो ! दस बाते सुना दीजिए न।

भोला०—तेरा चेहरा सदा क्यो उदास रहता है ?

सर०—इतनीसी बात कहनेके लिए इतनी बडी भूमिका ! इस बातमे तो मै कुछ नयापन नहीं देखती। दो महीनेसे बराबर आप (बात कह रहे है।

भोला०—क्या कहनेकी मुझे साध है ! तू सदा सोचा करती।—चल, गाड़ीपर बैठकर जरा मैदानकी हवा खा आवे।

सर०—ना दादाजी ! मेरा जानेको जी नहीं चाहता।

भोला०—तो यहाँ तू इस तरह मुह लटका कर न बैठने पावेगी।

सर०—(हँसकर) कहाँ मुह लटकाये मै बठी रहती हू दादाजी !

भोला०—मगर तुझे ही दोष किस तरह दू ?—जिसका स्वामी हत्या करके भागा हुआ है !—यह भी तेरे नसीबमे था !

सर०—वे इस समय अज्ञातवास कर रहे है। मालूम पड़ता है, आपने पाण्डवोकी कथा नही सुनी ! आः ! मै आपको कहाँतक सिखाऊँ। आप तो कुछ भी नहीं जानते।

भोला०—जिस दिन सुना, भगवादासने तुझे लातसे मारा, उस दिन मालूम पडा—क्या कहूँ सरस्वती—मालूम पड़ा कि यह हरीभरी शस्यश्यामला पृथ्वी मेरे सामने ही सूखकर फूलकी तरह शून्यमे झड़ पड़ी और नीचेसे नरक उछल पड़ा, और शैतानोका दल व्याहको टिटकारी देकर हँसने लगा।—ओः !

सर०—यह क्या दादाजी ! पतिकी लात पतिव्रताकी छातीमें—कौस्तुभ मणि क्या चीज है—मुझे ठीक जान पड़ा, जैसे स्वर्गसे कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा हो रही है।

भोला०—यह क्या सरस्वती !

सर०—प्रेमके गूढ तत्त्वको आप कहाँसे जानते ?

भोला०—सो क्या !—तुम दोनोमे प्रेम हुआ था ?

सर०—प्रेम ! ओः ! कैसा प्रेम हुआ था सो क्या कहूँ दादाजी ! वह प्रेम बहुत अधिक और भयानक था !

भोला०—किस तरह ?

सर०—हम अपने प्रेमका शुमार नही कर पाते थे, उसका अन्त नही पाते थे। पूरी तौरसे—क्या कहूँ दादाजी—प्रेमकी मिथ्या कहानीमे पड़कर—यहाँ तक कि अकसर खानापीना भी न होता था। दिन भर बिना भोजनके ही बीत जाता था।

भोला०—तो फिर किया क्या करती थी ?

सर०—बैठे बैठे उपमा दिया करती थी।

भोला०—क्या उपमा देती थी? नमूनेके तौर पर एकाद बता त
सही।

सर०—यही मान लीजिए, वे कहते थे, तू मेरे गलेका हार है;
कहती थी, मैं तुम्हारे पैरोकी जूती हूँ।

भोला०—ओः! मुझे जान पड़ता है—तू व्यंग्य कर रही है—
क्या सचमुच तुम दोनोंमे कभी प्रेम नहीं हुआ—

सर०—क्यो?

भोला०—क्या यही प्रेम है! इसे तो प्रेम नहीं कहते।

सर०—तो फिर किसे प्रेम कहते हैं? कहिए न दादाजी! प्रे
किसे कहते है!

भोला०—सुनेगी, यही मान ले—किसीका किसीके साथ प्रेम हुअ
है! मान ले।

सर०—अच्छा मान लिया—यद्यपि उसे मान लेना बहुत कठि
है। खैर, तर्कके लिए माल लिया। उसके बाद?

भोला०—लेकिन एकने दूसरेको देखा नहीं, उसका नाम भी नहं
सुना—तो भी प्रेम होगा?

सर०—सो किस तरह होगा?

भोला०—किस तरह होगा, यह नहीं जानता। लेकिन होग
जरूर। कविताकी भाषामें इसे पूर्वानुराग कहते है।

सर०—(विस्मयके साथ) अच्छा!

भोला०—उसके बाद एक दिन—किसी सुलग्नमें, शुभ घडीमे,
हारसिंगारके फूलोकी महकसे मनोहर हवाके झोंकोंमें, किसी स्वप्न-
सरीखी सन्ध्यामें, किसी निभृत निस्तब्ध निकुंजवनमें—दोनोंकी चार
आँखें होना। चार आँखें होते ही प्रेमकी उत्पत्ति।

सर०—चार आँखें होते ही उत्पत्ति !

भोला०—चार आँखे होते ही प्रेमका होना—याद रखना, अब मैं यहाँ नाटककी भाषामे वार्तालाप करूँगा।

सर०—अच्छा। उसके बाद ?

भोला०—उसके बाद प्रेमिककी स्वगतोक्ति; प्रेमिकाका व्याकुलभाव दिखाना; प्रेमिकका कवितायें रटना और प्रेमिकाका पतन या मूर्च्छा।

सर०—उसके बाद ?

भोला०—सखीका प्रवेश—सब विरहिणियोके पास कमसे कम एक सखी रहनी चाहिए ! नहीं तो प्रेम नहीं हो सकता।

सर०—नहीं तो प्रेम नहीं हो सकता ?

भोला (सिर हिलाकर) होनेकी कोई सूरत ही नही है। सखी न होगी तो वह गान किसके आगे गावेगी ? गानके बिना प्रेम जमता ही नही।

सर०—हाँ।—उसके बाद ?

भोला०—सखीका प्रवेश और हवा करना। प्रेमिकाका होशमें आना और धीरे धीरे चले जाना ! जाते जाते प्रेमिकाकी साड़ीका पेटकी डालीमे उलझ जाना और प्रेमिकको फिरकर देखना ! प्रेमिकाका मौन तोड़ना और प्रेमिकका—' हा हतोऽस्मि ' कहकर पछाड़ खाना। प्रेमिकका प्रस्थान और प्रेमिकाका—प्रेमिकका क्या ?

सर०—मै क्या जानूं ! वर्णन तो आप कर रहे हैं।

भोला०—ठीक है ! लेकिन इस जगह पर क्या होना चाहिए—कुछ नहीं सूझता। कुछ मेल नहीं खाता ! तू ही न मेल मिला दे बेटी !

प्रेमिकाका ?—बोल। जल्दी बोल। नही तो प्रेम ठढा हुआ जाता। प्रेमिकाका ?

सर०—प्रेमिकाका घर जाकर खूब पेटभरकर रोटी खाना फिर प्रेमके पीछे पड़ जाना।

भोला०—आः ! सब मिट्टी कर दिया !

सर०—क्यों ?

भोला०—यही एक रोटी खानेसे सब मिट्टी हो गया ! मेरा इतन परिश्रम वृथा ही गया। अन्तको रोटी खाना ! आः छिः !

सर०—तो फिर क्या खाना ?—पूरी ?

भोला०—खाना बिलकुल नही। निराहार निर्जल रहना।

सर०—उँहुः। खाली पेटसे प्रेम नहीं होता। यह बड़े कडे परिश्रम-का काम है। रोटी न खाकर पूरी खा सकते है। लेकिन खाना जरूर चाहिए !—अच्छा, उसके बाद ?

भोला०—ठहर जा, पहले विषयको फिर खींच खाँचकर खडा कर लूँ।—इस रोटी खानेकी बातने मुझे एकदम बेदम कर दिया है। जरा सँभाल लूँ—ठहर जा।

सर०—सँभाल लीजिए। कुछ जल्दी नही है।

भोला०—कितना कह चुका हूँ !—हाँ उसके बाद प्रेमिकका ...। उसके बाद एक दिन आँधी उठना, प्रेमिकका नाव न पाना, नदीमे फाँद पडना, नदी पार होकर उसी दम दौडते जाकर प्रेमिकाकी दीवार पर चढकर भीतर फाँद पडना।

सर०—उँहुः ! ठीक नहीं हुआ !—कुछ छूट गया।

भोला०—क्या ?

सर०—मुर्दा और साँप।

भोला०—तुझे कुछ शऊर नहीं है—तू अकवि है। नहीं तो क्या मके बीचमे भी मुर्देको ले आती।

सर०—मै क्यो ले आई? भक्तमालमे—विल्वमंगलकी कथामें—मौजूद है।—अच्छा उसके वाद!

भोला०—उसके बाद और क्या! प्रेमिक और प्रेमिकाकी भेट। प्रेमिकाका लज्जाका भाव प्रकट करना। फिर सखीका प्रवेश। उसके बाद दोनोंका गुप्तरूपसे ब्याह होना। परस्तानका पर्दा दिखाना। यवनिका पतन।

सर०—यह क्या! यहीं पर प्रेमका अन्त हो जायगा?

भोला०—अन्त नहीं तो और क्या होगा! ब्याह हो गया। और क्या चाहती है?

सर०—उसके बाद और कुछ नहीं!

भोला०—अच्छा तू ही कह उसके बाद!

सर०—उसके बाद प्रेमिकाका सुसराल जाना। प्रेयसीका रसोई बनाना, भटारेसे सीधा निकालना, प्राणनाथका रोटी खाना और आफिस जाना।

भोला०—यह वात किसी नाटककार या कविने नहीं लिखी।

सर०—इतनी सत्य वातको काव्य बर्दाश्त नहीं कर सकता। जहां असल और सत्य वातका शुरू होना, वहीं पर नाटकका अन्त होजाना।

भोला०—हा हा हा! अच्छा उसके वाद?

सर०—उसके बाद यथासमय पुत्र-कन्या होना।

भोला०—यह सब नाटककी भाषामे नहीं। तू आप ही कह रही है कि यहीं पर नाटकका अन्त होना।

सर०—अच्छी बात है ! अब यहाँसे प्रचलित भाषामे कहूँगी। उसके बाद 'पु' नरकसे त्राण (रक्षा) करनेके लिए पुत्ररत्नने आकर दर्शन दिये। अब क्या पूछना है ! उस पुत्रकी सेवा और लालनपालनमें माताको न सोनेकी सुध है और न खानेकी सुध है। माकी जरा ऑख लगी, इतनेमे बच्चेने जरा ' एँ एँ ' किया, माकी ऑख खुल गई, वह चट बच्चेको छातीसे लगाकर—" ओ—ओ—ओ—मेरा लाल, मेरा बच्चा ! ओ—ओ—ओ—आरे चंदा " करने लगी।

भोला०—तू ठीक कहती है।

सर०—लड़का जरा बड़ा हुआ तो गोदसे गर्दन पर चढने लगा। बुखार है—डाक्टरको बुलाओ। पाठशालासे लड़का 'क' लिखकर घर आया, तो घरमे माता मिठाई और जल लिये दासीकी तरह हाजिर है। रातको लड़केने कहा अम्मा, बड़ी गर्मी है, माता पंखा लेकर डुलानेके लिए दौड़ी। माता उस लड़केके लिए कितने ही बड़े दिन बिना कुछ खाये-पिये, कितनी ही बड़ी राते बिना ऑख लगाये, बिता देती है। मरते दम तक माताके मुखमे पुत्रकी बातोंके सिवा और बात नही रहती, ध्यानमें और चिन्ता नही रहती। वह सोतेमे और स्वप्न नहीं देखती। लडका ...का लड़का ! मरनेके बाद मुँहमे लुकुआ लगावेगा कि नहीं ! वह कहाँ नसीब होता ! एकदिन माताकी गोद खाली करके उसकी ...ी तोड़कर, उसके जीवनको सूना बनाकर, वही लडका, इतने यत्न ...ने आदर—इतने स्नेहको तुच्छ करके न-जाने कहॉ चला जाता है। ... वह देख नहीं पडता।

भोला०—फिर वही बात !

सर०—ना दादाजी ! मै चुप हूँ !—आहा वह चेहरा ! कैसे टुकुर टुकुर मेरी ओर देखता था। वे दोनों छोटे छोटे हाथ—वे नन्हीं नन्हीं उँगलियॉ !—अगर आप देखते दादाजी !—जैसे मोमका पुतला था।

भोला०—वह पुण्यात्मा स्वर्गको गया। लेकिन तेरा पुत्र—मेरी पोतीका पुत्र—अन्तको दारिद्र्यके कोड़े खाकर, आहारके बिना—

सर०—यह क्या! आप रो रहे है दादाजी! इतना समझाया बुझाया, पर मै आपको सुधार नही सकी!—उधर देखिए, केलेके पेड़ोपर सूर्यकी किरणे आकर पड़ रही है। जैसे सन्ध्याकी जय-पताका फहरा रही है।

भोला०—यह बात तूने पत्रमे लिखकर मुझे जताई क्यो नहीं सरस्वती!—मै तुझे इतना प्यार करता हूँ।

सर०—फिर वही बात!—अच्छा दादाजी! काव्योंमे प्रेमीका प्रेममें मूर्छित होना लिखा है। सो क्या बात है दादाजी। सत्य ही क्या प्रेममे मूर्च्छा आती है?

भोला०—कहॉतक बहलावेगी बेटी! और मै कहॉतक टालूँगा! यह शोक कही टाला या बहलाया जा सकता है!—यह गेरूके झरनेकी तरह पत्थरको फोड़कर उछल रहा है। आ बेटी, इससे यह अच्छा होगा कि हम दोनो रोवे, एकसाथ चिल्लाकर रोवे और वह हमारा रोना आकाशमे जाकर किनारेसे टकराई हुई सागरकी लहरकी तरह दयामयके चरणोतक पहुँचे। देखू, उन्हे दया आती है कि नहीं।

सर०—रोऊे क्यों दादाजी! भगवानने जो दिया है उसे सिर झुकाकर स्वीकार करूंगी।

भोला०—यह तुझसे हो सकेगा?

सर०—हो सकेगा! भवानीदादाने मुझे ईश्वरका भजन सिखा दिया है। उन्होने कहा है कि भगवान जिस पर बहुत कृपा करते है उसीको दुःख देते है। दुःख देकर अपने हृदयसे लगा लेते हैं, और भी अपना लेते है। वह देखो, भवानी दादा गा रहे है। क्यो?

भोला०—हॉ चुप होकर सुन।

सर०—(हाथ जोड़कर घुटने टेककर) दादाजी।

भोला०—सरस्वती! समझता हूँ। सब समझता हूँ। लेकिन यहाँ चोरी-छिप्पा कुछ न होगा। मै सदा सीधी राहसे चलता आया हूँ। इस समय स्नेहके वश होकर टेढ़ी राह नही चलूँगा। मेरा घर हत्यारोंका अड्डा नहीं है।—निकल स्त्रीघातक!—तेरा मुँह भी देखकर प्रायश्चित्त करना चाहिए।

सर०—(उठकर) तो मुझे भी विदा कर दीजिए दादाजी!

भोला०—यह क्या!

सर०—वे जैसे जो हो—मेरे स्वामी है।

भोला०—ओ!—समझ गया!—अच्छी बात है!—तूने सोचा होगा बेटी कि तुझे मै प्राणोसे भी बढकर चाहता हूँ, इस कारण तेरे लिए कर्त्तव्यकी राह छोड़ दूँगा! यह सोचना भी नहीं। कर्त्तव्यके लिए मैंने बहुत कुछ छोड़ दिया है। तुझे छोड़ना पड़ेगा तो तुझे भी छोड़ दूँगा। यद्यपि तुझे छोडनेमें मेरी छाती फट जायगी; सब अग शिथिल हो जायँगे, शायद पागल भी हो जाऊँगा; लेकिन—जबतक जियूँगा अपना कर्त्तव्य किये जाऊँगा। अपराधीको—विशेषकर हत्यारेको—न्यायके हाथसे नहीं बचाऊँगा। न्यायकी आँखोमे धूल ... दूँगा।—जा बेटी! मै तुझे भी विदा करता हूँ।

भग०—इसकी जरूरत नही है। मै खुद जाता हूँ। खुद विपत्तिकी लहरोंमे पड़कर डूब रहा हूँ—स्त्रीको भी लेकर उसमे क्यों डूबूँ!—मै पुलिसको आत्मसमर्पण कर दूँगा।

सर०—ठहरो, मै भी तुम्हारे साथ चलूँगी। जहाँ तुम्हारा स्थान है, वहीं मेरा स्थान है; वह चाहे पेडके नीचे हो, चाहे जेलखानेमें हो, और चाहे वध्यभूमिमे हो। तुम यदि आज ऐश्वर्यके गर्वसे गर्वित होकर

ुझको लेने या ग्रहण करने आते तो मै उधर ध्यान भी न देती, ेकिन आज तुम भिक्षुक निराश्रय हो !—दादाजी, तो आज्ञा दीजिए।

भोला०—अच्छी बात है । अगर जासके तो जा सरस्वती !— ंाखो ! अगर आँसू गिराओगी तो तुम्हे निकाल कर फेक दूँगा । अन्धा तो यो भी होजाऊँगा । पहलेहीसे सही । जा सरस्वती—गलेमें त्या रुँधासा आता है—जा सरस्वती । मुझे छोड़कर हत्याकारीके ाथ जा ।

सर०—दादाजी—

भोला०—इधर देख सरस्वती ! ये सफेद बाल—जिनके ऊपरसे ाठ बरसका ओंधी-पानी निकल गया है । इधर देख यह चंचल क्ष—जिसके भीतर एक स्नेहका सागर लहरा रहा है । इधर देख यह ढा मरनेके किनारे—ना । जा सरस्वती ।

सर०—एक ओर स्नेह है, और दूसरी ओर कर्तव्य है—

[अदृश्यभावसे भगवानदासका प्रस्थान ।]

भोला०—जा सरस्वती ! खडी क्यो है ! मुझे छोडकर जासके तो । देख, मै खडा खडा तेरा जाना देख सकता हूँ या नहीं ।—ऑखो ! —ना, निकालकर फेक दूँगा । (ऑखें निकालनेको उद्यत होता है।)
जा
—यह क्या ! यह क्या ! दादाजी ! (हाथ पकड़ती है)
फिर
क्या है ! करते क्या है ! (घुटने टेककर) दादाजी !
ने
—जा सरस्वती !
आप
...फिरकर) मेरे स्वामी कहाँ है ?—चले गये !
ला०—(...
ला०—गये ...र कर) दादाजी ! आपने मेरे स्वामीको
...०—(कुछ देर ...
...नहीं दिया !

भोला०—हरएक व्यक्तिको यही उचित है कि हत्याकारीको न्यायके हाथमे सौप दे। मैंने उसे केवल यहाँसे भगा दिया। जब मैंने उस अधमके हाथमे तुझे सौप दिया था तभी क्या मैंने उसे अपना सर्वस्व नहीं सौप दिया था? अपना हृदय निकालकर उसे नहीं दे दिया था?—लेकिन मेरी सरस्वतीको उसने लात मारी—उसने ह हत्या की—ना, यहाँ हत्याकारीके लिए स्थान नहीं है।

सर०—वह हत्याकारी अगर आपका बेटा होता?

भोला०—उसे भी इसी तरह त्याग कर देता।

तीसरा दृश्य।

स्थान—अदालत।

समय—तीसरा पहर।

[अपने अपने स्थानमे जूरी, वकील-बैरिस्टर और जज दूरपर भगवानदास और दर्शक लोग उपस्थित है। वकील अपनी बहस कर रहा है।]

वकील—जूरर महाशयो! इस समय आसामीके वि यह है कि आसामीके साथ वेश्याकी कहा सुनी हुई; उसके पिस्तौलकी आवाज सुनाई पडी, बादको आसामीके नौकरो योंने उस घरमे प्रवेश करके देखा कि मुन्नीकी खूनसे लथ मीन पर पडी हुई है। आसामीकी स्त्री कुछ दूरी पर मूर्छित अ हुई है, और आसामी पिस्तौल हाथमे लिए खडा है। लोगो आसामी पिस्तौल फेककर भाग खड़ा हुआ। ये सब नौकरो और परोसियोकी गवाहीसे प्रमाणित हो ग भेजी गई। आकर देखा लाश मौके पर नहीं वह लाश किसीने वहाँसे हटा दी। किस

तक सावित नहीं हुआ । लेकिन यह सावित हो चुका है कि इसी समयमे एक किरायेकी गाडी उस घरसे मुन्नीके घरकी तरफ गई थी । दस दिन बाद वही लाश मुन्नीके घरके कुएँमे अधसड़ी अवस्थामे पाई गई । वह लाश मुन्नीहीकी थी, इसका प्रमाण यह है कि उस लाशकी उँगलीमे एक अँगूठी थी; उसमे मुन्नीका नाम खुदा हुआ है ।—

यह जरूर है कि आसामीकी स्त्रीने इस बारेमे आसामीके खिलाफ गवाही नहीं दी । मगर कौन हिन्दू जातिकी सती स्त्री अपने स्वामीके विरुद्ध गवाही देगी ?—

तभीसे आसामी भागा हुआ था । यह भी उसके खिलाफ सुवूतमे कहा गया है ।

पिस्तौल आसामीका ही है, यह बात शिनाख्त की जा चुकी है।—

अब इससे बढकर सन्तोपजनक और प्रमाण क्या हो सकता है?—इन बातो पर विचार करनेसे स्पष्ट कहा जा सकता है कि इस मुन्नीकी हत्याका जिम्मेदार यही आसामी है । जिस कमरेमे हत्या हुई वहाँ उस समय आसामी, आसामीकी स्त्री और इस लाशके सिवा और किसीको किसीने देखा नही । अतएव यह हत्या—या आसामीने की है, और या आसामीकी स्त्रीने की है। लेकिन आसामीकी स्त्रीका यह हत्या करना क्या संभव है? मुन्नीसे झगडा आसामीसे हुआ था. आसामीकी स्त्रीके साथ [illegible] । [illegible] सिवा हत्या करके स्वामीके हाथमे पिस्तौल देकर क्या कोई [illegible] हो जा सकता है! और आसामीकी स्त्री अगर हत्या करती [illegible] तो [illegible] छिपकर भागा भागा फिरता !

[illegible]—[illegible] महोदयो ! इस हत्याके सम्बन्धमे जहाँतक सम्भव [illegible] है । अब आप लोग विचार करें । अगर [illegible] कोई संगत सन्देह हो, तो आसामीको

[illegible]—(कुछ देर चुप [illegible]) [illegible] दिया !

निर्दोष प्रमाणित करना होगा। और अगर सन्देह न हो तो आसामीको हत्याके अपराधमें अपराधी समझना होगा; कोई उपाय नहीं है। हत्याके अपराधका दण्ड फाँसी तक हो सकता है। इन्हीं सब बातोको सोच समझ कर आप विचार करें। (बैठ जाता है।)

जज—आसामी भगवानदास, तुमको कुछ कहना है ?

भग०—धर्मावतार ! मै निरपराध हूँ !

जज—सो तो पहले ही कह चुके हो ! और कुछ कहना है ?

भग०—धर्मावतार ! यदि मुझसे अपराध बन ही पडा हो तो मुझे मृत्युका दण्ड न दीजिएगा। मै अभी जवान हूँ। पृथ्वी मेरे लिए अभी तक नई चीज है। अभी संसारमे मुझे आशा है, देहमे शक्ति है, मनमें बल है। मै पापी हूँ, पापका प्रायश्चित्त करनेके लिए अवकाश दीजिए, मरनेसे मै बहुत डरता हूँ।

जज—इस प्रकारकी प्रार्थना अदालतमे बेकार है। न्याय तरवारकी तरह पैना, कठिन और निर्मम है। तुम अगर निर्दोष हो तो वह तुमको छूयेगा नहीं—बल्कि सम्मान करेगा। लेकिन जो तुम अपराधी हो तो वह 'होनी' की तरह कठोर है—दया नहीं करता। प्रमाणके सम्बन्धमे तुम्हें कुछ कहना है ?

भग०—मैने हत्या नहीं की।

जज०—तो किसने हत्या की ?

भग०—मेरी स्त्रीने ! (भगवानदासको अन्तरिक्षमे मानों सुन पडा—'सावधान !') यह क्या ! किसकी आवाज है !—ईश्वर ईश्वर !—रक्षा करो—रक्षा करो ! (फिर 'सावधान' का शब्द सुन पड़ता है।) ना, ना, निरपराधी सतीको इस मामलेमे नहीं फँसाऊँगा।—ना धर्मावतार ! मेरी स्त्रीने नहीं हत्या की—लेकिन—लेकिन—मरनेसे मै बहुत डरता हूँ—मरनेसे मै बहुत डरता हूँ।—मैने हत्या नहीं की।

जज—किसने हत्या की है? सच कहो, किसने हत्या की है?

भग०—मेरी स्त्री—

[दर्शकोंकी भीड फाड़कर सरस्वतीका प्रवेश।]

सर०—सच है धर्मावतार!—हत्या मेरे स्वामीने नहीं की। हत्या मैने की है।

जज—तुम कौन हो?

सर०—मैं आसामीकी स्त्री हूं—

सब लोग—आसामीकी स्त्री!

सर०—मुन्नी मेरे स्वामीके पास नौकर थी। उसी डाहके मारे मैने उसे मार डाला। हत्या करते ही मै खौफसे वेहोश होकर गिर पड़ी। जान पडता है, मेरे स्वामीने उस समय छिपा देनेके अभिप्रायसे पिस्तौल उठा लिया होगा।

(वकील गर्दन हिलाता है।)

सर०—वकीलसाहव! मेरी वात पर अविश्वास करनेका कारण क्या है? आपहीकी युक्ति है कि हत्या या आसामीने की है, या आसामीकी स्त्रीने। मेरे स्वामी अस्वीकार कर ही रहे है। मैं स्वीकार करती हूं।

जज—अबतक यह बात क्यो नही प्रकट की?

सर०—प्राणके भयसे। लेकिन जव देखा कि एक निरपराधको फांसी हो रही है तब मुझसे नहीं रहा गया।

जज—(वकीलसे) What do you say? (आप क्या कहते है?)

वकील—I do think that the matter requires further enquiry, specially as the prisoner denies his guilt and this lady corroborates him (मै समझता हूं, इस मामलेकी

और भी जाँच होनी चाहिए। क्योंकि आसामी अपराध करना अस्वी
कार करता है और यह महिला उसका समर्थन करती है।)

जज—*Very well, officer of the court you may arres*
this wo—I mean lady (बेहतर है, न्यायालयके कर्मचारी, इ
और—मेरा प्रयोजन है, औरतको गिरफ्तार कर लो।)

कर्मचारी—As your worship pleases. (सरस्वतीसे)
आपको आपकी स्वीकृतिके अनुसार गिरफ्तार करता हूँ।

सर०—कीजिए।

(यों कहकर बाँधनेके लिए अपना हाथ बढ़ा देती है। उस समय उसक
सिर और भी ऊँचा हो जाता है। उसके सिर परसे दुपट्टेका आँचल खिस
जाता है। सब लोग सहसा उठकर उसकी ओर भक्तिपूर्ण विस्मयके भाव
ताकने लगते हैं।)

चौथा दृश्य।

स्थान—भोलानाथका घर।

समय—सबेरा।

[भोलानाथ, प्रेमशंकर और दीनानाथ।]

भोला०—रुपये चाहिए, रुपये चाहिए, जिस तरहसे हो।

प्रेम०—सो तो मैं भी देख रहा हूँ, लेकिन रुपये आवें कहाँसे!-
तो जो कुछ था, वह दोनो हाथों लुटा दिया।

भोला०—लुटा तो दिया—ठीक है। लेकिन रुपये चाहिए।

प्रेम०—जिसने उधार माँगा, आपने दे दिया। देकर फिर कभ
पाया नहीं। उसको पिताकी गया करनी है, इसको कन्याका ब्याह
करना है, किसीको महाजनके चुगलसे छुड़ाना है—तब तो सबक
सब मुसीबत आपने अपने सिर ले ली—अब!

भोला०—इस समय मुझ पर विपत्ति पड़ी है, वे लोग क्या सहायता नही करेंगे—मेरी मुसीवतमे शरीक न होगे ?

दीना०—तुम मनुष्यको नहीं पहचानते भोलानाथ! इसीसे उपकारका बदला पानेकी आशा करते हो!

भोला०—जब उपकार किये थे तब यह नहीं सोचा था कि इनका बदला पाऊँगा। आज—पहले पहले यह खयाल मनमे पैदा हुआ है। वे नही देंगे? इस विपत्तिके समय उनमेसे कोई १०००० रु० उधार न देगा ?

प्रेम०—मांगकर देखिए न !

भोला०—कहते क्या हो प्रेमशङ्कर! जगत्मे प्रत्युपकार नहीं है? उपकारका बदला—

दीना०—गालीगलौज—इतनेहीमे अगर वह चुप रह जाय तो गनीमत समझो।

भोला०—क्यो

दीना०—मनुष्य अधम है!—जितना दो उतना ही मांगता है। जितना उसका उपकार करो उतना ही मानो तुम उसका उपकार करनेके लिए बाध्य हो. अगर न कर सके तो गालियां सुननेको मिलेंगी!

भोला०—मनुष्य इतना नीच है!—ना ना। यह हो नहीं सकता। यह हो नहीं सकता।

प्रेम०—वह देखो उन्हींमेसे एक आदमी, सिरपर छाता लगाये [illegible]। पुकारिए—जरा मांगकर देखिए न। ओ कामताप्रसाद!

कामता०—(नेपथ्यसे) क्या है?

प्रेम०—जरा इधर आइए तो।

कामता०—(नेपथ्यमें) बड़ी जरूरतसे जा रहा हूँ।

प्रेम०—दो मिनटके लिए चले आइए।

कामता०—(नेपथ्यमें) आः?

दीना०—वह आ रहा है! लेकिन मुखका भाव देखते हो!

[कामताप्रसादका प्रवेश।]

कामता०—क्या कहते हो!—मुझे फुरसत नहीं है।

प्रेम०—चाहनेसे फुरसत हो सकती है; न चाहनेसे नहीं। एक दिन था, जब तुम हत्या दिये पड़े रहते थे।

भोला०—सचमुच फुरसत नहीं है?

कामता०—जी हाँ!

भोला०—सच?

कामता०—सच।

भोला०—अच्छा—जाओ।

(कामताप्रसाद जाना चाहता है।)

प्रेम०—ठहरो। तुम्हारा अधिक समय नहीं नष्ट करूँगा। याद है, दादाजीसे पाँच हजार रुपये उधार लिये थे?

म ०—कहाँ?—नहीं तो।

०—लेकिन आपने रुपये लिये थे।

०—कुछ लिखा पढ़ी है?

प्रेम०—शायद नहीं है! मूर्ख दादाजीने लिखाया नहीं। तो भी आपने रुपये लिये थे?

कामता०—किसी जन्ममें नहीं।

प्रेम०—अजी इसी जन्ममे।

कामता०—ना।—मुझे अब समय नहीं है। (जाना चाहता है।)

भोला०—तुम्हे मेरा कुछ नहीं देना है भैया। मुझे तुम्हारा देना है।

कामता०—(घूमकर) सो हो सकता है। सो हो सकता है।—कितने रुपये ?—ठीक याद नहीं पड़ती।—अनेक कामोमें लगे रहना पडता है, याद भी नहीं रहता।—कितने रुपये देना है ?

भोला०—सो तो नहीं मालूम। मगर यह जानता हूँ कि मनुष्यके निकट मनुष्य अवश्य ही ऋणी है भैया।—कोई इस ऋणको स्वीकार करता है, कोई नहीं करता। भैया ! तुम्हे मेरा कुछ नहीं देना ! इस समय जो तुम मुझे दोगे वह मानो दान दोगे। मुझे दान करो। मुझ पर बडी भारी विपत्ति आ पड़ी है।

कामता०—मुझे अब समय नही है। मै जाता हूं। (प्रस्थान।)

दीना०—क्यो भोलानाथ ! क्या सोच रहे हो !

भोला०—भवानीप्रसाद—अजी भवानीप्रसाद—

दीना०—भवानीप्रसाद क्या करेगा !—

प्रेम०—वह देखिए, श्यामलाल जा रहा है।

भोला०—कौन श्यामलाल ?

प्रेम०—जिसे लड़कीका ब्याह करनेके लिए पाँच हजार रुपये आपने दिये थे—बाबू श्यामलाल !—ओ बाबू श्यामलाल !—चला गया। उत्तर भी नही दिया। मालूम पडता है, मानो वह कभी आपके पास आया ही नहीं। मै जानता हूं, वह अब आपके पास कभी न आवेगा।

भोला०—क्यो ! मै क्या पागल कुत्ता हूं ! लोग मेरे पास आनेमें [illegible] डरते क्यो है ?—

दीना०—या तो वे अपने साथ उपकार करनेवालेको पहचान नहीं सकते, और या उनको देख ही नहीं पड़ता।

प्रेम०—वह रामनाथ जा रहे है। रामनाथ अजी रामनाथ!

राम०—(नेपथ्यमें) क्या—

प्रेम०—जरा इधर आइए तो।

राम०(नेपथ्यमें) आता हूं।

भोला०—यह तो पुकारते ही चला आया। मनुष्य कहीं इतना खराव हो सकता है। दो एक जरा विगड़ जाते है।—वह देखो आ रहा है।

प्रेम०—कुछ समझमे नही आता। उसे महाजनकी डिक्रीके सकटसे वचानेके लिए आपने पन्द्रह हजार रुपये दिये थे।

भोला०—वह मेरी वहिनका दामाद है।

दीना०—ठीक है।

[रामनाथका प्रवेश।]

भोला०—आओ भैया!

राम०— वाबूजी! यह अच्छा है!—बुढापेमे यह वदनामी! मैं आप ही आ रहा था।—यह वदनामी!—एक वेश्याके चरणोंमे इतना रुपया अर्पण कर दिया। और, मैंने कल अपनी लडकीके व्याहके लिए पॉच हजार रुपये मॅगाये तो कहला भेजा कि इस समय रुपये मौजूद नही है। मै आपकी वहिनका दामाद हूँ—मेरा कुछ भी ख्याल नहीं!

दीना०—तुमने सिर खरीद रक्खा है भैया, सिर पर चढ़ो।

भोला०—ना ना। सुनो भैया, मुझे खुद ही इस समय रुपयोंकी जरूरत है। दू कहॉसे।

राम०—लेकिन वेश्याको आप इस समय भी काफी रकम दे सकते अच्छी बात है—

भोला०—वेश्याको !—

राम०—विशेष कहनेकी जरूरत नही है—धूर्त, शराबी, लंपट—

प्रेम०—चुप रह उल्लू—(जाकर गर्दन पकड़ता है।)

भोला०—अरे यह क्या करते हो ! क्या करते हो !

प्रेम०—निकल यहाँसे।

राम०—अच्छी बात है !—इस घरमें अब कौन साला पैर रखेगा। (प्रस्थान।)

दीना०—अरे बापरे, यह तो भीष्मकी प्रतिज्ञा है।

भोला०—यह क्या ! तो क्या सचमुच ही मनुष्य इतना अकृतज्ञ सकता है ! इसकी—इसकी तो मै कभी कल्पना भी नहीं कर का।—भवानीप्रसाद ! एक—ना, कुछ मेरी समझमे नहीं आता। [illegible] समझमे नही आता। मेरा सिर घूमा जा रहा है। आँखोके आगे [illegible]रा छा रहा है।—ईश्वर ! रुपये न पाऊं, भूखो मरूं, सरस्वती [illegible]सी पर लटक जाय—लेकिन मनुष्यपर, तुम पर, मेरा विश्वास अटल [illegible]ना रहे।

दीना०—भोलानाथ ! मै इन रुपयोका प्रबन्ध करने जाता हूं। [illegible] निश्चिन्त रहो।

भोला०—यह क्या है ! आकाशमे नक्षत्र हिल रहे है—इन्होंने [illegible] क्या ! पृथ्वी पैरोके नीचेसे निकली जा रही है। चन्द्रमा [illegible] कर रहा है। हवा एक जगह खड़ी होकर अपना पसीना [illegible] रही है। दीनानाथ ! मुझे सँभालो। गिर पड़ूँगा।

दीना०—धैर्य न छोड़ो। मैं इन रुपयोंका प्रबन्ध करता हूँ।—मैं प्रबन्ध करके रुपये लाता हूँ।

भोला०—लाते हो! लाते हो! हाँ ले आओ! भिक्षा माँग करके हो, चोरी करके हो—जिस तरह हो, ला दो। सरस्वती बच जाय, उसके बाद प्रलय हो जाय! मेरी कुछ हानि नही।

दीना०—भोलानाथ, शोकसे पागल न होजाना।

भोला०—ना ना। पागल न होऊँगा। अभीतक सरस्वती जेलमें पड़ी सड़ रही है। वह सोनेकी प्रतिमा, साक्षात् उषा, वह मक्खनसे मुलायम अगोंवाली बेटी जेलमें सड़ रही है। वह सती, वह योगिनी, वह दुखिया, वह आनन्दमयी, वह सुन्दरी, वह देवी, मेरी पोती मरने जा रही है। मेरे शरीरकी शक्ति, मेरी आँखोकी ज्योति, मेरे जीवनका सुख, मेरे परलोकका स्वर्ग—मेरे इस लोकका सर्वस्व, मेरी प्राणोंसे प्यारी पोती—तुझे छोड़कर चली जा रही है। मै जाने न दूँगा।—रुपये चाहिए। समझे दीनानाथ?—रुपये चाहिए।

दीना०—अच्छा, मै इसी घडी जाता हूँ; चाहे जहाँसे जैसे हो—से लिये आता हूँ। तुम निश्चिन्त होओ। (प्रस्थान।)

भोला०—निश्चिन्त होऊँ! हाँ, डर क्या है! दस हजार रुपये कोई न देगा!—संसारमे सभी क्या कृतघ्न है!—अरे मै तुम लोगोंको सर्वस्व देकर, खुद कगाल होकर राहमे भीख माँगनेवाला फकीर होकर, द्वार द्वार पर रोता फिरता हूँ!—दया नहीं है? कृतज्ञता भी नहीं है?—ना, यह भी क्या हो सकता है।—ये नक्षत्र फिर स्थिर, शान्त, ज्योतिर्मय देख पड़ने लगे। फिर स्निग्ध पवन डोलने लगा। वह शुभ्र चाँदनी शस्यश्यामला धरतीके स्नेहमे लिपट रही है!—

। ना ! यह भी क्या हो सकता है ! सृष्टि इतनी सुन्दर है, सृष्टिकी सबसे बढकर सृष्टि मनुष्य क्या इतना कुत्सित हो सकता है ! हो सकता है !—ना, इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता, नहीं करूँगा।

[गौरीनाथका प्रवेश।]

भोला०—यह लो गौरीनाथ आगये ! गौरीनाथ—मुझे दस हजार रुपये उधार दो।

गौरी०—मै ?—उधार दूँ ?—आपको ? आप कहते क्या है !

भोला०—क्यो ! क्यो ! तुमने मेरी जमींदारी नीलाम पर चढवाकर खरीद ली है। तुमने मुझे मोहताज फकीर बना दिया है—ना ना. तुमने कुछ नही किया। मैने खुद अपनी यह दशा की है—लोगोंको सर्वस्व देकर,—ना, मैने किसीको कुछ नहीं दिया। केवल औरोंका ही लिया है—लूट की है ! किसीका दोष नही है। दोष मेरा है। इतना विश्वास, इतना स्नेह, इतना—नही कहाँ ! मैने किसीको प्यार नहीं किया: किसीसे कोई सलूक नही किया।—केवल दगाबाजी, जुआ- चोरी, हत्या करता फिरा हूँ। मुझे दस हजार रुपये दो।

गौरी०—मै रुपये दूँगा आपको। आप बडे भारी जमींदार है, आप बड़े भारी दाता है, आप बडे आदमी है। हम सब छोटे लोग हैं।

भोला०—ना, किसने कहा ! छोटा आदमी मै हूँ, नीच मैं हूँ, घृणाके योग्य मै हूँ, पापी मै हूँ। तुम सब धार्मिक हो, तुम सब पुण्यात्मा हो, तुम सब देवता हो—रुपये उधार दो ! मै एक ही महीनेमे पर [illegible] चुका दूँगा।

गौरी०—इसका जमानतदार कौन है !

भोला०—मै अपनी जमींदारी रेहन रखता हूँ।

गौरी०—सारी सम्पत्ति ?

भोला०—मेरा जो कुछ है—मेरी जमींदारी, मेरा घर, मेरा यह लोक, मेरा परलोक—सब ले लो। मुझे दस हजार रुपये दो। मै अपनी पोतीको बचाना चाहता हूँ। मेरा सब चला जाय, पर वह बच जाय।

गौरी०—मुंशीजी—तमस्सुक दीजिए तो। दादाजी दस्तखत कीजिए!—दादाजी, आपकी विपत्तिका हाल सुनकर मै तमस्सुक लेता आया हूँ। यह भी जानता था कि मुझे ही यह रकम उधार देनी होगी। इसीसे एकदम तमस्सुकका मजमून भी लिखाकर लेता आया हूँ। आपने एक दिन मेरी विपत्तिमें सहायता की थी—खुद रुपये ले जाकर घर पहुँचा दिये थे। आप देखते है, उस उपकारको मै भूला नहीं।

भोला०—तुम्हारी जय हो।

गौरी०—मुंशीजी—

(मुंशी तमस्सुक देता है।)

गौरी०—तो दस्तखत कीजिए।

भोला०—कहाँ पर दस्तखत करूँ ?

गौरी०—इस जगह पर।

भोला०—दो। (दस्तखत कर देते है।)

गौरी०—अच्छी बात है। (तमस्सुकको लपेट कर जेबमे रखता है।)

भोला०—रुपये ?

गौरी०—घर जाकर भेजता हूँ।—

भोला०—भगवान् तुम्हारा भला करे!—मैं दीनानाथसे कह रहा था कि यह भी कहीं हो सकता है कि मनुष्यकी जाति कृतघ्न हो!—

फिरसे मनुष्यका विश्वास मैंने पाया । मानो मेरी जान बची । तुम्हारी जय हो गौरीनाथ ।—और सरस्वती ! मैं तुझे बचाऊँगा, मैं साबित कर दूँगा, संसारको दिखा दूँगा कि तू कितनी बडी सती है—कितनी बडी मिथ्यावादिनी है ! तू संसारकी आँखोमें धूल डाल सकती है, मगर मेरी आँखोंमें नहीं डाल सकती । तू मुझे छोड़ जायगी ! मैं जाने न दूँगा । (प्रस्थान ।)

गौरी०—समझे मुंशीजी !

मुंशी—जी हाँ, समझ गया ।

[कामताप्रसाद और रामनाथका प्रवेश ।]

गौरी०—तुम लोग आ गये !—जरा दस्तखत करने होंगे । यह लो ।

कामता०—दस्तखत ? कैसे !

गौरी०—देखो न ।—गवाह होना होगा ।

कामता०—(पढ़कर) ओ ! रुपये दे चुके ?

गौरी०—विना दिये कहीं कोई राजीसे दस्तखत कर देगा !—इसके दस्तखत नहीं देखते हो !

कामता०—ओ ! समझ गया ।—खूब !—लाओ कलम । (दस्तखत करता है ।)

गौरी०—रामनाथ तुम भी दस्तखत करो ।

राम०—क्या करते हो कामताप्रसाद !

कामता०—कुछ परवा नहीं है ! दस्तखत कर दो ।

(वह भी दस्तखत करता है ।)

राम०—लेकिन रजिस्ट्रीके समय

गौरी०—तुम लोग गवाह हो ।

कामता०—जीते रहो । तुम पक्के बदमाश हो । लेकिन यह बूढ़ा—एकदम घोर मूर्ख है ।

(तीनों जने और मुंशीजी जोरसे ठहाका मारकर हँसते हैं ।)

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—वध्यभूमि ।

समय—प्रात काल ।

[दोनो हाथ बंधे रहनेकी हालतमे सरस्वती खड़ी है । सामने जेलर साहब है ।]

सर०—अब और कितनी देर है जेलर साहब ?

जेलर०—आध घंटेके लगभग । सिविलसर्जन अभी नही आये ।—ऊपरकी ओर क्या तक रही हो मैया ?

सर०—एक बार, अन्तिम बार, पृथ्वीको देखे लेती हूँ ।—कैसा सुन्दर स्वच्छ आकाश है !—कैसा नीला रंग है ! कैसा सर्वत्र सन्नाटा है !—चिडियाँ बोलती नही है । वे अभीतक नही जगीं !—वह सूर्य ..रहा है—क्यो न ?

जेलर—हाँ मैया ।

सर०—कैसी सुन्दर है यह पृथ्वी ! मुझे पहले तो यह कभी सुन्दर देख नहीं पडी । आज इसे छोड़े जाती हूँ, इसीसे शायद इतनी सुन्दर देख पड रही है ।—मैं नित्य इस सौन्दर्यका उपभोग कर सकती थी । त्रिभुवनेश्वर ! मैं मोक्ष न ं चाहती । मैं फिर इस सुन्दर जगतमे जन्म लेना चाहती हूँ । मैं फिर आकर सूर्योदय देखना चाहती हूँ, फिर पक्षियोंका चहचहाना सुनना चाहती हूँ, फिर

सुवासित मलय-पवनके हिलकोरोंमे गोते लगाना चाहती हूँ, फिर प्यार करना चाहती हूँ। उस बार आकर जन्मके सुखका उपभोग कर लूँगी—अबका जन्म निष्फल गया—इसका उपभोग नही कर सकी !—जेलर साहब ! मरनेसे पहले एकबार अपने दादाजीसे मिलनेकी इच्छा थी। वे आये नही ?

जेलर—नहीं भैया।

सर०—तो फिर मै उनसे यह नहीं कह सकी कि मैं उन्हे कितना चाहती थी। हम दोनो—पोती और दादा—एक दूसरेको बहुत ही चाहते थे जेलर साहब ! शायद उस तरह और उतना किसीने जगतमें किसीको नहीं चाहा ! सामने बैठकर कभी वे एकटक मेरी ओर ताकते रहते थे, मै उनकी ओर ताकती रहती थी। वे मुझे छातीसे लगा लेते थे और मै आनन्दमे सारे ससारको भूल जाती थी। ओः ! उन्हे छोड जाना होगा !—जेलर साहब !

जेलर—क्या करूँ भैया, कोई उपाय नही है !

सर०—ना। उपाय नहीं है। मैने हत्या की है।

जेलर—तुमने हत्या नही की। मै कसम खाकर कह सकता हूँ भैया।

सर०—वे मेरे स्वामी आ रहे है। मेरे जरा हाथ खोल न दीजिए, जेलर साहब।— फिर अभी बाँध देना।

(जेलर हाथ खोलकर द्वार पर जाकर खड़ा होता है।)

[भगवानदासका प्रवेश।]

सर०—आओ, मैंने एकबार आखिरी भेंटके लिए तुमको बुलाया था—चरणोंकी रज दो। (चरणोंकी रज मस्तकमें लगाना) जन्मभरके लिए जाती हूँ। आज्ञा दो।

भग०—सरस्वती ! तुमने यह क्यो किया ?

सर०—(हँसकर) क्या काम ?

भग०—झूठ कहकर व्यर्थ ही हत्याका अपराध अपने सिर ले लिया ! क्यो ले लिया !

सर०—जानते नहीं हो क्यो ?

भग०—इस नराधमको बचानेके लिए ? मेरा यह निन्दित कलुषित जीवन जगतके किस उपकारमे लगेगा सरस्वती ?

सर०—जगतके उपकारके लिए मैने यह काम नही किया, अपने उपकारके लिए किया है।

भग०—तुम्हारा क्या उपकार हुआ इसमे ?

सर०—सुख मिला। गलेमे फॉसी लगाली थी। लेकिन इस फाँसीके समान उस फॉसीमे सुख न होता। यह एक कर्त्तव्य करके मै मरती हूँ।

भग०—प्राण देकर सुख !

सर०—बडा सुख है ! मरते सभी है। कोई डूबकर मरता है, कोई जलकर मरता है, कोई सॉपके काटनेसे मरता है, और बहुतसे लोग रोगमे कष्ट भोगकर मरते हैं। मरना तो होगा ही। दो दिन पहले या दो दिन पीछे। भाग भाग कर मरनेकी अपेक्षा हँसते हँसते मृत्युके गले लग जाना क्या अधिक सुखकी बात नही है !

भग०— लेकिन ससारके भोग छोडकर सदाके लिए यहाँसे चले जाना—मुझे बड़ा डर मालूम होता है—बहुत डर लगता है।

सर०—इतना डर लगता है, इसीमे तो मृत्युकी जय है। और अगर डरूँ नहीं !—बस मै मृत्युजयिनी हो गई। यह क्या कम लाभकी बात है ?

भग०—मरनेसे क्या तुम सचमुच नहीं डरती हो ?

मर०—ना ! (छाती फुलाकर) मैंने दादाजीसे सुना है कि जब युद्धका बाजा बज उठता है तब सिपाही स्थिर नहीं रह सकते; नाचते हुए तरवारों और तोपोंकी बाढ पर आगे बढने लगते हैं । मैंने आज कर्त्तव्यके डंकेका गंभीर आह्वान सुना है । उसीको सुनकर मैं सिर ऊंचाकर, निःशंकचित्तसे, विजयगर्वके साथ मरने चली हूं ।

भग०—क्या, कहाँ चली हो ?

मर०—यह नही जानती । यदि सब इसी जन्ममें समाप्त हो जाता है—यदि परलोक नहीं है तब तो कुछ दुःख ही नहीं है । परजन्ममे मैं ही अगर नही रहूंगी तो दुःखका अनुभव कौन करेगा ।—

भग०—और अगर परलोक हो ?

मर०—तो वह इस लोककी अपेक्षा बुरा नही हो सकता । इसी जन्मकी तरह वह जन्म भी सुख-दुःखसे गढा हुआ होगा । खास कर

क्या पागलका प्रलाप है ! यह क्या मदोन्मत्त ब्रह्माण्डपतिका अट्टहास है ! इसका एक महान्से भी महान् परिणाम अवश्य ही है !—ना स्वामी, मरनेसे मै बिलकुल नहीं डरती—बस मुझे आज्ञा दो ।

भग०—सरस्वती ! उससे पहले मुझे क्षमा किये जाओ ।

सर०—किस लिए ?

भग०—मैने तुमको गालियाँ दी है, मारा है, और अन्तको मै तुम्हारे फाँसी पर चढनेका कारण हुआ हूँ ।

सर०—(हँसकर) अच्छा, लेकिन अब अपनेको सुधारनेकी चेष्टा करो । तुम्हारे ही भलेके लिए कहती हूँ । नही तो जान रक्खो, तुम्हारा भविष्य बड़ा ही भीषण है !—अच्छा आज्ञा दो !

भग०—ईश्वर, और एक बार सुयोग दो, सरस्वतीको बचाओ, मुझे बचाओ । फिर घरगिरिस्ती सँभालूँ । मेरी माको लौटा दो, पूजा करूँ, स्त्रीको लौटा दो, उसे चाहूँ—आदर करूँ ।

सर०—दूसरे जन्ममे आकर देखूँगी कि तुम कितना चाहते और आदर करते हो ।—अच्छा जाओ । मै मरनेके लिए तैयार हूँ ।

(भगवानदास जाना चाहता है ।)

सर०—खडे रहो, और एक बार चरणोकी रज ले लूँ । (चरण [illegible] है ।) जाओ । (भगवानदासका प्रस्थान ।)

जेलर—मै जानता हूँ भैया, तुमने हत्या नहीं की !

सर०—यह बात नहीं है जेलर साहब ! ऐसा होता तो मुझको [illegible]सी क्यों होती !

जेलर—तुमसे पहले भी अनेक निरपराध लोग फाँसी पर लटक चुके हैं । मनुष्यका न्याय और क्या होगा भैया !—लो जान पड़ता है, वे तुम्हारे दादा आ रहे है ।

(प्रेमशंकर, दीनानाथ और भोलानाथका प्रवेश।)

भोला०—यहीं मेरी स्नेहकी पुतली है !

सर०—दादाजी ! दादाजी ! (छातीसे लगाकर रोती है।)

भोला०—बचा नहीं सका बेटी। स्वप्नमें भी मैंने कभी नहीं सोचा था कि मुझे बुढ़ापेमें अन्तको यह देखकर मरना होगा। इसीके लिए क्या इतने दिन जीता रहा हूँ ईश्वर ? जो मेरे प्राणका प्राण है, आत्माकी आत्मा है—उसी निरपराधिनीकी फाँसी देखनेके लिए क्या मैं जीता रहा हूँ !

दादाजी यह क्या आप कह रहे हैं ! मैंने हत्या की है।

भोला०—ना बेटी, तूने हत्या नहीं की। तू यह काम कर नहीं सकती ! मैं जानता हूँ, मेरा अन्तरात्मा जानता है, ईश्वर जानते हैं, तूने हत्या नहीं की। तू हत्या कर ही नहीं सकती। सतीके गर्भसे तेरा जन्म है, सती-सावित्रीके देशमें तेरा निवास है—तू हत्या करेगी। आज अगर वह दिन होता, न्यायका युग न होकर अगर आज अग्नि-परीक्षाका युग होता, तो मैं चिल्लाकर कह सकता हूँ कि तू सीता

दृष्टिमे क्या विप मिला रह सकता है ? इस मृदु हँसीके नीचे क्या छुरा छिपा रह सकता है ?—वे मूर्ख है, वे अन्धे है ।

सर०—जो होना था सो तो हो गया दादाजी ! अब विदा माँगती हूँ ।

भोला०—स्वामीको मृत्युसे बचानेके लिए तू आज यह फाँसीकी जयमाला गलेमे पहनती है । पृथ्वी आज अपना श्रेष्ठ रत्न स्वर्गको देकर धन्य होगी, शून्य होगी ! और मै—मै—ओः ! जला जा रहा हूँ, खाक हुआ जा रहा हूँ ।

जेलर—वह डाक्टरसाहब आ रहे है ।

सर०—तो अब मेरे जानेका समय हो गया । विदा कीजिए दादाजी ! दुःख न कीजिएगा । यह बिछड़ना एक दिन होता ही मुझे जो स्नेह आपने दिया था, उसे आज लौटाकर—सम्पूर्ण विश्वको बाँट दीजिए—पृथ्वी उससे सम्पत्तिशालिनी होगी । अपने अपार कर्त्तव्य-ज्ञान और स्नेहके साथ अतुल सहनशीलताको मिला दीजिए जगतको विस्मित कर दीजिए । विदा कीजिए दादाजी ! (प्रेमशंकर और दीनानाथको प्रमाण करना ।)

भोला०—विदा करूँ ! विदा करूँ ! नहीं ! मुझसे न हो सकेगा स्वर्ण ! मेरी बेटी ! (लिपट जाता है ।)

दीना०—आओ भोलानाथ ! (हाथ पकड़ता है ।)

भोला०—जाओ, मै नहीं जाऊँगा !

सर०—जाइए दादाजी—मेरे दादा (रो देती है ।) ले जाइए मामाजी ।

भोला०—मै नहीं जाऊँगा । मै भी तेरे साथ फाँसी पर लटकूँगा । मै नहीं जाऊँगा ।

सर०—खींचकर ले जाइए मामाजी ।

(दीनानाथ और प्रेमशंकर भोलानाथको जबर्दस्ती खींच ले जाते हैं । भोलानाथ "छोडो, मैं नहीं जाऊँगा" कहकर छुड़ानेकी चेष्टा करता करता बाहर चला जाता है। सरस्वती सिर झुकाकर रोने लगती है । फिर अपनेको सँभाल कर कहती है—)

सर०—ओ ! जाने दो, मैं तैयार हूँ जेलर साहब !

(पहरेदार लोग सरस्वतीका मुँह ढँक देते हैं; दोनों हाथ पीछे बाँध देते हैं । जेलर साहब उधर पीछे फिरकर सिर झुकाकर खड़े रहते हैं । कर्मचारी सरस्वतीको फाँसीके तख्ते पर चढ़ाता है ।)

[डाक्टर साहब और मजिस्ट्रेटका प्रवेश । दोनो घड़ी देखते हैं मजिस्ट्रेट मृत्युकी आज्ञा पढते हैं ।]

"बन्दिनी ! मुन्नी वेश्याकी हत्याके लिए तुमको फाँसीकी आज्ञा हुई है । मैं उसी आज्ञाका पालन करता हूँ। ईश्वर तुम्हें क्षमा करें । —जल्लाद ! अपना काम करो । "

(जल्लाद सरस्वतीके गलेमें फाँसीका फंदा डाल देता है ।)

मजि०—वो—(मुँह फेर कर) one two—

[तेजीसे मुन्नीका प्रवेश ।]

मुन्नी—खबरदार ! निरपराधिनीको फाँसी न देना । निरपराधिनीको फाँसी न देना । मुन्नीको किसीने नहीं मारा । मुन्नी जिन्दा है ।

मजि०—तुम कौन हो ?

मुन्नी—मैं ही वह मुन्नी हूँ ।

पाँचवाँ अङ्क ।

पहला दृश्य ।

स्थान—काशी, गंगातटपर एक कुटी ।

समय—रात, बदली घिरी हुई है।

[भोलानाथ और दीनानाथ ।]

भोला०—मेघ ! रक्तकी वर्षा करो । हवा ! भीमवेगसे गरज उठ। समुद्र ! जल उठ । पृथ्वी ! बीचसे चार फाँक होकर चिनगारियाँ बरसाती हुई चारों ओर छिटक पड़ । और मैं, महाशून्यमें अकेले खड़े होकर वही देखूँ ।—मनुष्य इतना अकृतज्ञ होता है !

दीना०—घर लौट चलो ।

भोला०—चलूँगा । ठहर जाओ । पहले प्रलयका पूर्ण होना देख लूँ । पहले चन्द्र-सूर्यका बुझना और पृथ्वीका श्यामशोभाका जलकर खाक होना देख लूँ । एक धूमकेतुकी टक्करसे महाज्वालामय विध्वंस हो जाय।

दीना०—तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है ।

भोला०—पृथ्वी अगर रहे, तो उसके ऊपरसे मनुष्यजाति लुप्त हो और उसके बदले केवल काले साँप ही घूमते फिरें ।—मनुष्य अकृतज्ञ है !

[illegible]०—चलो भोलानाथ—

भोला०—मनुष्य अगर रहे तो जो लोग चोर, लंपट, [illegible] हैं वही केवल बच रहें, और सब मरकर सड़-गलकर नष्ट हो जायँ ! तो फिर यह ब्रह्माण्ड बहुत अच्छी तरह चलेगा !—[illegible]

दीना०—रात कितनी है—जानते हो ?

भोला०—प्रेम, दया, स्नेह, पातिव्रत्य, वात्सल्य सब पृथ्वीपरसे उठा ले जाओ दयामय! प्रेममें केवल कामवासना रहे; बन्धुत्वके ऊपर ईर्ष्या राज्य करे; उपकारके सिरहाने कृतघ्नता पहरा दे! आहारमें विष रहे, शरीरमें व्याधि रहे, ऐश्वर्यमे अहंकार रहे, दारिद्र्यमे घृणा रहे!—खूब चलेगा।

दीना०—ना! तुम्हे जबर्दस्ती लेजाकर सुलाये बिना तुम न सोओगे! आओ।—(हाथ पकड़ता है।)

भोला०—छोड दो (हाथ छुड़ाकर) ओ! तुम हो!—तुम अब क्यों हो दीनानाथ! स्नेहमय बन्धु,—ब्रह्माण्डके अनियम, बीती हुई गरिमाके ध्वंसावशेष, तुम अकेले क्यों पीछे पड़े हो? सब गया। तुम भी जाओ। जिस पृथ्वी पर आज दाक्षिण्य भिक्षुक है, उपकार सताया जा रहा है, स्नेहको लात मारी जा रही है, वहां तुम क्यों हो? सब चोर और धोखेबाज है!—कैसी सृष्टि की थी मैया जगदम्बा! ले अपनी सृष्टि लौटा ले।—दीनानाथ!

दीना०—भोलानाथ!

पाँचवाँ अङ्क ।

पहला दृश्य ।

स्थान—काशी, गंगातटपर एक कुटी ।

समय—रात, बदली घिरी हुई है।

[भोलानाथ और दीनानाथ ।]

भोला०—मेघ ! रक्तकी वर्षा करो । हवा ! भीमवेगसे गरज उठ। समुद्र ! जल उठ । पृथ्वी ! बीचसे चार फाँक होकर चिनगारियाँ बरसाती हुई चारो ओर छिटक पड । और मै, महाशून्यमे अकेले खडे होकर वही देखूँ ।—मनुष्य इतना अकृतज्ञ होता है !

दीना०—घर लौट चलो।

भोला०—चलूँगा। ठहर जाओ । पहले प्रलयका पूर्ण होना देख लूँ । पहले चन्द्र-सूर्यका बुझना और पृथ्वीका श्यामशोभाका जलकर खाक होना देख लूँ । एक धूमकेतुकी टक्करसे महाज्वालामय विध्वंस हो जाय।

दीना०—तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है ।

भोला०—पृथ्वी अगर रहे, तो उसके ऊपरसे मनुष्यजाति लुप्त हो और उसके बदले केवल काले साँप ही घूमते फिरें ।—मनुष्य अकृतज्ञ है !

दीना०—चलो भोलानाथ—

भोला०—मनुष्य अगर रहे तो जो लोग चोर, लम्पट, [illegible] हों वे केवल बच रहें, और सब मरकर [illegible] यह ब्रह्माण्ड बहुत अच्छी तरह चलेगा ! — [illegible]

दीना०—रात कितनी है—जानते हो ?

भोला०—प्रेम, दया, स्नेह, पातिव्रत्य, वात्सल्य सब पृथ्वीपरसे उठा ले जाओ दयामय ! प्रेममे केवल कामवासना रहे; बन्धुत्वके ऊपर ईर्ष्या राज्य करे; उपकारके सिरहाने कृतघ्नता पहरा दे ! आहारमे विष रहे, शरीरमे व्याधि रहे, ऐश्वर्यमे अहकार रहे, दारिद्र्यमे घृणा रहे !—खूब चलेगा ।

दीना०—ना ! तुम्हे जबर्दस्ती लेजाकर सुलाये बिना तुम न सोओगे ! आओ ।—(हाथ पकड़ता है ।)

भोला०—छोड दो (हाथ छुड़ाकर) ओ ! तुम हो !—तुम अब क्यों हो दीनानाथ ! स्नेहमय बन्धु,—ब्रह्माण्डके अनियम, बीती हुई गरिमाके ध्वंसावशेष, तुम अकेले क्यों पीछे पड़े हो ? सब गया । तुम भी जाओ । जिस पृथ्वी पर आज दाक्षिण्य भिक्षुक है, उपकार सताया जा रहा है, स्नेहको लात मारी जा रही है, वहाँ तुम क्यो हो ! सब चोर और धोखेबाज है !—कैसी सृष्टि की थी मैया जगदम्बा ! ले अपनी सृष्टि लौटा ले ।—दीनानाथ !

दीना०—भोलानाथ !

भोला०—अब मैया कहकर मत पुकारो । वह सन्तानको विष खिलाती है; सन्तान मृत्युकी यन्त्रणासे छटपटाती है, और वह पाषाणी उसे देख तालियाँ बजाकर अट्टहास करती है । कहीं ऐसी भी मैया होती है ! उसे मत पुकारो ।

दीना०—तो फिर किसे पुकारूँ ?

भोला०—क्यो—क्यो !—मगर हाँ तुम्हारा कहना भी ठीक है । किसे पुकारूँगा ? मैयाको छोडकर और कहाँ जाऊँगा ? और है ही कौन ? माताके अत्याचारकी नालिश उसी माताके निकट है । और है कौन ? है कौन ?

दीना०—मैयाके विचारको मैया ही जाने। तुम कौन हो !

भोला०—ठीक कहा दीनानाथ। मैया कहकर पुकारो, मैया कह-कर पुकारो !—लेकिन सारे शब्दो, सारी प्रार्थनाओ, सारे संगीतों को दबाकर यह मनुष्यकी कृतघ्नताकी विजय-भेरी बज उठी है। सारा दुःख, यन्त्रणा और अन्तर्दाह इसी महादुःखमे डूब जाता है कि मनुष्य अकृतज्ञ है ! मेरे हृदयकी अधीश्वरी, स्नेहकी अभिष्ठात्री, सरस्वतीकी आत्महत्या भी इस दुःखके महावनमे खो जाती है।

दीना०—सरस्वतीकी आत्महत्या मत कहो भोलानाथ।

भोला०—तो क्या कहूँ !

दीना०—आत्मोत्सर्ग कहो। हिन्दुओके घर घर सावित्रीकी पूजा होती है ! लेकिन हिन्दुओके हर घरमे सावित्री सरीखी देवियां मौजूद हैं ! अपनी चीजका कोई ठीक ठीक आदर करना नहीं जानता।

भोला०—ठीक कहा दीनानाथ। सरस्वतीने स्वामीके प्राण बचा-नेको अपने प्राण दिये हैं। वह गई है—और जगतके लिए छोड़ गई है एक अखण्ड ज्योति। उसका मुझे दुःख नहीं है—लेकिन उसने गलेमे फांसी लगाई ! गलेमे फांसी लगाई ! मुझसे [illegible] गलेमे [illegible]भी लगाई।—और मैं वहीं खड़े खड़े देखता रहा।

दीना०—तुमने तो देखा नहीं।

भोला०—देखा है। उस गोरे गलेके चारों ओर उन लोगोंने [illegible] फंदा डाल दिया—उसे खींचकर फांसी दे दी !—[illegible] दीनानाथ ! कैसे उन्होंने उसको फांसी दी !

दीना०—कैसा विचित्र भ्रम है !—तुम स्मृति और कल्पना[illegible] अन्तरको नहीं समझते।

भोला०—वही रस्सी गलेमे पहन कर मेरी पोती झूल पड़ी, पृथ्वी काँप उठी, संसार अन्धकारसे छिप गया।

दीना०—फिर वही पागलपन शुरू हुआ।

भोला०—उस झूलते हुए शरीरमे सबेरेकी हवासे रूपकी लहर उठी। उसके बाद एकदम सब स्थिर होगया! स्नेहसे स-जल नीली दोनों आँखे आकाशकी ओर ताकती रह गई। श्वेत मोती ऐसे दाँतोके ऊपर, दोनो रंगीन लाल ओठोके ऊपर, फेन छागया। वह मक्खनसे मुलायम शरीर सूखी लकड़ीकी तरह सख्त और निश्चेष्ट हो गया। मै खड़े खडे वही देखा किया।—ओ हो हो हो!

दीना०—धैर्य न छोड़िए।—छिः।

भोला०—उसके बाद उसके शरीरसे निकला हुआ ज्योतिर्मय आत्मा स्वर्गको उड़ गया।—वह कैसा सुन्दर था!

दीना०—अब इन बातोको सोचनेसे क्या होगा?

भोला०—ना ना! मनुष्यकी कृतघ्नता आकर इस दृश्यको छा ले; बिजलीकी कड़कड़ाहट आकर इस रोनेको थँमा दे; रक्तपात उतर आकर इस सुन्दर ध्वंसको डुबा दे।

दीना०—एकदफा यह चिन्ता, और एकदफा वह चिन्ता—ऐसा करनेसे तुम मर जाओगे!

भोला०—ओ! हाँ! जीते रहना होगा। लूला-लँगड़ा अपाहिज हो जाऊँ, शूलकी पीड़ा हो, सिरके दर्दसे मत्थेसे आगकी चिनगारियाँ निकलें—तब भी जीते रहना होगा। हाँ हाँ जीते रहना होगा। जाओ दीनानाथ, जाकर सोओ। मैं भी सोने जाता हूँ—काली नागिनने बड़े जोरसे डस लिया है!—　　(प्रस्थान।)

दीना०—हायरे अभागे! इतना प्यार लेकर संसारमें क्यों आया था!

(प्रस्थान।)

दूसरा दृश्य।

स्थान—भोलानाथके घरका बरामदा।

समय—प्रातःकाल।

[प्रेमशंकर, कालीचरण और मुन्नी तीनों खड़े खड़े बाते कर रहे है।]

मुन्नी—बाबू भगवानदासने मुझ पर पिस्तौल दागा जरूर था लेकिन उससे मेरे सिर्फ कुछ हलकीसी चोट लगी थी। होश आनेपर देखा, उस जगह कोई नही है, मेरी पिस्तौल पैरोके पास पड़ी है। पिस्तौल उठाकर मै बाहर आई। देखा पड़ोसी लोग आकर जमा हो गये है; बाते कर रहे है। मै पिस्तौलको आँचलमे छिपाकर गाड़ी पर सवार हो गई। किसीने उधर लक्ष्य नही किया। घरमे जाकर सुना, बागमे एक हत्या हो गई है। रातभर नींद नहीं आई। पिछली रातों [illegible] घर छोड़कर भाग गई।

काली०—उसके बाद?

मुन्नी—उसके बाद एक अखबारमे पढ़ा कि मुन्नी वेश्याकी हत्याके अपराधमे सरस्वती नामकी स्त्रीको फाँसीका हुक्म हुआ है।

काली०—

The hungry judges soon the sentence sign
And wretches hang that jurymen may dine.

(इसके विचारक शीघ्र ही दण्डाज्ञा पर हस्ताक्षर कर देते है और [illegible] लटका दिये जाते है जिससे जूरी लोग जाकर [illegible] भोजन [illegible]।)

प्रेम०—तो भगवानदासने गोली चलाई थी?

मुन्नी—हाँ।

प्रेम०—यह बात तुमने उस समय अदालतमें क्यों नहीं [illegible]

मुन्नी—इसका कारण यह था कि वे चाहे जैसे हों, वहन सरस्वतीके स्वामी है ।

प्रेम०—इसीसे तुमने झूठ कहा कि तुम खुद आत्महत्या करनेवाली थीं ? और यह झूठ बात कहकर तुमने जुर्माना दिया .. ताज्जुब है !

काली०—Woman's at best a contradiction still.
(नारीका भी यथार्थ रूप कभी नहीं पहचाना जा सकता ।)

(प्रस्थान ।)

[उद्भ्रान्तभावसे वाल खोले हुए सरस्वतीका प्रवेश । उसके पीछे भवानीप्रसादका प्रवेश ।]

सर०—मामा, आपने दादाजीको छोड़ दिया ।

प्रेम०—मैं अगर यह जानता तो उनको छोड़ देता विटिया !—दूसरे दिन सवेरे उठ कर सुना, उनका और दीनानाथ, दोनोंका पता नहीं है ।

सर०—और भवानीदादा—तुमने भी—

भवानी०—उसी मैयाकी सब इच्छा है । (ऑसू पोछते पोछते शीघ्रतासे प्रस्थान ।)

सर०—उन्होंने निश्चय आत्महत्या कर ली होगी, मामा !

प्रेम०—ना विटिया, कुछ डर नहीं है । दीनानाथजी साथमे है । कुछ डर नहीं है ।—अब घरके भीतर चलो; अपनी मामीके पास जाओ । कुछ चिन्ता नहीं है ।

सर०—मेरे दादाजीको ला दीजिए ! मेरे दादाजीको ला दीजिए ।

प्रेम०—ला दूंगा !—वे चाहे जहाँ हो, खींचकर ला दूंगा । आओ घरके भीतर विटिया ।

मुन्नी—मेरे ही कारण इतनी विडम्बना हुई।

सर०—यह तुम क्या कह रही हो बहन! तुम्हीं मेरी रक्षा करने वाली हो। अगर दादाजीको मैं फिर देख पाऊं तो उसका श्रेय तुम्हींको है।—और अगर उन्हे न पाऊँगी—आत्महत्या करूगी।

मुन्नी—खबरदार बहन! इसकी अपेक्षा तो फॉसी पर चढना ही अच्छा था। आत्महत्या करनेका अधिकार किसीको नहीं है।—मुझे भी नहीं।

[व्यस्तभावसे भवानीप्रसादका फिर प्रवेश।]

भवानी०—बिटिया, दादाजीकी खबर मिल गई।

सर०—(आग्रहके साथ) कहॉ हैं वे?—कहाँ है वे?

भवानी०—काशीमे। यह लो दीनानाथका पत्र। अभी मिला है।

(प्रेमशंकरको पत्र देना।)

सर०—भवानी दादा! आज ही काशीकी यात्राका प्रबन्ध करो।—अभी—इसी दम।

प्रेम०—यह क्या बिटिया! तुमसे खडा तो हुआ नहीं जाता। आओ, घरके भीतर आओ!—यह क्या! (गिरती हुई सरस्वतीको पकड़ लेता है।)

सर०—तो दादाजी अभी जीते है! मामा! मामा! (छातीमें मुह ..र रोना।)

०—यह क्या करती हो बेटी!—आओ भीतर आओ।

.र०—अभी आती हूँ, मै आती हूँ दादाजी—

(प्रेमशकर और सरस्वतीका प्रस्थान।)

भवानी०—दयामयी मैया! तूने बिटियाको और दादाको दोनोको ही मौतके मुँहसे बचा लिया—मुझे फेर दिया। तो अब यह घर भी फेर दे मैया! और कुछ न चाहिए! लौट आकर दादा और बिटियाको लेकर

मैं इस घरमे पैर रख सकूँ भैया । जमींदारी जाय । बापदादोंका यह घर न छीन लेना ।

मुन्नी—क्यो ! यह घर अब किसका है ?

भवानी०—गौरीनाथका—इस समय तमस्सुककी रजिस्ट्री कराके दखल कर लेना ही बाकी है ।

मुन्नी—कैसा तमस्सुक ?

भवानी०—कोट कबाला ।—जुआचोरने उसके रुपये भी नहीं दिये ।—हॉ भैया, तुम्हारे राज्यमे इस तरह दिन-दोपहर डकैती होती है ।

मुन्नी०—तमस्सुककी रजिस्ट्री नहीं हुई ?

भवानी०—नहीं ।

मुन्नी—अगर वह तमस्सुक किसी तरह हाथ लग जाय, तब तो कुछ खटका नहीं है ?

भवानी०—जान पड़ता है—नहीं ।

मुन्नी—तो इसी हफ्तेमे वह तमस्सुक आपको मिल जायगा ।—आप निश्चिन्त रहिए ।

भवानी०—सो कैसे ?—किस तरह ?

मुन्नी—(मलिन हास्यके साथ) वेश्याके लिए कुछ असाध्य नहीं है ।

भवानी०—मुन्नी, मालूम नहीं, पूर्वजन्मके किस पापसे वेश्याके यहा तुम्हारा जन्म हुआ है ।

मुन्नी—वेश्याओं पर घृणा न कीजिए। वे बड़ी ही अभागिनी हैं। उन पर दया कीजिए। उनके घर नहीं है, परिवार नहीं है, बन्धु नहीं है । वे मानो अँधेरी रातमें बीहड़ राहसे चली जा रही है। दोनो ओर देखती जाती है—दरिद्रकी भी झोपड़ीमें दीपक जल रहा है; पति-पत्नीके प्रेमपूर्ण विमल हास्यका फुहारा छूट रहा है; बच्चे स्नेहके घोस-

लेमे सुखसे सो रहे है। वे यह सब देखती है, और जाडेकी हवाके तीक्ष्णतर दंशनका अनुभव करती है, भीतर ही भीतर मन मसोसकर रह जाती है। करोड़ो नक्षत्रोके बीचसे वे ही लक्ष्यहीन धूमकेतुकी तरह दौड़ी चली जा रही है;—चली जा रही है, क्योकि चले जानेके सिवा और कोई उपाय नहीं है। उनकी हँसी मसानकी चिताकी आग है—वह जितनी ही उज्ज्वल है, उतनी ही ज्वालामयी है। अन्तको: वह हँसी जब जल जलकर बुझती है, तब उसकी लंबी साँस मसानकी गर्म हवामे उठकर लीन हो जाती है। वे स्वयं ही अपनेको यथेष्टरूपसे घृणा करती है। उसके ऊपर आप लोग अपनी घृणाके बोझसे उनको और भी न दबावे। (सिर झुका लेती है।)

भवानी०—घृणा !—तुम अगर मेरी कन्या होती—

मुन्नी—(आग्रहके साथ) तो !

भवानी०—तो मै बिना किसी संकोचके तुमको अपने घरमे रख लेता !

मुन्नी—(आग्रहके साथ) घरमे रख लेते ?

भवानी०—हाँ। बेटा ! जबसे तुमको देखा है तबसे मेरे मनमे ... प्रति असीम अनुकंपा और करुणाके भावका प्रादुर्भाव हो रहा है— मालूम क्यों ! जान पडता है कि तुम वेश्या नहीं हो, मानो तुम ... दिन सचमुच ही मेरी कन्या थीं, मानो एक दिन—

मुन्नी—(काँपते हुए स्वरमे) और मै अगर सचमुच आपकी ... होऊँ !

भवानी०—सत्य ही मेरी कन्या हो ! यह क्या ! वेश्याके घरमे तुम्हारा जन्म हुआ है !

मुन्नी—मेरा जन्म वेश्याके घर नहीं हुआ है।

भवानी०—तो !

मुन्नी—आकाश ! मुख ढक ले ।—पृथ्वी ! कानोमे उँगली दे ले । आज वह वात प्रकट करूँगी ।—पिताजी ! (यह कह कर आगे वढ़ती है । भवानी प्रसाद चौककर पीछे हटते हैं ।)

मुन्नी—पिताजी !—यह वात मै इस जिन्दगीमे प्रकट नही करती ! लेकिन आपने ही मेरे साहसको वढा दिया ।—पिताजी मै सत्य ही आपकी कन्या—

भवानी०—सो क्या !—तुम मेरी कन्या हो ! मेरी कन्या तो मर गई थी ।

मुन्नी—वह अभागिनी मरी नहीं । (आगे वढ़कर) पिताजी !—(पीछे हटकर) ना । आपने सिर नीचा कर लिया है ! लज्जा, घृणा और क्रोधसे आपका चेहरा लाल हो रहा है ।—ना ना ना । मुझे घृणा कीजिए, त्याग कीजिए, पैरोसे रौदकर चले जाइए ।

भवानी०—कन्या मेरी !—तेरा मरना ही अच्छा था ।—(हाथ जोडकर ऊपरकी ओर देखकर) यह कैसी परीक्षामे डाला है मैया ! हृदयमे शक्ति दे मैया !

मुन्नी—नही पिताजी ! जो मैने कहा उसे भूल जाइए ! मै आपकी कन्या नही हूँ । मै आपकी कोई नहीं हूँ । मै काले सागरके ऊपर एक लहरकी तरह उठी थी—फिर उसी लहरकी तरह काले सागरमे गिर जाऊँगी ।

(भवानीप्रसाद मुन्नीकी ओर आगे वढकर कहते है—) मुन्नी !

मुन्नी—मै अस्पृश्य हूँ । मुझे छूना नहीं—छूना नहीं ।

(तेजीसे प्रस्थान ।)

(भवानीप्रसाद कुछ सोचकर फिर गाने लाता है—)

विहाग।

अभागी मोसों और न कोई।
पाय महानिधि अनायास ही हाय मूढ़ मैं खोई ॥ अभागी०॥
अन्धकार महँ राह न सूझत, मैया कहाँ गई तू।
बोलत नही, पुकारत कबको, ऐसी निठुर भई तू ॥ अभागी०॥
साथ छोड़ि सब सगे सिधारे, नेक दया नहिं आई।
तू न छोड़, मुख मोड़ न मोसो, तो सों आस लगाई ॥ अभागी०॥

[प्रेमशंकरका फिर प्रवेश।]

प्रेम०—मुन्नी चली गई ?

भवानी०—कौन !—ना—हाँ चली गई। (गाता है।)

प्रेम०—भवानीप्रसाद ! रो रहे हो ?

भवानी०—कहाँ ! नही तो। (गाते गाते प्रस्थान।)

प्रेम०—यह क्या ! ये लोग कौन है ?—गौरीनाथ ! किस लिए आया है !—

(गौरीनाथ, कालीचरण और पीछे पीछे क्रोधित कामताप्रसाद और शिवदयालका प्रवेश।)

गौरी०—भोलानाथकी कुछ खबर पाई है ?

प्रेम०—आपको यह खोज करनेकी क्या जरूरत है !

गौरी०—तमस्सुककी रजिस्ट्री करनी होगी। वह अगर लापता तो मुझे खुद ही जाकर तमस्सुककी रजिस्ट्री करा लानी होगी।—लोग गवाह हैं।

शिव०—कभी नहीं।

गौरी०—यह क्या !

कामता०—राहमें मैने कहा था, समझौता कर लो।

प्रेम०—समझौता काहेका ?

शिव०—समझौता करो ।

गौरी०—(तमस्सुक निकालकर) ये तुम्हारे दस्तखत है ।

शिव०—दस्तखत जाली है ।

गौरी०—तुम गवाह नहीं हो ?

शिव०—इसके गवाह नहीं है; गवाह और किसी बातके है ।—क्यो जी कामता !

गौरी०—यह तुम्हारा काम है कालीचरण !

काली०—सभव है । गौरीनाथ ! मै इतने दिनोतक केवल दर्शककी तरह निरपेक्ष भावसे दोनो ओरका रंगढंग देखता आता था । तुमने एक स्त्रीका खून किया है, यह जानकर भी मै उदासीन था । That only shows a philosophic mind, (जिससे केवल दार्शनिक प्रकृतिका परिचय मिलता है) लेकिन तुमने जब जुआचोरी करके एक सतीको फॉसीके तख्ते पर चढ़ा दिया, और ऋषितुल्य भोलानाथको देशान्तरमे भेज दिया, तब मेरी philosophic mind (दार्शनिक प्रकृति) मे भी एक भारी धक्का लग गया । बस अब नहीं ! सच बात प्रकट कर दो शिवदयाल । उसके बाद जो होना होगा, होगा । Do well and right and let the world sink (भली भॉति और उचित कार्य्य करो; ससारको डूबने दो—उसकी चिन्ता न करो)

गौरी०—(सूखा मुख लिये हुए) यह क्या !—अच्छा !—ऐ !—तो मै अब जाता हूँ प्रेमशकर !—आओ शिवदयाल ! आओ कामताप्रसाद ! कुछ करना है ।

(ठीक इस समय भवानीप्रसाद फिर प्रवेश करता है और बिना कुछ कहे सुने दौड़कर गौरीनाथकी गर्दन पकड़ लेता है ।)

प्रेमशंकर और काली०—क्या करते हो ! क्या करते हो !

भवानी०—निकल जा पाजी ! अभी तक यह घर दादाजीका है।—दूर हो ! (लात मारकर गौरीनाथको सीढ़ीके नीचे गिरा देता है। फिर हा झाड़कर प्रेमशंकरके मुखकी ओर देखकर पूछता है—) ठीक किया ?

प्रेम०—खूब किया। (प्रस्थान।)

भवानी०—(शिवदयाल और कामताकी ओर देखकर)अच्छा किया

दोनो—बहुत अच्छा किया।

शिव०—बस अब नहीं। आज प्रकट कर दूँगा !—उस पाजीक साथ अब नही। (दोनोंका प्रस्थान।

भवानी०—(कालीचरणसे) क्यो साहब ! ठीक किया ?

काली०—खासा किया ! Perhaps it was right to dis semble your love. But why did you kick him donwstair (यहाँ तक तो चाहे उचित मान लिया जाय कि तुमने अपना प्रे छिपाया। पर तुमने उसे सीढीके नीचे क्यों ढकेल दिया।)

(भवानीप्रसादका शातभावसे गाते गाते प्रस्थान।)

अभागी मोसों और न कोई।
पाय महानिधि अनायास ही हाय मूढ़ मैं खोई ॥अभागी०

तीसरा दृश्य।

स्थान—मुन्नीका घर।

समय—सन्ध्याकाल।

[मुन्नी अकेली है।]

मुन्नीका गीत।

ठुमरी—पंजाबी ठेका।

इस जगमें हूँ निपट अकेली, मुझसा दुखी न कोई।
मन-ही-मनमें सोचा करती, कभी न सुखसे सोई ॥ इस०

हूँ विदेशिनी, यहाँ तुम्हारे सिवा न और किसीको—
मैं जानूँ-पहचानूँ; कैसे बहलाऊँ फिर जीको॥ इस०॥
दिन बीते, ले खिन्न हृदय-तन शिथिल-दौड़कर आती—
पास तुम्हारे तुम्हें देखकर ठंडी होती छाती॥ इस०॥
घायल हृदय लिये मैं आती मैया पास तुम्हारे।
उस मुखमें मृदु हँसी देखनेका संयोग विचारे॥ इस०॥
सूनी, सूखी और अनादर भरी भूमि है सारी॥
तुम भी विमुख न होना, करना घृणा न मुझसे भारी॥ इस०॥

(गीत समाप्त करके मुन्नी खिड़कीके पास बैठकर और बाहरकी ओर देखकर कहती है—" ओः! कैसी काली घटा उठी है—आँधी आवेगी। " यों कहकर मुन्नी आकाशकी ओर ताकने लगती है।)

[दासीका प्रवेश।]

दासी—मालकिन!

(मुन्नी बहुत अधिक चौंककर गिरते गिरते सँभल जाती है।)

मुन्नी—(कठोर स्वरसे) क्यों?

दासी—बाबू गौरीनाथ आये हैं।

मुन्नी—गौरीनाथ! गौरीनाथ कौन?

दासी—तुमने उनसे आनेको कहा था?

मुन्नी—ओ! गौरीनाथ बाबू! समझ गई।—आज कौन दिन है!—ओ! हाँ कहा था!—ऊपर बुला लाओ।

(दासीका प्रस्थान।)

मुन्नी—किस लिए बुलाया है, और क्या करना होगा!—मैया! इसमें अगर कुछ पाप हो, तो क्षमा करना।—यही मेरे जीवनका अन्तिम पाप है। तैयार हो लूँ। (आलमारीसे पिस्तौल निकालकर और उसे अच्छी तरह देखकर ठीक कर लेती है। फिर पिस्तौलको वस्त्रके भीतर छिपा लेती है और जल्दीसे वस्त्र ठीक कर लेती है।) अब मैं तैयार हूँ।—लो वह आ गया।

[दासीके साथ गौरीनाथका प्रवेश।]

मुन्नी—आइए। लछिया, बाहरसे दरवाजा बन्द कर दे।

(दासी बाहर चली जाती है।)

मुन्नी—बन्द कर दे। कुंडी चढा दे।

गौरी०—बाहरसे दरवाजा बंद !—क्यो !

मुन्नी—ओ !—भूल हो गई।—खैर जाने दो। (हँसकर) जरूरत पड़ने पर लछिया अभी खोल देगी।

गौरी०—आज कैसा सुन्दर ठाठ किया है तुमने। कैसी सुन्दरी देख पड़ रही हो।

मुन्नी—सुन्दरी देख पड़ रही हूँ !—अच्छा अब देखो ! (बिजलीका झाड़ जला देती है।)

गौरी०—ओः ! इतनी सुन्दरी हो तुम ! कैसा अद्भुत—कैसा सुन्दर—रूप है !—सुन्दरी !—(आगे बढता है।)

मुन्नी—ठहरिए।—अब भला देखिए ! (अँधेरा कर देती है) देख पड़ता है ?

गौरी०—कहाँ ? नही ! कहाँ हो तुम प्राणेश्वरी।

मुन्नी—यह देखो ! (एक हरे रंगकी रोशनी कर देती है)

(गौरीनाथने देखा, ज्योतिर्मयी मुन्नी गर्दन कुछ टेढी किये हुए खड़ी है। एड़ीतक बाल लटके है। उसके एक हाथमे कागज और दूसरे हाथमे पिस्तौल है।)

गौरी०—यह अब क्या है ?

[illegible]—(कागज दिखाकर) दस्तखत करो।

गौरी०—यह क्या है !

मुन्नी—आपके पुत्रके नाम पत्र है—आदमीके हाथ तमस्सुक भेज देनेके लिए इसमे लिखा है। पढो। पढकर दस्तखत करो।

गौरी०—(कागज-कलम लेकर, और पढकर) ओ !— तो मुझे दस्तखत करने होगे ?

मुन्नी—हाँ । दस्तखत करो ।

गौरी०—नही, कभी नही ।

मुन्नी—दस्तखत करो ।—(पिस्तौल दिखाती है ।)

गौरी०—कभी नहीं ।—क्या करोगी !

मुन्नी—दस्तखत करो । (पिस्तौलकी नली गौरीनाथके सामने करके) अभी करो—नही तो—

गौरी०—अच्छा । (पत्र पर दस्तखत करता है ।)

मुन्नी—(चिट्ठी लिफाफेमे रखते रखते) बड़े लायक और फर्मांबरदार हो !—लछिया ! लछिया !

[दासीका प्रवेश ।]

मुन्नी—यह लो ! (यह पत्र देना) जो जो जिस तरह करनेको कह दिया है वह वह उसी तरह करना ।—जाओ, दरवाजा फिर बंद कर दो ।

(दासी बाहर जाकर दरवाजा बंद कर देती है ।)

(मुन्नी फिर सब रोशनी कर देती है ।)

मुन्नी—(हँसकर) देखते हो बाबू गौरीनाथ, चालबाजीमे तुम्हारी बराबरी करनेवाला और भी एक आदमी है !

गौरी० —ओफ ! तुममे इतनी बडी शैतनत भरी है मुन्नी ?

मुन्नी—वेश्यासे बढकर शैतान और कौन इस दुनियामे है ?—जिसके स्वरमे छल है, हसनेमे छल है, चुम्बनमे छल है, गले लगनेमे छल है, जो अपने शरीरको वेचती है. आत्माको वेचती है, जीवनका सार रत्न जो प्यार है—उसे भी वेचती है; जो राजोके महलमे उल्लुओका बसेरा करा सकती है, ऋषियोकी तपस्याको मिट्टीमे मिला सकती है, एक बादशाहतको रसातलमे पहुंचा सकती है, जिसका जीवन ही एक बडा भारी

सजीव मिथ्यावाद है ।—इतना बडा शैतान और कौन है !—लेकिन मै वेश्याकी बेटी नही हूँ । मै विवाहित प्रेमका फूल हूँ । (स्वर काँपने लगता है) अगर यह पहलेसे जानती, तो किसी किसानकी स्त्री होकर पवित्र आनन्दमय दारिद्र्यके निर्मल सुखको भोग सकती ।—लेकिन तुमने मेरा सर्वनाश कर डाला ।

गौरी०—(विस्मयके साथ) मैने !

मुन्नी—हाँ आपने !—आप जानते है, मेरे पिता कौन है !—नही जानते ! जानते किस तरह ! उस समय वे परदेशमे थे। लेकिन इस समय आप उन्हे अच्छी तरह पहचानते है। अच्छा सुनिए, मेरे पिताका नाम भवानीप्रसाद है, जिनके घरको आपने मसान बना दिया है । मेरी माताका नाम हीरा है—जिसे कुलसे भ्रष्ट करके, जिसके पुराने विश्वासी बूढे नौकरको मारकर, अन्तको—एकटक क्या निहार रहे हो—उसकी भी हत्या की ।

गौरी०—कौन कहता है ?

मुन्नी०—प्रमाण है ।

गौरी०—यह क्या ! मुझे छोड दो मुन्नी ।

मुन्नी०—ठहरो, छोड़ती हूँ अभी ।

गौरी०—मैंने हत्या करनेका इरादा करके हत्या नहीं की ।

मुन्नी—यह कैफियत अदालतमें हाकिमके सामने देना । वह लो—

[द्वार खोल कर पुलिसके साथ भवानीप्रसाद, शिवदयाल और कामताप्रसादका प्रवेश ।]

मुन्नी—यह लो ! दारोगा साहब ! मैं इस गौरीनाथको अपनी माता हीराके हत्याके अपराधमें अभियुक्त करती हूँ । गवाह ये लोग हैं—

दारोगा०—बाँध लो—

(सिपाही गौरीनाथको पकड़कर बाँधते है ।)

मुन्नी—और पिताजी ! आपकी कन्या आपके सामने ही अपने पापका प्रायश्चित्त करती है । तो बस—(अपनी ठोढीके तले पिस्तौल लगाकर)—पिताजी, बस आज्ञा दीजिए ।

(ठीक इसी समय एकाएक घोर वज्र-नाद होता है । मुन्नी काँप उठती है । उसके हाथसे पिस्तौल गिर पड़ती है और वह बेहोश होकर गिर जाती है ।)

भवानी०—मैया कालीने मेरी कन्याको बचा लिया है । (मुन्नीका सिर गोदमे लेकर) मेरी बदनसीब बेटी ! मैंने मैयाके निकट प्रार्थना की है । उन्होंने तुझे अपने चरणोमे स्थान दिया है ।—उठ अभागिनी ।

मुन्नी—(क्षीण स्वरसे) पिताजी !

भवानी०—बेटी !

चौथा दृश्य ।

स्थान—भोलानाथके सोनेका कमरा ।

समय—रात्रि ।

[भोलानाथ एक कटार हाथमे लिये प्रवेश करते है ।]

भोला०—ना, मै यहीं पर अन्त कर दूँगा । अब नहीं सहा जाता । लेकिन—आत्महत्या !—मैया दुर्गा ! मेरे सब शरीरमे सुइयो चुभा-चुभाकर मारोगी, और अगर वह मुझे असह्य हो—तो चट पाप हो गया । अगर यही बात है, तो मनुष्यको दानवकी शक्ति क्यो नहीं दी ? इस क्षुद्र शरीरके बीच एक स्नेहका समुद्र क्यो भर दिया था राक्षसी । —किन्तु जीवनके अन्तिम अङ्कमे एक महापाप करके मरूँगा ।

(कटारीको टेबिलके ऊपर रखता है और आप टेबिलके पास बैठता है)

ना—इसकी जरूरत नहीं है । (उठकर टहलने लगता है) ओः ! अब

नही सहा जाता। तिल तिल करके——यह भी तो मर ही रहा हू !——इससे बढकर——और क्या पातक हो सकता है !——भगवती, मुझे तुमने यह जीवन दिया है——यह मेरी सम्पत्ति है। मै इसे रक्खू, या मिटा दूॅ, इसमे तुम्हारा क्या ! करूॅगा——आत्महत्या करूॅगा। (टेबिलके पास जाकर कटार उठाता है, उसे हथेलीमे गडाता है) ना, जरूरत नही है। (फिर कटारको रखकर, टेबिल पर सिर रखकर सोचने लगता है। उसके बाद सहसा जैसे चौंक उठता है) यह क्या ! कौन मुझे उसी पुरातन परिचित स्वरमे पुकार रहा है ! मृत्युके उस पारसे तुम मुझे पुकार रही हो बेटी !——वह फिर सुन पडा ! दूर है——नही पास ही है ! और भी ऊॅचे, और भी मनको मस्त कर देनेवाले स्वरमे पुकार रही है। तो यह आता हूॅ बेटी। (कटार उठाता है)——कहाॅ गई ! फिर सब सन्नाटा होगया। (खिडकीमे कान लगाकर) कहाॅ !——रातको सन्नाटा छाया हुआ है ! कोई भी नहीं जागता। अकेला मै जाग रहा हू। कोई भी नही देखता। देखता है केवल यह पूनोका चाॅद,——स्थिर होकर देख रहा है। यह चन्द्रमाके पास कौन है !——सरस्वती है क्या !——वह मुझे हाथ उठा-

भोला०—कौन है तू मायाविनी !

सर०—मै आपकी पोती सरस्वती हूँ ।

भोला०—तू तो मर गई है । उ ! मुझे लेने आई है ?

सर०—नही, मै मरी नही । आपको छोड़कर क्या कही मै जा सकती हूँ दादाजी !

भोला०—तू मरी नही ! तूने गलेमे फाँसीका फंदा डाल लिया था—

सर०—ना दादाजी !

भोला०—तो क्या यह सब भ्रम है !—अब तक तू थी कहाँ निठुर !

सर०—मगर यह खून !—दादाजी ! यह क्या !

भोला०—मै जाता हूँ बेटी—

सर०—कहाँ दादाजी ?

भोला०—उस पार । अच्छा जाता हूँ—सरस्वती—बेटी ! (सरस्वतीके गलेसे लिपटकर मृत्यु ।)

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—ऊमर मैदान ।

समय—तीसरा पहर ।

[भगवानदास और मुन्नी ।]

भग०—दूर हटकर खडी होओ । तुम्हारी साँसमे नरककुण्डकी दुर्गंध है, तुम्हारे ओठोमे काली नागिनका जहर है, तुम्हारे स्पर्शमे भूसीकी आगकी ज्वाला है ।—पास न आओ । हटकर खडी होओ ।

मुन्नी—क्यों, मैने तुम्हारा क्या बिगाडा है ?

भग०—नहीं कुछ भी नहीं बिगाड़ा। 'अगियाबैताल' के समान रूपकी ज्योति दिखाकर मुझे घोर अन्धकारमे ला पटका, तूफानमे बीच गंगामे छोड़कर, 'हाल' छोड़कर, मुझे डुबा मारा, मुझे विश्व-भरका बुरा, संसारभरकी दृष्टिमे घृणित, कुत्ता सा बनाकर छोड़ दिया, मुझे कायर, मिथ्यावादी, धोखेबाज, जुआचोर, नीच पशुसे भी अधम कर डाला। और क्या करोगी!

मुन्नी—सब दोष हम लोगोका ही है। हम पाप, मरी, सर्वनाश सब कुछ है—यह स्वीकार करती हूं। हम तो है ही, और जबतक मनुष्यजाति रहेगी, पृथ्वी रहेगी, सृष्टि रहेगी, तबतक हम है, और रहेगी। व्याधिके कीटाणुओंकी तरह, स्रोतके आवर्त्तकी तरह, किनारेपरके दलदलकी तरह, हम है, और रहेगी। लेकिन तुम लोग इस दूषित वायुमे क्यो घुसते हो? इस आवर्त्तमे क्यो आकर पड़ते हो? इस दल-दलमे क्यो पैर बढ़ाते हो?—क्या यह दोष भी हम लोगोका ही है।

भग०—ये बाते सुनानेके लिए ही क्या तुम यहां आई हो?

मुन्नी—नहीं, मै तुम्हे तुम्हारी सहधर्मिणीके पास ले जानेके लिए आई हूं।

भग०—उसे तो फांसी हो गई, मेरे लिए—

मुन्नी—फांसी हो गई है, लेकिन उसे नहीं—

भग०—फिर किसे?

मुन्नी—गौरीनाथको (दांत पीसकर) वही—नहीं, भैया मुझको ... मिली है, अब फिर क्यों!—उस सतीको फांसी नहीं हुई, मृत्यु अवश्य हुई है।

भग०—यह क्या।

मुन्नी—दादाजीकी मृत्युके दूसरे ही दिन उस सतीकी मृत्यु हो गई।

भग०—कैसे ?

मुन्नी—यह नही जानती कि कैसे। कोई डाक्टर-वैद्य उस रोगको पहचान नहीं सका। मै मरतेसमय उसके पास ही थी। तेल चुक जाने पर जैसे दीपक धीरे धीरे बुझ जाता है, वैसे ही उस सतीके जीवनदीपको बुझते मैने देखा है। उस दृश्यको मै कभी नही भूलूँगी। मैने कहा—"वहन, जानती हो, तुम कहाँ जाती हो?" सतीने ऊपरको उँगली उठाकर कहा—"उस पार—दादाजीके पास।" मैने पूछा—"तुम्हारी इस सव संपत्तिका क्या होगा?" देवीने हँसकर अपने मामाकी तरफ देखकर कहा—"मामा, गरीवोको बाँट देना जैसे कि दादाजी बाँटा करते थे।" उसके वाद मेरी ओर देखकर कहा—"वहन—उनसे मुलाकात हो तो कहना कि मै अन्तिम श्वास तक उनके कल्याणकी कामना करके मरी हूँ।" इतना ही कहकर उसकी स्थिर आँखे स्वर्गकी ओर ताकती रह गई।

भग०—तो फिर तुमने जो कहा कि तुम मुझे मेरी स्त्रीके पास ले जानेको आई हो।—मेरी स्त्री तो स्वर्गमे है!

मुन्नी—मै तुम्हे उसी स्वर्गकी राहमे ले जाना चाहती हूँ।

भग०—तुम! मुझे स्वर्गकी राहमे ले जाओगी! तुम वेश्या—

मुन्नी—तुम तो वेश्यासे भी अधम हो। सतीके गर्भसे तुम्हारा जन्म हुआ, सत्संगमे तुम रहे, तुमने क्या किया? तुम्हे नरकमे भी स्थान नहीं है। वेश्याके घरमे पलकर, वेश्याके कुलधर्ममे दीक्षित होकर फिर भी, उस अन्धकारके गढेमेसे, मै अपनी शक्तिके वलसे एक पर्वतका वोझा ठेलकर ऊपर उठी हूँ! और तुम—जाने दो। मै तुम्हे स्वर्गकी राहसे दूर ले गई थी, आज मै ही तुम्हे उस स्वर्गकी राहमे ले

जाऊँगी। यद्यपि मैं वेश्या हूं—लेकिन आज वह शक्ति मुझमें है। (गर्वके साथ सिर ऊँचा करके खड़ी होती है।)

भग०—(देखकर स्तम्भितभावसे) यह क्या!—नहीं नहीं—तुम तो वेश्या नहीं हो! वेश्या तो उस तरह गर्दन टेढ़ी और सिर ऊँचा करके खड़ी नहीं होती। वेश्या तो इस तरह उज्ज्वल स्नेह-करुण मृदु हँसी नहीं हँसती। वेश्या तो इस तरह स-जल झुके हुए नेत्रोंमें असीम अनुकम्पाके साथ नहीं देखती। तुम तो वेश्या नहीं हो।—कौन हो तुम!—कौन हो तुम!

मुन्नी—मैं नारी हूं!—मैयाके प्रसादसे मेरा कलङ्क धोगया है। मैंने आज मैयाको पाया है।

भग०—(आग्रहके साथ) कहाँ पाया!—कहाँ पाया! मैं तो पृथ्वी भरमें मैयाको ही खोजता फिरता हूँ! एक दिन पागलकी तरह एक संन्यासीके पैरों पर गिरकर मैंने कहा—“मेरी मैया कहाँ है?” उन्होंने कहा—“ढूँढो, माताके दर्शन पाओगे।” तुमने पाया है? कहाँ है मैया! कहाँ है मैया!

मुन्नी—देखोगे, आओ। (हाथ पकड़कर भगवानदासको ले जाती है।)

छठा दृश्य।

स्थान—श्मशान।

समय—सन्ध्या।

[भगवानदास और मुन्नी।]

भग०—कहाँ! मैया कहाँ है!

मुन्नी—इसी जगह मैया है।

भग०—(अत्यन्त विस्मयसे)—यहाँ!—यह तो श्मशान है!

मुन्नी—इससे अच्छी जगह और कौन है ! वह देखो, पतितपावनी नदी अपने उद्दाम उच्छ्वाससे दोनो किनारोको प्लावित करती हुई वेगसे वहीं चली जा रही है । वह देखो, नदीके उस पार लाल रंग धारण किये हुए सूर्य अस्त हो रहे है । वह देखो, जीभकी तरह लपलपाती हुई चिता जल रही है । वह देखो कितने ही लोग मुर्दोंको कन्धो पर लादे आ रहे है, लाशोको उतार रहे है, जला रहे है । मिट्टीका शरीर धकधक करके जला जा रहा है, और वे एकटक वहीं देख रहे है । उसके बाद सदाके लिए पार्थिव सम्बन्ध तोड़कर शून्य घरको लौटे जा रहे है !—कैसा सुन्दर दृश्य है !

भग०—(विस्मयसे) सुन्दर है !

मुन्नी—अत्यन्त सुन्दर है ! जीवनका दीपक बुझ गया है; वेदना-की धड़कन थम गई है, स्नेहका मोह जल गया है, काले बादलके ऊपर बिजली चमक रही है; जन्मके ऊपर मृत्यु गरज रही है !—इसीसे मेरी मैया श्मशानचारिणी है ।

भग०—कहा है मैया !

मुन्नी—जरा उस पार देखो !—देखो !—क्या देखते हो ?

भग०—लाल रंगका सूर्य अस्त हो रहा है ।

मुन्नी—वहाँ पर नहीं । जीवनके उस पार देखो—कुछ देख पाते हो ?

भग०—नहीं—

मुन्नी—मैयाको ?

भग०—कहाँ है मैया !—

मुन्नी—जरा जीसे मैया कहकर पुकारो ! देखो, देख पाते हो कि नहीं ! पुकारो !

भग०—मैया ! मैया !

मुन्नी०—नहीं देख पाते ?—मैं तो देख रही हूँ। (घुटने टेककर और हाथ जोड़कर) विश्वव्यापिनी विवसना उन्मादिनी काली कराली मैया मेरी! वह कैसी मूर्ति है! दोनों ऊपर उठी हुई भुजायें आकाश भेदकर ऊपर चली गई, मस्तकके चारों ओर करोड़ों चन्द्र सूर्य-ग्रह तारागण नृत्य कर रहे हैं; कमरसे लिपटी हुई पृथ्वी दुग्धपान कर रही है; पैरों पर रसातल मूर्छित भावसे पड़ा हुआ है!—वह देखो, मैया अपनी मुट्ठीसे संहार और सृष्टिका आविर्भाव कर रही है, उसकी जिह्वामें हुंकार और अभय-वाणीका संगीत ध्वनित हो रहा है, उसके हृदयमें जन्म और मृत्यु स्पन्दित हो रहे हैं, उसके सामने स्वर्ग, पीछे नरक—दो महासमुद्रोंकी तरह पड़े हुए हैं। उसकी छातीके ऊपर जगतके सब पुण्यात्मा सो रहे हैं। वह देखो तुम्हारे दादाजी हैं, वह देखो तुम्हारी स्त्री है, वह देखो तुम्हारी माता है—जगन्माताकी छातीके ऊपर—वह 'उस पार'।

यवनिका पतन।

पाषाणी ।

(अहल्या देवी ।)

स्वर्गीय कविश्रेष्ठ द्विजेन्द्रलाल रायकी
वंगला गीति-नाटिकाका अनुवाद ।

हि
प्रतिद्ध
रही है । अ.
सब ग्रन्थ
जो ग्राहक ब

१-२	स्वाधीनता	२)	२१	अहिंसा पिशाच शत्रुको	
३	प्रतिभा (उप०)	१।)	२२	मेवाड़-पतन सकती है ।	
४	फूलोंका गुच्छा (गल्पें)	॥-)	२३	शाहजहाँ और	॥।=)
५	आँखकी किरकिरी (उप०)	१॥।=)	२४	मानव-जीवन	१।=)
			२५	उस पार (नाटक)	१=)
६	चौबेका चिट्ठा	॥।)	२६	ताराबाई ,,	१)
७	मितव्ययता	॥।≡)	२७	देश-दर्शन	२॥)
८	स्वदेश (निबन्ध)	॥=)	२८	हृदयकी परख (उप०)	॥।=)
९	चरित्रगठन और मनोबल	≡)	२९	नव-निधि (गल्पें)	॥।=)
१०	आत्मोद्धार (जीवनी)	१)	३०	नूरजहाँ (नाटक)	१)
११	शान्तिकुटीर	॥।=)	३१	आयर्लैण्डका इतिहास	१॥।=)
१२	सफलता	॥।)	३२	शिक्षा (निबन्ध)	॥-)
१३	अन्नपूर्णाका मन्दिर (उप०)	१)	३३	भीष्म (नाटक)	१=)
१४	स्वावलम्बन	१॥)	३४	काबूर (चरित)	१)
१५	उपवास-चिकित्सा	॥।)	३५	चन्द्रगुप्त (नाटक)	१)
१६	सूमके घर धूम (प्रहसन)	।)	३६	सीता ,,	॥-)
१७	दुर्गादास (नाटक)	१)	३७	छाया-दर्शन	१।)
१८	बंकिम-निबन्धावली	॥।=)	३८	राजा और प्रजा	१)
१९	छत्रसाल (उप०)	१॥)	३९	गोबर गणेश-संहिता	॥-)
२०	प्रायश्चित्त (नाटक)	।)	४०	साम्यवाद	२॥)
			४१	पुष्प-लता	१।)

मुन्नी०—नहीं देख पाते ?—मै तो देख रही हूँ। (घुटने टेककर और हाथ जोड़कर) विश्वव्यापिनी विवसना उन्मादिनी काली करालो मैया मेरी ! वह कैसी मूर्ति है ! दोनो ऊपर उठी हुई भुजायें आकाश भेदकर ऊपर चली गई, मस्तकके चारो ओर करोडो चन्द्र सूर्य-ग्रह तारागण नृत्य कर रहे है; कमरसे लिपटी हुई पृथ्वी दुग्धपान कर रही है; पैरो पर रसातल मूर्छित भावसे पडा हुआ है !—वह देखो, मैया अपनी मुट्ठीसे संहार और

अपनी मुट्ठीसे संहार और	।।।)	दुग्ध-चिकित्सा	
जिह्वामे हुंकार और ...	।।।)	सुगम चिकित्सा ...	
हृदयमे जन्म और उपाय ...	।।)	लन्दनके पत्र ...	
नरक—है ...	।-)	व्याहीनहू (स्त्रीशिक्षा) ने स्वर्ग ...	
ठोक पीटकर वैद्यराज ...	।-)	अंजना-पवनंजय (...) ...	
मणिभद्र (उपन्यास) ...	।।=)	श्रमण नारद ..	
हिन्दीजैनसाहित्यका इतिहास	।=)	सदाचारी बालक .	माता
...	।।।)	दियातले अंधेरा	

पाषाणी।

(अहल्या देवी।)

स्वर्गीय कविश्रेष्ठ द्विजेन्द्रलाल रायकी
वंगला गीति-नाटिकाका अनुवाद।

[गौतम—शत्रुको दुःख देना धर्म नहीं है । प्रतिहिंसा पिशाच शत्रुको
दमन कर सकती है, विनाश कर सकती है, भस्म कर सकती है।
किन्तु क्षमा शत्रुको मित्र करती है, निरीह करती है और
देवता बना देती है। दुःख देना नरकका धर्म है,
प्रतिहिंसा पृथिवीका धर्म है और क्षमा
स्वर्गका धर्म है।—]

अनुवादकर्त्ता—
श्रीयुक्त पण्डित रूपनारायण पाण्डेय।

प्रकाशक—
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, वम्बई।

वैशाख १९७७ वि०।
प्रथमावृत्ति।] अप्रैल १९२०। [मूल्य वारह आने।
जिल्दसहितका १≈)

प्रकाशक—नाथूराम प्रेमी, प्रो०
हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय
हीराबाग, बम्बई.

*   *

प्रिंटर—मणिलाल इच्छाराम देसाई,
प्रो० "गुजराती" प्रिंटिंग प्रेस, फोर्ट,
सासून बिल्डिंग नं० ८ बम्बई.

निवेदन।
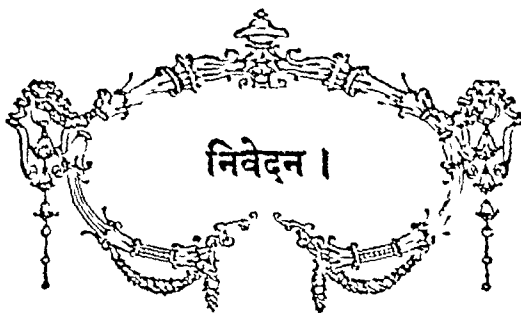
स्वर्गीय कविवर द्विजेन्द्रलाल रायका यह तेरहवाँ नाटक प्रकाशित किया जा रहा है। हमें विश्वास है कि हिन्दी-ससारमें द्विजेन्द्र बाबूके अन्य नाटकोंके समान इसका भी खूब आदर होगा।

यह उनके पद्य-नाटकका अनुवाद है। हम चाहते थे कि मूलके समान अनुवाद भी पद्यमें ही कराया जाय; परन्तु अभी तक हिन्दीमें 'ब्लैंक वर्स' का प्रचार न होनेसे और प्रचलित पद्य-रचनामें नाटक सुन्दर न दिखनेसे गद्यानुवाद पर ही सन्तोष करना पड़ा।

मूल नाटक विक्रम सवत् १९५७ के आश्विनमें प्रकाशित हुआ था। अर्थात् यह द्विजेन्द्र बाबूकी शुरू शुरूकी रचना है; फिर भी शब्द-सम्पत्ति, रचना-कौशल और चरित्र-चित्रणमें अनिन्द्य-सुन्दर है। इसे पढकर बगालके सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी स्वर्गीय क्षीरोदचन्द्र राय चौधरी मुग्ध हो गये थे। उन्होंने इसकी प्रशसा करते हुए लिखा था—"आज अँधेरी गुफामें एक अपूर्व सुन्दर और महान् छविका दर्शन किया। * * महर्षि गौतमका चित्र गेटे और शेक्सपिअरकी निन्दाका विषय नहीं है।" सुकवि श्रीयुत् शशाङ्कमोहन सेन बी० ए०, बी०एल० ने अपने 'बगवाणी' नामक ग्रन्थमें लिखा है—"सब ओरसे विचार करने पर, हम 'पाषाणी' को वंगभाषाका सर्वोत्कृष्ट नाटक कह सकते है। हमारे इस कथनकी सत्यताको हृदयगम करनेके लिए पाषाणीकी चरित्र-सृष्टि, घटनाओंका सन्निवेश, भाषा-प्रयोग और नाटकीय कथानकपर अच्छी तरह विचार करना चाहिए। अब तक बगलाके किसी भी नाटकमें ये समस्त गुण एकत्रित नहीं देखे गये।" द्विजेन्द्रबाबूके जीवन-चरितके लेखक श्रीयुक्त नव-

कृष्ण घोषकी राय है कि "पाषाणी कुछ दोषों और त्रुटियोंके रहते हुए भी प्रशंसनीय नाटक है। यह संसारकी चाहे जिस भाषामें लिखा जाता, उसके साहित्यके शृंगारकी एक चीज होता।" बंगालके श्रेष्ठ समालोचक रायबहादुर पण्डित राजेन्द्र चन्द्र शास्त्रीके शब्दोंमें "पाषाणी नाट्य-साहित्यमें अद्वितीय" है।

इस नाटकमें अहल्याका चरित्र इस रूपमें चित्रित किया गया है कि वह अपनी इच्छासे, जान बूझकर, व्यभिचारिणी बनी थी। परन्तु पौराणिक कथाके अनुसार अहल्याने इन्द्रको भ्रमवश गौतम समझ लिया था और इस कारण उसे पतित होना पड़ा था। बहुतसे पुराणमतानुयायी लेखकों और समालोचकोंको यह बात बहुत खटकी थी और इस कारण उन्होंने लेखक पर खूब ही वाग्बाणोंकी वर्षा की थी। आश्चर्य नहीं जो हमारे हिन्दी पाठकोंमेंसे भी कुछ लोग इस बातसे चिढ़ें, परन्तु हमारी समझमें इसमें चिढ़नेकी कोई बात नहीं है। उन्हें वाल्मीकि रामायणमें अहल्याकी कथाको पढ़ लेना चाहिए। उससे उनका समाधान अवश्य हो जायगा। द्विजेन्द्रबाबूने वाल्मीकि रामायणका ही अनुसरण किया है।

महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—"दुर्बुद्धि अहल्याने मुनिका वेष बनानेवाले इन्द्रको जानकर भी, रतिके लोभसे, उस बातको अंगीकार कर इन्द्रका मनोरथ पूरा किया। इसके बाद अहल्याने कहा, हे सुरश्रेष्ठ! यहाँसे शीघ्र चले जाओ और मुझे तथा अपनेको (गौतमसे) बचाओ। इन्द्रने हँसकर कहा, हे सुन्दरि! मैं प्रसन्न हुआ और अब शीघ्र जाता हूँ।"

—आदिकाण्ड, सर्ग ४८।

रामायणके इस अवतरणको पढ़नेसे यह कहनेके लिए जगह नहीं रहती है कि पौराणिक चरित्रों पर श्रद्धा न होनेके कारण, अहल्याके चरित्रको मान [illegible] गया है और न यही सिद्ध किया जा सकता है कि आदि कवि [illegible] [illegible] अहल्याके चरित्र-गुणमें कुछ घटी बढ़ी है।

फिर भी यह मानना पड़ेगा कि इस नाटकका अधिकांश कल्पना-प्रसूत है और छोटेसे कथानक पर एक सर्वांगपूर्ण नाटककी रचना करनेमें ऐसा होना अनिवार्य है। नाट्यकलाकी दृष्टिसे यह कुछ अनुचित भी नहीं है। प्राचीन और अर्वाचीन, सभी श्रेष्ठ कवि इस मार्गका अनुसरण करते आये हैं।

परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि कवि कल्पनाओंकी तरंगमें मूल कथानकको सर्वथा छोड़कर इससे बहुत दूर वह गया है। नहीं, वह न तो नाटक-पात्रोंके समयको भूला है, न उनके स्वभावों और विश्वासोंको भूला है और न कहीं कोई ऐसी बात कहनेको वैठा है जो वेजोड़ या असगत हो। यद्यपि वह ऋषि महर्षियों और देवी-देवताओंको अतिमानव या अमानवरूपमें जनताके सम्मुख उपस्थित नहीं करता है और न उस समयको ही सर्वथा पापदोषनिर्लिप्त–धोयापोंछा हुआ—समझता है, फिर भी उसे प्राचीन सभ्यता और समय पर यथेष्ट श्रद्धा है और जो सहृदय हैं वे इस बातको स्वीकार किये बिना न रहेंगे कि कविकी अमर लेखनीने महर्षि गौतमका जो उज्ज्वल महिमान्वित चरित्र अंकित किया है, वह अपूर्व और अद्वितीय है।

अहल्याका चरित्र ऐसी स्त्रियोंका चरित्र है जो युवावस्थाकी दुर्दम्य वासनाओंके फेरमें पड़कर चरित्रभ्रष्ट हो जाती हैं और अन्तमें दु.ख दुर्दशाओंमें पड़कर पश्चात्तापकी आगसे शुद्ध हुआ करती हैं। इस चरित्रको लिखते हुए, कविने, बेजोड़-विवाहका दुष्परिणाम भी इशारेसे बतला दिया है और अन्तमें गौतमकी क्षमा और उदारता दिखलानेके लिए शापका जिक्र न करके अहल्याको स्वय ही शोक और सतापसे नष्ट-चेतना 'पाषाणी' बतलाकर पुराणवर्णित अहल्याके शिला होनेका सुसंगत सामञ्जस्य कर दिया है।

चिरजीव और माधुरीका चरित्र सर्वथा कल्पित है। परन्तु इनकी कल्पना केवल हास्यरसकी अवतारणाके लिए नहीं की गई है। गौतमके चरित्रकी महिमा दिखलानेके लिए भी ये पात्र आवश्यक थे और यह बात अन्तमें कविने जनकके मुखसे कहला भी दी है—"वह चरित्र धन्य है जिसके स्पर्शके जादूसे वेश्या सती हो जाती है, दस्यु साधु बन जाता है, . . ।" वास्तवमें यह गौतमके ही चरित्रका प्रभाव था जो चिरंजीव जैसा हृदयहीन डाकू सुधरते सुधरते साधुप्रकृति बन गया और माधुरी जैसी वेश्या भी नि.स्वार्थ प्रेमकी महासाधनामें लग गई।

इन्द्रका चरित्र एक कामुक और लम्पट राजाके जैसा है और उसका दरबार भी तदनुरूप है। देव देवियोंके चरित्रका इस प्रकारसे मुक्त लेखनीके द्वारा चित्रित किया जाना, बहुतोंको अरुचिकर होगा; परन्तु एक भोली भाली ऋषि-पत्नीको भ्रष्ट कर

देनेवाले व्यक्तिके लिए, हमें यह आशा नहीं करनी चाहिए कि उसे कोई मार। कवि केवल देवता होनेके कारण, देवचरित्र भी बना देगा। कवि किसीको अद्भुत, नहीं मानते।

हम मूल लेखकके सुपुत्र श्रीयुक्त बाबू दिलीपकुमार राय महाशयके निर कृती है जिनकी उदारतापूर्ण आज्ञासे हम इन नाटकोंको हिन्दी-संसारके सामने उपस्थित करनेमें समर्थ हो सके है।

चैत्र शुक्ला ६,
सं० १९७७ वि०।

विनीत—
नाथूराम प्रेमी।

कुशीलव-गण।

पुरुष।

महर्षि—गौतम।

राजर्षि—जनक।

ब्रह्मर्षि—विश्वामित्र।

महाराज—दशरथ।

शतानन्द—गौतमका पुत्र।

चिरंजीव—गौतमका शिष्य।

इन्द्र, मदन, श्रीराम, लक्ष्मण, वशिष्ठ, वसन्त, अन्यान्य देवता, तापस-बालक, योगी, पुरवासी, पुरोहित, नौकर, दूत, आदि।

स्त्री।

अहल्या देवी—गौतमकी स्त्री।

शची—इन्द्रकी स्त्री।

रति—मदनकी स्त्री।

माधुरी—गौतमकी चेली और चिरजीवकी स्त्री।

अन्यान्य देवियाँ, तापस-बालिकायें, और पुरवासिनियाँ आदि।

पाषाणी ।

पहला अंक ।

पहला दृश्य ।

स्थान—राजर्षि जनकके महलकी ड्योढी ।

समय—प्रात काल ।

[जनक और विश्वामित्र ।]

विश्वा०—राजर्षिजनक ! क्या यही ब्राह्मणत्व है ? ब्राह्मण जाति इसी सम्पत्तिका इतना दर्प करती है ? मैने अवहेलाके साथ, इशारे मात्रसे, तुच्छ तप करके उसे प्राप्त किया है और वैसी ही अवहेलाके साथ, विना-क्षोभके, अनायास, राहकी कीचड़मे उसे मिट्टीके ढेलेकी तरह फेक दे सकता हूँ ।

जनक—विश्वामित्र ऋषि, अहंकार मत करो ! तुमने अगर ब्राह्मणत्व पाया है, तो वह ब्राह्मणजातिके विनयसे, अपने गुणसे नहीं ! और फिर भी यह याद रखना कि यद्यपि तुम ब्राह्मण हो चुके हो, मगर तुम्हारा आसन ब्राह्मणके बहुत नीचे है ।

विश्वा०—इसका प्रमाण ?

जनक—प्रमाण ? ऋषिवर, एकदिन नदीके उस पार गौतमके आश्रममे जाओ, वहाँ प्रमाण पाओगे !

विश्वा०—महर्षि गौतम ? जिनकी पत्नी अनिन्द्यसुन्दरी अहल्या है ! वे गृहस्थ हैं; उनका आसन मेरे ऊपर है ?

जनक—बहुत ऊपर है वन्धुवर ! इस बातको तुम अपनी आँखोंसे देखोगे ।

विश्वा०—सच ? अच्छी बात है ! देखूँगा ।

दूसरा दृश्य ।

स्थान—तपोवनके भीतर, वनकी गली ।

समय—प्रातःकाल ।

[तपस्वियोंके लड़के लड़की जा रहे हैं ।]

तपस्वियोंके लड़के लड़की गाते हैं.—

तपस्वी हम सब हैं वनके ।
रहें वनमें निर्मल मनके ॥
हरेभरे फलेफले, उपवन या कान्तार,
प्रान्तर, पर्वत आदिमें, सुखसे करें विहार ॥
देखते दृश्य तपोवनके ॥ रहें० ॥
प्रात कोकिला कुंजमें, कुहुकुहु रट लाय ।
डाल स्वर-सुधा कानमें हमें जगाती आय ॥
सुनें सरगम कोमल स्वनके ॥ रहें० ॥
दुपहरमें, तरुछाँहमें, बैठ सभी सानन्द ।
देखें सरितातटनिकट, उसकी गति अति मंद ॥
तुच्छ लगते सुख नंदनके ॥ रहें० ॥
संध्याको आकर प्रकृति, मधुर अधरमें हास ।
गीत सुनाती है अमर, करता है उल्लास ॥
सुनें मृदु गान पवन मनके ॥ रहें० ॥

[चिरजीवका प्रवेश ।]

चिरं०—यहाँ कौन कौन हैं ?

तपस्वियोंके लड़के लड़की—अजी हम लोग हैं ।

चिरं०—हुं, तुम तो बड़े भारी लोग हो ! जाओ—

(लड़के लड़की जाना चाहते हैं ।)

चिरं०—अच्छा ठहरो, तुम्हीं लोगोंसे पूछना होगा । अरे सुनो सुनो ।

लड़केलड़की—क्या ?

चिरं०—अरे बता सकते हो, मै क्या करूँ ? एक बड़े भारी सन्देहमें पड़ गया हूँ ।

१ लड़का—क्या सन्देह है महाशय ?

चिरं०—सन्देह है यह कि धमसे गिरता है, या गिरनेपर धमाका होता है ?

२ लड़का—सचमुच ही यह तो बड़े भारी सन्देहकी बात है ।

३ लड़का—तो यह आप महर्षिसे क्यों नहीं पूछते ?

चिरं०—पूछा था ।

३ लड़का—महर्षि क्या कहते हैं ?

चिरं०—महर्षि कुछ भी नहीं कहते ।

२ लड़का—और आप ?

चिरं०—मेरी यही राय है ।

४ लड़का—तो अब निर्णय कैसे होगा ?

चिरं०—यही तो गड़बड़ है । दर्शनशास्त्रके किसी भी मामलेका निर्णय नहीं होता । अरे तुम लोग दर्शनशास्त्रकी बातें सुनोगे ?

सब लड़के लड़की—कहिए, सुनें।

चिरंजीव गाता है।

वाह कैसी दुनिया मजेदार रंगीन।
बातें सभी इसकी कैसी हैं संगीन॥
दिनके पीछे रात, रातके पीछे दिनका सीन।
एकके ऊपर दो, तब बारह, एक और दो तीन॥
गर्मीमें है बेढब गर्मी, सर्दीमें है ठंडा।
बच्चा जनती बकरी देखो, मुर्गी देती अंडा॥
गऊ पुकारे "बॉ बॉ" भैया, 'हुआ हुआ हो' स्यार।
कॉंय कॉंय कॉं कौए करते, रहनाजी हुशियार॥
हाथीके ऊपर है हौदा, घोड़े पर है जीन।
धनियोंके सिर चिन्ता डाकिन, दीन बजावें बीन॥

२ लड़का—वाह, यह तो बड़ा भारी दर्शनशास्त्र देख पड़ता है!

चिरं०—क्यों! सब बातें ठीक हैं कि नहीं?

सब लड़के लड़की—बिल्कुल ठीक हैं, खूब ठीक हैं।

चिरं०—मैंने ही सोच सोचकर इनका आविष्कार किया है।

३ लड़का—सच? यह सब आपके ही आविष्कार हैं?

[विश्वामित्रका प्रवेश।]

विश्वा०—(चिरंजीवसे) यही क्या महर्षि गौतमका तपोवन है?

चिरं०—(विश्वामित्रको नीचेसे ऊपर तक देखकर) आपको, क्या [illegible] है?

विश्वा०—यही क्या महर्षिका आश्रम है?

चिरं०—नहीं तो क्या यह बनियेकी दुकान जान पड़ती है?

विश्वा०—[illegible]

चिरं०—और नहीं देनेसे क्या हानि है ?

विश्वा०—महर्षि कहाँ हैं ?

चिरं०—क्यों, उनकी खोज क्यों करते हो बाबा ? क्या कुछ प्रयोजन है ?

विश्वा०—हाँ, प्रयोजन है; वे इस समय आश्रममें हैं क्या ?

चिरं०—ना, वे बाघका शिकार करने गये हैं ।

विश्वा०—बड़े ढीठ देख पड़ते हो ! तुम कौन हो ?

चिरं०—मैं भी पूछता हूँ—तुम कौन हो ?

विश्वा०—मै महर्षि विश्वामित्र हूँ ।

चिरं०—मै चिरंजीव शर्मा अर्शी हूँ ।

विश्वा०—अर्शी कैसे ?

चिरं०—मुझे अर्शरोग (बवासीर) होगया है । इससे अधिक अभी कुछ नहीं हुआ । लेकिन अर्श इतना अधिक हो गया है कि महर्षि होनेमें अब अधिक देर नही है ।

विश्वा०—क्या ? मेरे साथ दिल्लगी करते हो ?

चिरं०—ना , दिल्लगी करनेका नाता अभीतक नहीं जुडा ।

विश्वा०—देखो ! मुझे देखते हो ?

चिरं०—देखता नही हूँ तो क्या; देख तो रहा ही हूँ ।

विश्वा०—क्या देख रहे हो ?

चिरं०—एकदम नव कार्तिकेय ! एकदम मदन-मोहन ! शरीर गोलाकार है ! मस्तक लंबाईकी अपेक्षा चौडा अधिक है ! चेहरेका रंग नदीके रंगसे टक्कर ले रहा है ।

विश्वा०–देखो ! मेरे मनमे धीरे धीरे क्रोध पैदा हो रहा है !

चिरं०–सो अपने बारेमें ऐसा बखान सुनकर क्रोध न पैदा होगा, तो क्या प्रेम पैदा होगा ?

विश्वा०–शाप देकर तुमको भस्म कर दूं क्या ?

चिरं०–घूसे मारकर तुमको रुईकी तरह धुनक डालूँ क्या ?

विश्वा०–ना, देखता हूँ–भस्म ही कर देना पडा । हर हर हर हर हर । (टहलने लगते हैं)

चिरं०–राम राम राम राम राम । (दूसरी ओर टहलने लगता हो)

विश्वा०–राम राम क्यों कर रहा है ?

चिरं०–सुना है, रामका नाम लेनेसे भूतका भय नहीं रहता ।

विश्वा०–मै क्या भूत उतार रहा हूँ ?

चिरं०–नहीं तो क्या व्याहके मंत्र पढ़ रहे हो ?

विश्वा०–तू बडा ही मूर्ख है ! जा –(गला पकडकर धक्का देते हैं)

चिरं०–अच्छा ! तो फिर आजा–देखूं । (विश्वामित्रको मारने लगता है)

[गौतमका प्रवेश ।]

गौतम–यह क्या चिरंजीव ? यह क्या कर रहे हो ?

०–(सकपकाकर) जी कुछ नहीं, इन महर्षिके साथ ज़रा ज़ोर ह था ।

–(विश्वामित्रसे) आप कौन हैं ?

॰वा०–मै महर्षि विश्वामित्र हूँ ।

चिरं०–सुन लिया गुरूजी ? महर्षिका ऐसा ही चेहरा होता है ? आजकल जिसे देखो वही महर्षि है !

विश्वा०—आप ही क्या गौतम ऋषि हैं ?

गौतम—इस दासहीका नाम गौतम है ।

चिरं०—ऐं—दासके क्या माने ?

गौतम—चिरंजीव ! इनके चरणोंकी रज मस्तकमे लगाओ; यह एक अत्यन्त तेजस्वी महर्षि हैं ।

चिरं०—ऐं !—इसीके लिए तो इनके साथ मेरा झगड़ा हो रहा था।

गौतम—यह अपने तेजके बलसे महर्षि हुए हैं। मै इनके आगे कीटानुकीट हूँ । तुमने इनके साथ बहुत ही बुरा व्यवहार किया है। घुटने-टेककर इनसे क्षमाकी भिक्षा माँगो ।

चिरं०—हाँ ? (विश्वामित्रकी पीठपर हाथ रखकर उन्हे सिरसे पैरतक देखता है और फिर स्नेहके भावसे दो तीन बार पीठ ठोंकता है) महाशय, कुछ बुरा न मानिएगा । (प्रस्थान)

गौतम—(विश्वामित्रसे) महर्षिजी ! यह मेरा शिष्य है । इसकी ढिठाई माफ़ कीजिएगा। इसका हाल मै फिर आपसे कहूँगा। इस समय दया करके मेरे आश्रममें पधारिए। नहीं जानता, किस पुण्यके बलसे आज सबेरे ही आप ऐसे महात्मा साधु पुरुषके दर्शन प्राप्त हुए।

विश्वा०—(स्वगत) इतनी नम्रता ? (प्रकट) चलिए ।

(दोनोंका प्रस्थान ।)

तीसरा दृश्य ।

स्थान—महर्षि गौतमका तपोवन ।

समय—दोपहर ।

[अहल्या अकेली है और टहल टहलकर गाती है ।]

विमल यह निदाघ-प्रात सुंदर सजि आयो ।
मधुर गीत मृदु सुवास, समधिक शोभा-विकास,
निखिल भुवन छाय लियो, मुग्ध मन बनायो ॥
चलत स्निग्ध मंद पवन, गूँजि रहे कुंज-भवन,
मस्त ह्वै पपीहा गान ललित यह सुनायो ॥
कनक-बरन सूर्य-किरन, जगमगात नील गगन,
शान्तरूप अति अनूप, जगतकहँ दिखायो ॥
गगनचरनमाहिं लीन, धरनी संतापहीन,
किरनकान्तिमगन मनों, रंक रतन पायो ॥
कैसी विथा यह विराट, क्यहि बिन है जिय उचाट,
काँपि काँपि उठत हृदय, जैसे घबरायो ॥

[माधुरीका प्रवेश ।]

अहल्या—इतनी देरमें आई ? धन्य है तुम्हारी पूजा ! दोपहर हो गई
.८ छाया हुआ है । माधुरी, चलो, बरगदके पेड़के तले ठंडकमें
बैठें ।

र—चलो देवी ।

९ फिर वही अप्रिय संबोधन ! मैं गुरुपत्नी और तुम चेली
५ हो; लेकिन तो भी मैं तुम्हें सदासे अपनी प्यारी सखी समझती
। आओ सखी, दो घड़ी एकान्तमें सन्नाटेमें बैठें; मैं तुमसे अपने

द्यकी बात कहूँगी । मेरे हृदयपात्रमे लबालब भरी होने पर भी रुँधी हुई तोकी व्यथा जैसे आप ही आप उमड़कर बाहर निकली जारही है । सीसे मैने तुम्हे बुलाया है । बैठो यहीं । (बैठती है) सुनो ।

माधुरी–(बैठकर) कहो प्यारी सखी ।

अहल्या–कहूँगी । ठहरो । मगर कहूँगी क्या, तुम तो सब जानती हो–

माधुरी–ना, मै कुछ नहीं जानती ।

अहल्या–अच्छा तो सुनो । याद है, मेरे ब्याहको हुए कितने दिन हुए ?

माधुरी–पॉच साल हुए होंगे ।

अहल्या–ठीक है । सखी, आज वही वैशाखकी पूनो है । तब मै दस वर्षकी बालिका थी, आज मै पन्द्रह वर्षकी युवती हूँ । आज वही दिन याद आता है ! उस समय मै ब्याहका मर्म नहीं समझी थी । एकान्तमें बैठकर मै सोचती थी कि इस पुण्य-परिणयसे मेरा जन्म सार्थक होगा । इतने दिनके बाद समझमें आया कि वह मेरा भ्रम था ।

माधुरी–भ्रम ! भ्रम था ! हे सौभाग्यशालिनी, तुम्हारा जन्म सार्थक नहीं हुआ ? जिसके ऐसे शिवके समान भोलानाथ धर्मात्मा स्वामी हैं उसका जन्म सार्थक नही है ?

अहल्या–ऑख उठाकर देखो–सखी, केवल इस रूप, इस माधुरीको देखो । मेरे गलेमें इस पुष्पमालाको देखो । यह इस वक्षःस्थलके स्पर्शसे लज्जाके मारे क्या अधोमुखी नहीं हो गई है ? क्या यह निश्चय नहीं है कि इन कमलनालसी भुजाओंकी शोभा केवल कल्पवृक्षलतासे ही होनी चाहिए ! देखो, इस गेरुए पहनावेने कितने आग्रहसे मुझे घेर रक्खा है !

माधुरी–देखती हूँ ।

अहल्या–तुम्हीं बताओ, यह रूप, यह जवानी, यह जीवन व्यर्थ नहीं है ?–यह जगत् मेरे लिए नीरस और स्वादहीन नही है ? कभी मै अपने मनमें सोचती हूँ कि क्वॉरेपनमें मै अबकी अपेक्षा सुखी थी। मैं अकेली आप ही अपनी साथिन थी। आप ही हार गूँथकर अपने गलेमें डालती थी; आप ही गीत गाती और आप ही आनन्दमें मगन होती थी। पर्वतोंके शिखरोंपर, मैदानोंमें, वनोंमें, सुहावने कुंजोंमें, झरनोंके हरेभरे किनारेके स्थानोंमे घूमती थी–ढेरके ढेर फूल चुनती फिरती थी। स्वच्छ सरोवरमें झॉककर अपनी देवी-मूर्ति देखती थी। वसन्तके आनेपर कूहू शब्द सुनते ही शरीर नहीं कॉप उठता था। मनके उल्लासके साथ चंपेकी किशोर कलियॉ उतारती थी; वे मानो मेरी उँगलियोंके स्पर्शसे फीकी पड़ जाती थी। प्रचण्ड धूपमें दोपहरके समय वनकी घनी छायामे घूमती और बड़े ही सुखसे वनके फल गिराकर खाती थी। पिता यह कहकर झिड़कते थे कि "घरमें इतना मधुरस रक्खा हुआ है, तू फल बटोरने कहॉ जाती है ?" बरसातकी जलकणपूर्ण स्निग्ध वायु मेरे काले केशोंको उड़ाती थी। भोलीभाली मै ऑखे फेरकर तिरछी नज़रसे वह दृश्य देखती थी। फिर ऊपर काले मेघको निहारती थी, वह केवल मटमैले रंगका देख पडता था।

·नका समय कैसा मधुर था ! (लंबी सॉस लेती है)

[illegible]–सखी, तुम यह क्या सोच रही हो ! महर्षि गौतमकी पत्नी [illegible] कारण तुम बड़ी ही भाग्यशालिनी हो। वही गौतम–जो धर्ममें, [illegible], विद्यामें, विभवमें अन्य मनुष्योंसे उतने ही ऊँचे है जितने कि [illegible] जुगनूओंसे ऊँचे हैं।

अहल्या–माधुरी, मै यह नहीं कह सकती कि वे ज्ञानी नहीं है,

वे शास्त्रविशारद नहीं हैं, या वे धार्मिक नहीं हैं ! किन्तु सखी, रमणीका हृदय उनका प्रार्थी नहीं हो सकता ! जाने दो, अब इस निष्फल विलापकी जरूरत नहीं है । तुम समझ नहीं सकोगी । अथवा तुम पछतावेसे ही क्या फल होगा ? (एक बहुत लंबी साँस छोड़ कर) नहीं जानती, आज हृदय क्यों इतना चंचल और कातर हो रहा है— क्यो आज मैंने तुमको अपने हृदयकी गूढ वेदना सुनानेके लिए बुलाया है ! रहने दो—देखो माधुरी, यह जूहीका हार सूख गया, नया हार गूँथ दो । इस दाहने हाथमें लता-वलय तनिक अच्छी तरह बाँध दो— खुल खुल जाता है ।

माधुरी—आओ. और पास आओ ! देवि, यह इतना साज-सिंगार क्यों करती हो ? प्रिय सखी, तुम विना सिगारके ही सबसे बढकर मनको मोह लेती हो, यह क्या तुम नहीं जानतीं ? कौन मूढ मनुष्य पद्म-पत्रमें कूचीसे रंग भरेगा ? बिजलीके प्रकाशको दीपककी रोशनीसे दिखाना किस बुद्धिमानको ठीक जँचेगा ?

अहल्या—(लंबी साँस छोडकर) हाय प्यारी सखी !

[शतानन्दका प्रवेश ।]

शता०—मा ! मा !

अहल्या—क्यों बेटा ?

शता०—दादाने मुझे मारा है ।—मौसी, दादा मुझे सदा मारा ही क्यों करते हैं ?

माधुरी—दादा बड़ा दुष्ट है । तुम उसके पास न जाना ।

अहल्या—जान पड़ता है, तूने भी कुछ ऐब किया होगा ?

शता०–ना। मैंने कहा–दादा, मिठाई खाओगे? बस, दादाने पकड़कसे मेरे गालपर थप्पड़ जमा दिया!

अहल्या–(हँसकर) तू खूब झूठ बोलना सीख गया है।

माधुरी–किस जगह पर मारा है? आ फूँक डाल दूँ।

शता०–इस जगह मारा है, इस जगह मारा है, इस जगह मारा है इस जगह मारा है। (इस तरह कहकर कई जगह दिखाता है।)

माधुरी–आ भैया हाथ फेर दूँ। (हाथ फेरती है।)

माधुरी गाती है।

आप हि आप मगन, जो चाहत, कहत फिरत, मन मोद बढ़ाए। आप० ॥
खिलखिल हँसत आप चलि गिरि उठि, चलो जात निज मौज मनाए।
वाके विहँसत मानिक बिखरत, आँसुन ज्यों मोती बरसाए ॥
नयनन निरखत बूँदन अँसुआ, रहो न जात बिना उर लाए।
प्यार दुलार करति याहीसों, धन्य भाग जिन बालक पाए ॥

शता०–मा, पिताजी कहाँ हैं?

अहल्या–मैं तो नहीं जानती। माधुरी, जानती हो, वे कहाँ हैं?

माधुरी–वह महर्षि विश्वामित्रको तपोवन दिखानेके लिए ले गये हैं।

शता०–ये विश्वामित्र कौन हैं मा?

अहल्या–वे भी तुम्हारे पिताकी तरह एक ऋषि हैं।

शता०–मगर उनके अंगोंमे इतने रोएँ क्यों हैं?

अहल्या–मै नहीं जानती। जा—

(शतानन्दका प्रस्थान।)

अहल्या–नहीं जानती माधुरी, किन पापोंसे तुमको ऐसा पशु स्वामी मिला है।

माधुरी—मै तुम्हारे पैरों पडती हूँ, उनकी निन्दा न करना; मै उनको प्यार करती हूँ।

अहल्या—सखी, जलाओ नहीं। तुम उसे प्यार करती हो? किस गुणके कारण प्यार करती हो? माधुरी, मै नहीं जानती, तुमने कैसे अपनी इच्छासे उसके साथ ब्याह करना चाहा था?

माधुरी—बहन, महर्षिकी आज्ञासे ऐसा हुआ है; अपनी इच्छासे नहीं। निष्काम साधना करनेके लिए विवाह-धर्मकी सृष्टि हुई है। महर्षिने कहा—"विवाह विलास नहीं है, प्रेम विषय-लालसा नहीं है। पति और पत्नी बाज़ारकी चीज़ नहीं हैं कि वे छॉट लिये जायँ, अथवा दाम देकर खरीदे जासके। विवाह एक कर्तव्य है। प्रेम एक निष्काम साधना है।"

अहल्या—झूठ, बिल्कुल झूठ बात है! हाय कैसी विडम्बना है—प्रेम साधनाकी चीज़ है? आज्ञा उसे नियमित कर सकती है? उसे क्या कुऍंके जलकी तरह खोदकर निकालना पडता है? नहीं माधुरी, प्रेम गेरूके झरनेकी तरह पत्थर तोडकर आप ही निकलता है!—(लंबी सॉंस छोडकर) चलो, घर चले। (दोनोंका प्रस्थान।)

चौथा दृश्य।

स्थान—गौतमके आश्रमका बाहरी भाग।

समय—दोपहर।

[विश्वामित्र और चिरजीव बैठे हैं।]

विश्वा०—तुम्हारी कहानी बड़ी ही विचित्र है।

चिरं०–बड़ी ही विचित्र है ! मैंने सोचा, महर्षि गौतम राजा जनकके महलसे आ रहे हैं, ज़रूर उनके हाथमें कुछ माल है। पीछे जब महर्षि अपने शरीर परसे उतारकर रेशमी दुपट्टा और राजर्षिसे उपहारमें पाय हुआ सोनेका कमंडलु, दोनों चीज़ें, बिना किसी संकोचके हँसते हँसते मुझ असहाय और धरतीपर पड़े हुए शत्रुको सौंप दीं, तब महर्षिजी, मैं तो विस्मयसे भौंचक्का सा रह गया !

विश्वा०–किसके प्रहारसे तुम धरती पर गिर पड़े थे ?

चिरं०–राजाके सिपाहीने मुझे मारा था। वह महर्षिके पीछे पी अज्ञात भावसे छिपा हुआ आ रहा था। ऋषिको भी अपने पीछे उसके आनेका हाल नहीं मालूम था, और मैंने भी पहले उधर कुछ लक्ष्य नहीं किया। जैसे ही ज़ोरसे मैंने महर्षिका गला पकडा, वैसे ही सिपाहीने खोप ड़ीपर लाठी जमा दी और मै वर्षामें पुरानी छतकी तरह अरराकर धरतीप गिर पड़ा ! जैसे घोड़ेकी पीठपर चाबुक-सवार बैठता है वैसे ही मेरी पीठप सिपाहीराम जम गये। अन्तको महर्षिने दया करके सिपाहीसे कहा— "सिपाही, छोड दे, चोरको छोड दे।" सिपाहीने छोड दिया। ऋषिने ुरन्त रेशमी दुपट्टा और सोनेका कमण्डलु मेरे हाथमें दे दिया; औ ––"दस्यु, मेरे पास और कुछ नहीं है, अगर होता तो वह भी मैं अवश्य तुझे दे डालता। सोना-चाँदी दुर्लभ है, लेकिन सुख अत्यन्त सुल और सहज है। वह सुख अगर तू चाहे, तो मैं बहुतसा दे सकता हूँ। भाई कभी मेरे आश्रममें आना।" विश्वामित्रजी, उस गद्गदस्वर और अपा करुणासे स्निग्ध–प्रेमसे आर्द्र–भापाने मेरे हृदय पर ऐसा असर डाला कि उसी दिन मै महर्षिका शिष्य हो गया। ऋपिने ऐसा मुझे निर्बोध बन

दिया है कि उसी दिनसे मै इस तपोवनमें, जाड़ेमें ठिठरे हुए नागकी तरह, निर्जीव निर्विष होकर पडा हुआ हूँ। तो भी कभी कभी असावधानता हो जानेपर पहलेकी पाप-प्रवृत्ति हृदयमें जग उठती है। जी चाहता है, एकान्तमें—निरालेमें गुप्तरूपसे महर्षिका गला घोटकर उन्हे यमपुरीका पाहुना बना दूँ; यद्यपि इसमे मुझे ज़रा भी लाभ नहीं, क्योंकि गौतम अत्यन्त दरिद्र हैं—उनके पास कुछ भी नहीं है।

विश्वा०—और वह युवती कौन है? उसका क्या नाम है?

चिरं०—उसका नाम माधुरी है। ऋषिवर, उसका हाल आपसे क्या कहूँ—बडा विचित्र है! सुनिएगा?

विश्वा०—कहो।

चिरं०—यह स्त्री मिथिलापुरीकी सबसे श्रेष्ठ वेश्या थी। एकदिन इस मायाविनीने न जाने किस कुघड़ीमें—किस कुचक्रीके चक्करमें पडकर—महर्षि गौतमको राहमें रोका और रूपकी छटा, मधुर कण्ठ, उज्ज्वल हास्य, सुगन्धित श्वास आदिसे उन्हें डिगाना चाहा। पर सब चेष्टा व्यर्थ हुई। उलटे ऋषिके ही चरित्रके चक्करमें पडकर माधुरीने वेश्यावृत्ति छोड दी। सजा हुआ महल, अमोल अलंकार और सैकड़ों-हज़ारों चाहनेवाले छोड़कर वह उसी घड़ीसे ऋषिकी चेली हो गई। अन्तको एकदिन माधुरीने, मुझ नीच, भयानक, वीभत्स आकारवाले डाकूको, न-जाने क्या मनमे समझकर, अपना पति बना लिया। महर्षिजी, उस दिन मै दिनभर लगातार ज़ोरसे ठहाका मार मारकर हँसा ही किया। मैने कहा—अच्छी जोड़ी मिली! चोरकी स्त्री वेश्या! महाशय, उसी दिनसे माधुरी मेरी पत्नी है, मै उसका पति हूँ।

विश्वा०—गौतमके ब्याहके पहलेकी यह घटना है ?

चिरं०—उससे बहुत पहलेकी है।—ऋषिवर, वह देखिए, गौतमजी अपनी स्त्रीके साथ इधर ही आरहे हैं।

विश्वा०—ठीक है।

[गौतम और अहल्याका प्रवेश।]

गौतम—महर्षिजी, चरणसेवा करने आया हूँ—आज्ञा कीजिए।

विश्वा०—गौतम, मुझे अब और कुछ न चाहिए। तुम्हारा यह आश्रम बड़ा ही निस्तब्ध, शान्त, पवित्र और सुन्दर है!—किन्तु एकदम निर्जन है। बन्धुवर, तुम्हे यहाँ सदा अच्छा लगता है ?

गौतम—लगता है। यह निर्जन आश्रम जन्मसे ही मेरे मनको भानेवाला है। मेरा जीवन इसमे ओतप्रोत है। महर्षि, तुम नहीं जानते, इसके हर वृक्ष, हर राह, हर शिलाखण्डमें कितनी बीतीहुई घटनाएँ अङ्कित हैं ?

विश्वा०—तुम्हे सुन्दर पुरी, महल, फाटक, रथ, हाथी, घोड़े, बाजार आदि क्या अच्छे नही लगते ?

गौतम—नहीं मित्र, उनकी अपेक्षा ये हरेभरे खेत, मैदान, मनोहर झरने और पक्षी बहुत अच्छे लगते हैं।

विश्वा०—(अहल्यासे) देवि, तुम्हे भी क्या यह वनवास ही पसंद है ?

अहल्या—स्वामीकी इच्छा ही स्त्रीकी सम्मति है।

विश्वा०—सच! मै तो कभी कभी आश्रमसे जाकर महलोंमे रहना पसंद करता हूँ। विचित्रताके विना जीवन बिल्कुल ही फीका लगता है।

गौतम–प्रभो, तुम्हारे सभी काम और बातें असाध्यकी साधना है। कभी बहुत दिनतक तुम तप किया करते हो, कभी लोगोंकी बस्तीमें जाकर उसी तपके बलसे पराया हित और उपकार करते फिरते हो। और मैं आत्मपर हूँ; सदा अपने सुखकी चिन्तामे पड़ा रहता हूँ। कहाँतक कहूँ बन्धुवर, मैंने तुमसे बहुत कुछ सीखा है। विश्वामित्रजी, तुम धन्य हो; और तुम्हारे तपकी महिमा भी धन्य है!

चिरं०–बेशक धन्य है! कौन जानता था कि घने रोमोंसे ढके हुए इस काले चमड़ेके नीचे इतने बड़े ऋषि छिपे हुए हैं!

विश्वा०–(गौतमसे) तुम बहुत ही गरीब हो?

गौतम–हाँ, बिल्कुल ही गरीब हूँ।

विश्वा०–राजा दशरथको जानते हो?

गौतम–नाम सुना है।

विश्वा०–उनके महलमे मेरा सदा आना-जाना होता है। मेरे साथ अयोध्यापुरीको चलो।

गौतम–क्यों?

विश्वा०–ढेरके ढेर रत्न तुम्हे दिला दूँगा।

गौतम–रत्न? रत्न लेकर क्या करूँगा?

विश्वा०–तुम बिल्कुल भोले और नासमझ हो! धन-रत्नसे अच्छे अच्छे स्वादके पकवान, तरह तरहकी मिठाइयाँ, अनमोल गहने, रमणीय बाग-बगीचे, महल, कमनीय वारांगना आदि ऐशआरामके सामान खरीदे जाते हैं।

गौतम–मै उन्हे नही चाहता। निर्जनमे साधारण परिश्रमसे मिले

हुए वनके कंद-मूल-फल खानेसे शरीर पुष्ट होता है । मृगाजिन वल्कल आदि जो कुछ मिलता है सो पहन लेता हूँ। अनुपमा सुकुमा पतिव्रता पत्नी अहल्या है। जीवनमें मुझे किसी वातकी कमी नहीं है मै धन-रत्नकी राशि लेकर क्या करूँगा ?

विश्वा०–(स्वगत) यह ब्राह्मण इतना निर्लोभ है ? अथवा अद् रूप और लावण्यवाली सुन्दरीने इसको अपना पति बनाया है, इसीसे य वाहरी संपत्तिकी ओरसे इतना उदासीन है ? सच है, जिसके घरमें ऐ भार्या है उसको किस वातकी कमी है ?

चिरं०–देखो, प्रभु-पत्नीकी ओर यह ऋषि कैसा ताक रहा है जान पडता है, जैसे अभी गुरुपत्नीको खा जायगा! मुँह ऐसा फैलाये है जैसे वेसनके लड्डूकी तरह उठाकर अहल्याको अपने बड़े भारी पेट गढ़ेमें रख लेगा !

विश्वा०–(अहल्यासे) देवी, तुम क्या अपने इस गोरे शरीरक स्वर्णके अलंकार, मणि-मोती आदिसे सजाना नहीं चाहती हो ? हीरे जड़ाऊ सोनेके कंगन पहननेको जी नहीं चाहता ? मत्थेपर रत्नक ...ी लगानेकी इच्छा नहीं होती ? पैरोंमें घुँघरूदार चाँदीके बिछुए हाथोंमें मणिजटित केयूर और गलेमें मोतीके हार पहननेको म नहीं चाहता ?

चिरं०–क्षमा करो ऋषिवर ! बस हो चुका । क्यों बेकार पति पत्नीके बीचमें कलहका बीज बो रहे हो ? पत्नीके आगे अप्राप्य अन मोल रत्नों और आभूषणोंकी यह लंबी सूची पेश करके तुम क्य करना चाहते हो ?

गौतम–चलो चलें वन्धुवर, आश्रमके भीतर पधारो। गर्म धूल उड़ने लगी, घाम कडा हो आया।

विश्वा०–हाँ महर्षि, चलो। (अहल्यासे) चलो देवी! अच्छी वात है। (स्वगत) इस पत्नीके वियोगको गौतम सह सकते हैं या नहीं, इसकी परीक्षा करनी होगी।

(गौतम अहल्या और विश्वामित्रका प्रस्थान।)

चिरं०–(पीछे जाते जाते) हूँ, भैया चिरंजीव, तुम विना बुलाये ही चलो।–इस काले चमड़ेके नीचे इतने वड़े ऋषि है?–आश्चर्य है!! अद्भुत है!!! (प्रस्थान।)

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान–तपोवनका किनारा।

समय–दोपहर।

[दो तापस-वालक खड़े हैं।]

१ ता० वा०–सुनता हूँ, यह विश्वामित्र ऋषि वड़े तेजस्वी हैं।

२ ता० वा०–कैसे?

१ ता० वा०–यह पहले एक क्षत्रिय राजा थे, तपोवलसे व्रह्मर्षिपद पागये हैं।

२ ता० वा०–रहने दो अपना व्रह्मर्षिपद। उन्हें देखकर मेरे मनमें तो रत्तीभर भी भक्तिभाव नही होता।

१ ता० वा०–हमारे मनमें उनकी भक्ति भले ही न हो, मगर मह-

पिजी तो उनके गुणोंपर मुग्ध हो रहे हैं ! सुनता हूँ, विश्वामित्रके तपोवलका हाल सुनकर महर्षि भी किसी दूरके स्थानपर तप करने जानेवाले हैं।

२ ता० वा०—सच ?

[अन्य एक तापस-बालकका प्रवेश ।]

३ ता० वा०—अजी, चिरंजीव वडा मज़ा कर रहा है !

२ ता० वा०—क्या ?

३ ता० वा०—न जानें क्या पीकर अंटसंट वक रहा है। वह लो, इधर ही आ रहा है ।

[चिरजीवका प्रवेश ।]

चिरं०—वाह वाह, विश्वामित्र ऋषिके पेटमें इतने गुण भरे पड़े हैं ! वाह वावा, कैसा वढ़िया सोमरस वनाया है ! हमारे महर्षि तो, वस, एकदम वज्रमूर्ख हैं !

१ ता० वा०—यह क्या कह रहे हो चिरंजीव ?

चिरं०—अरे भाई वज्रमूर्ख नहीं हैं तो और क्या हैं ! वावा विश्वा- ने अपने हाथसे ऐसा दिव्य सोमरस वनाकर दिया तो भी उन्होंने पिया ! अरे अगर सोमरस ही न पियोगे तो फिर महर्षि वनने- । क्या जरूरत थी ?—अरे ओरे, सुनो, मैं तो अव इन्ही विश्वा- का शिष्य हो जाऊँगा ।

२ ता० वा०—सच ? कहते क्या हो ?

चिरं०—हाँ—हो जाऊँगा ! मगर वात यही है कि विश्वामित्र ऋपि र्शनशास्त्र नहीं जानते । इस दर्शनशास्त्रपर मुझे वड़ा प्रेम है।

३ ता० वा०—जरूर !

चिरं०—अरे ओरे छोकरो, दर्शनशास्त्रकी एक बात सुनोगे ?

३ ता० बा०—सुनें !

चिरंजीव गाता है—

भूचर खेचर जलचर किन्नर, देव दैत्य गंधर्व निशाचर—
इंद्र चंद्र पावक सचराचर, ब्रह्मा सुरपति विष्णु महेश्वर—
पन्नग उरग तुरंग भुजग जग, विहग कुरंग पतंग वायुचर—
भूत प्रेत मातंग यक्षकुल, ब्रह्म दैत्य राक्षस पिशाचनर—
जो है जहाँ, कान सो ताने, सुनो गान यह महाभयंकर—
लेकिन इसके माने, जाने कौन, हुए क्या ? जाने ईश्वर—
चरखासा घूमे यह सब जग, मिले प्रमाण पिये मद सत्वर—
इसके लिए सभी क्यों सोचा करते ? चैन न पावें दमभर।

(अन्य एक तापस बालकका प्रवेश।)

४ ता० बा०—यह क्या चिरंजीव शर्मा, यह क्या कर रहे हो ?

१ ता० बा०—चिरंजीव शर्मा इस समय ज़रा मज़ेमें हैं।

२ ता० बा०—इनका अभी हाथ-पैर-मुँह मटकाना अगर कहीं तुम देखते !

३ ता० बा०—और गाना कैसा बढ़िया गाया !

चिरं०—तुम बडा गोलमाल और शोर करते हो। इधर देखो !

३ ता० बा०—क्या देखें महाशय ?

चिरं०—देखो—मै सशरीर स्वर्ग जा रहा हूँ। विश्वामित्र ऋषिने कहा—"यह सोमरस पीनेसे लोग सशरीर स्वर्ग जाते हैं—ज़रा सा पियोगे भैया चिरंजीव ?" मैने कहा—"कहाँ, दिखा दो, मगर विश्वामित्रजी, तुम हम अगर स्वर्ग जावें तो सशरीर न जाना ही अच्छा। राहमें इस शरीरका

बदल डालना ही अच्छा होगा। सशरीर न जानेमें लाभके सिवा हानि क्या है? यह चेहरा लेकर स्वर्ग जानेमें कुछ सुविधा होते नहीं देख पडती।" इतना कहकर ज़रा सा सोमरस पी गया। पीते ही बस क्या कहूँ भाई, चिपटी पृथ्वी गोल देख पडने लगी, आकाशने अट्टहास शुरू कर दिया, पातालपुरी परी बनकर नाचने लगी–और मै सशरीर स्वर्गको उड़ चला।

२ ता० वा०–जी! तब तो कहना चाहिए, मामला संगीन हो गया है।

चिरं०–संगीन नहीं भइया रंगीन कहो। बलिहारी सोमरसकी! देखते हो तुम लोग?

३ ता० वा०–क्या देखें महाशय?

चिरं०–(मद्यपात्र दिखाकर) कैसा रंग है!–कैसी साफ है!–कैसी लहलहाती हुई है! कैसा फेना है! वाहवाह! अरे तुम तनिक तनिक पियोगे?

१ ता० वा०–जी नहीं।

चिरं०–तनिक चखकर देखो न। इसमें कड़वा, तीखा, खट्टा, मीठा, वगैरह सभी रस हैं।

२ ता० वा०–नहीं महाशय!

चिरं०–अगर तुम लोग पीते तो बहुत अच्छा करते।

३ ता० वा०–नहीं।

४ ता० वा०–तुम्हीं इतना यह भी पीजाओ। देखें, क्या मज़ा दिखाती है।

चिरं०—हूँ! जान पडता है, तुम सब पाजी मन ही मन हँस रहे हो।

(तापस बालक हँसते हैं।)

चिरं०—ऐं ऐं—मुँहपर ही हँस रहे हो!

चिरंजीव गाता है—

स्वाँग समझते हो क्या मुझको? मुझसे बदमाशी ऐसी?
देख नया ढंग मेरा हँसते, हत्तेरी ऐसीतैसी!
क्या समझो, लड़खड़ा रहे है मेरे पैर?—तुम्हारा सिर!
झूठ बात है—कभी नहीं—सिरगया तुम्हारा ही है फिर!
मै तो अपनी इच्छाहीसे, नए ढंगसे फेकूँ पैर—
रंगविरंगी चाल निकाली—खड़े हुए बस देखो सैर!
क्या समझो तुम, मतवाला हो, अंटसंट मै बकता हूँ?
जानबूझकर ठीक न बोलूँ, मै लेक्चर दे सकता हूँ॥

(गाते गाते उग्रभाव धारण करता है।)

१ ता० वा०—मार डालेगा—
२ ता० वा०—खा लेगा—
३ ता० वा०—भागो भागो—
४ ता० वा०—अरे बाबारे—

चिरं०—इन बदमाशोंको नरकमें भेजूँगा। (फिर गाता है—)

"स्वांग समझते हो क्या मुझको? मुझसे बदमाशी ऐसी?
देख नया ढंग······························"

[माधुरीका प्रवेश।]

माधुरी—प्रभू, यह क्या कर रहे हो?

चिरं०—(हताशभावसे) जाः—नशा उड गया! सशरीर स्वर्ग जानेकी बात यों ही रह गई। तू इस समय आई क्यों?

माधुरी—क्या शराव पी ली है ?

चिरं०—शराव क्या री ? सोमरस—स्वयं विश्वामित्र ऋषिका तैयार किया हुआ ।

माधुरी—स्वयं विश्वकर्माके हाथकी तैयार की हुई होनेपर भी वह शराव ही है ।

चिरं०—अच्छा तो शराव ही सही—शराव ही सही ।

माधुरी—प्रभू, शराव पीना अच्छा नहीं । महर्षि गौतम उसे नहीं पीते ।

चिरं०—महर्षि गौतम विलकुल भण्ड, षण्ढ, लंठ मूर्ख है । यदि मै इस समय उसे पाऊँ तो दो हाथ जमाये विना न रहूँ ! लेकिन जव वह यहाँ नहीं है तव उसके वदले ले तेरी ही (प्रहार) पूजा कर दूँ । (मारता है)

माधुरी—नहीं वस करो, वस करो, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ ।

[विश्वामित्रका प्रवेश ।]

विश्वा०—चिरंजीव ! छि:, वड़ी लज्जाकी वात है !

चि०—क्या लज्जाकी वात है ?

विश्वा०—अपनी स्त्रीको मार रहे हो ?

चि०—अपनी स्त्रीको न मारूँ तो क्या पराई स्त्रीको मारूँगा ?

विश्वा०—स्त्रीके ऊपर हाथ चलाते हो ? छी-छी !

चिरं०—यह स्त्री नहीं है—मर्दका वावा है !

विश्वा०—क्यों ? तुम्हारी स्त्रीने क्या अपराध किया है ?

चिरं०—तुम्हारा क्या मतलव है ? तुम क्यों यह पूछताछ कर रहे हो ? देखो विश्वामित्र ऋषि, तुम चाहे ब्रह्मर्षि हो, और चाहे देवर्षि हो,

अगर इस तरह दालभातमें मूसलचंद बनकर, पति-पत्नीके बीचमें पड़कर, उनके उचित दाम्पत्य-कलहमें बाधा दोगे तो यह—देखते हो—

(एक टूटीहुई वृक्षकी शाखा उठाकर घुमाता है और साथ ही साथ हुमकता है ।)

[गौतमका प्रवेश ।]

गौतम—यह क्या है चिरंजीव ?

चिरं०—ऐं-ऐं—वही तो—

विश्वा०—चिरंजीव सोमरस पीकर ज़रा रंगमें आगया है ।

चिरं०—हॉ—सो—वह सोमरस विश्वामित्र ऋषिका ही बनाया हुआ था।

गौतम—माधुरी, तू रो रही है ।

विश्वा०—चिरंजीवने इसे बेतरह मारा है ।

चिरं०—मारा है ? तो उसमें किसका दोष है ? आपहीने तो कह सुनकर मुझे सोमरस पिलाया । मै किसी तरह नहीं पीता था, आप "चिरंजीव पियेगा ? चिरंजीव पियेगा ?" कहकर मेरे पीछे पड़ गये। मै कबतक अपने जीको काबूमें रखता ? आखिर यह शरीर रक्तमांसहीका तो है !

विश्वा०—मै परीक्षा कर रहा था कि तुममें मानसिक बल कितना है ?

चिरं०—क्यों ? क्या उसे जाने बिना आपको नींद नहीं पडती थी ?

गौतम—चिरंजीव, क़सम खाओ कि अब तुम कभी मदिरा नहीं पियोगे।

चिरं०—ऑय—खुद विश्वामित्र जब पीते हैं—

गौतम—महर्षि विश्वामित्रको जो सोहता है, सो तुम्हें नहीं सोह सकता । कूडा अग्निके शरीरको कलुषित नही करता, मगर पानी उससे गंदा हो जाता है । क़सम खाओ कि अब तुम यह काम नहीं करोगे।

चिरं०—ऐं—अच्छा—वही सही ।　　　(प्रस्थान ।)

गौतम–माधुरी, मै परदेस जाता हूँ। तुम अपनी गुरुपत्नीको देखना

माधुरी–मै प्राणपणसे उनकी सेवा करूँगी। आप कब लौटेंगे?

गौतम–इसका कुछ ठीक नहीं है। संभव है कि एक वर्षके बाद लौटूँ। मै अब तुम्हारी गुरुपत्नीसे बिदा होने जाता हूँ। (विश्वामित्रसे) बन्धुवर, तैयार होइए, मै शीघ्र आता हूँ।

(सबका प्रस्थान।)

छठा दृश्य।

स्थान—तपोवनका एक किनारा।

समय—प्रातःकाल।

अहल्या अकेली।

(गाती है।)

अंधकारमहँ कबहुँ कि हीरा पूरी दमक दिखावत है?
हाय बरफ पर फूल रँगीलो कबहुँ कि फूलन पावत है?
कहुँ गुनीको हाथ लगे बिन बीना बजत, रिझावत है?
प्रेम अनादर अवहेलासों सूखि, न सुख सरसावत है॥
मलयवायुके चले बिना कहुँ कोयल बोल सुनावत है?
प्रेम निराशा भय वियोगसों प्रेम मरन नहिं पावत है।
अवहेला यातना घृणासों मृत्यु प्रेमकी आवत है॥

[गौतमका प्रवेश।]

गौतम–अहल्या!

अहल्या–(चौंककर) कौन?–यह क्या प्रभू! इस वेपसे? यहाँ?

गौतम–प्यारी, मै तुमसे बिदा होने आया हूँ।

अह०—विदा होने?—हूँ—समझ गई। अच्छी बात है।—कहाँ जाते हो?

गौत०—बहुत दूर, परदेश।

अह०—क्यों?

गौत०—प्रियतमे, वहाँ तपस्या करूँगा।

अह०—तपस्या? किसकी—कैसी? क्या घरमें बैठकर तपस्या नहीं होती?

गौत०—गृहस्थाश्रममें हज़ारों बन्धन हैं, माया-मोह और नित्य संसारकी अनेक चिन्ताएँ घेरे रहती हैं। इसीसे, प्रिये, अकेले निर्जन दूरके स्थानमें—एकान्तमें—जहाँ मनुष्यका शब्द नहीं सुन पड़ता—सन्नाटेकी उस जगहमे तपस्या करूँगा।

अह०—जाओ।

गौत०—प्रिये, प्रसन्न मनसे विदा करो!

अह०—यह तो बताओ, मुझे किसके पास छोड़ जाओगे?

गौत०—सती स्त्रियाँ पतिकी याद मनमें रखकर रहती हैं।

अह०—प्रभू, केवल ध्यान करनेसे आकांक्षा नहीं मिटती। हाय, सरोवरका चित्रपट देखनेसे ही कहीं प्यास बुझती है! हायरी पुरुषोंकी ममताहीन जाति! कठिन पुरुष! नित्य वियोगमें, मिलनमें, हम तुम्हारी याद करेंगी, और तुम जब जी चाहेगा तब आओ-जाओगे—स्वाधीन तरंगकीतरह सहनशीलताके बलुहे किनारेपर टक्करें मारते हुए आतेजाते रहोगे! पास क्यों आते हो? रमणीके रूपका ही ध्यान करके दूर क्यों नहीं रह सकते? जब शरीर जीर्ण हो जाता है, बुढ़ापेकी अन्तिम दशा होती है, तब भी क्यों छोड़कर पल्लवित वृक्षकी डालीसे खिलती हुई फूलकी

कली उतार लेते हो? उसे नाचते, हँसते, माताका दुग्ध-रस पीकर बढ़ने दूरसे देखकर ही तुम लोग क्यों नहीं सुखी होते? तुम लोग बड़े ही स्वार्थपर हो!

गौत०–अहल्या, मै ब्राह्मण हूँ। क्या मै सदा प्रेयसीका आँच पकड़कर पड़ा रहूँ? अपने कर्तव्यको भूल जाऊँ?

अह०–(उठकर) अगर नहीं रहना था तो फिर ब्याह ही क्यों किय था? अपने इस शिथिल शीर्ण बुढापेके साथ मेरी जवानीको क्य बाँधा था? इस मुँहकी ओर आँख उठाकर देखो–यह नई उठती जवानी –यह उमड़ता हुआ रूप, यह अतृप्त आकांक्षा, यह उमंगसे भरा हृदय देखते हो?–क्यों नई सुकोमल फूली हुई पल्लवित श्यामलताको इ नीरस सूखे हुए ठूँठमें बाँधा था? (रोती है)

[चिरंजीवका प्रवेश।]

चिरं०–(स्वगत) ठीक वही देख पड़ता है जो सोचा था। मै जानत था कि वह बड़ेबड़े रोऍवाला भालू ऐसा ऋषि जरूर कोई आफत लावेगा (प्रकट) महर्षिजी, बाहर कुटीके द्वारपर विश्वामित्र ऋषि तैयार खड़े राह देख रहे हैं।

गौतम–तो प्यारी जाता हूँ।

अह०–प्रभू, तुम जाओ या रहो–अहल्याके लिए एक ही बात है। ... हृदयमें स्नेह नहीं है! तुम्हारे अधरमें सुधा नहीं है! तपस्याके शुष्क कर्तव्यके लिए ही तुम्हारा जीवन है। मेरा जीवन संभोग चाहता है। तुम्हारे जीवनका व्रत पुण्यका संचय है; मेरे जीवनका कार्य पुण्यका व्यय है। दोनोंकी गति दो ओर जुदीजुदी है। इस जीवनमें हम दोनों

कभी नहीं मिल सकेंगे। जाओ; तुम्हारे जानेसे हमारे जीवनका स्वाभाविक गंभीर विच्छेद कुछ बढ़ नहीं जायगा।

गौत०—(स्वगत) सच है! प्रिये, यह विच्छेद मिट नहीं सकता।

(प्रस्थान।)

अह०—इतना रूप, यह भरी जवानी!—क्या यह सब वृथा हुआ? अहल्या, तू इस स्त्रैण स्थविर मूढ़ गौतमको रोककर रख नहीं सकी!—धिक्कार है! वह दृढ़ भावसे पैर बढ़ाते चले गये? सूखी दृष्टिसे, मानो गहरी अनुकंपाके साथ, मेरी ओर ताककर चले गये? हाय रमणी! तू इस निष्फल दुर्बल रूपका घमंड मत कर। (प्रस्थान।)

सातवाँ दृश्य।

स्थान—नन्दनभवन।

समय—प्रातःकाल।

[अनुचरों सहित इन्द्र बैठे है।]

अप्सराएँ नाचती-गाती हैं।

हम आकर यों ही यहाँ, चली जाती हैं।
प्राकृतप्रकाशकी रंगत दिखलाती है॥
हम सब प्रकाशकी तरह दमक जाती हैं।
हम मधुर हँसीकी तरह चमक जाती हैं॥
हम कुसुमगंधकी तरह गमक जाती हैं।
हम मदविकारकी तरह झमक जाती हैं॥
हम सब तरंगकी तरह उमड़ आती हैं॥ हम आकर०॥
हम अरुण गगनमें स्वर्णकिरणसे चढ़ती।

आनंदमार्गमें विचर विचरकर बढ़र्ती ॥
हम संध्याको फिर उतर वहाँसे आतीं ।
बस रविकिरणोंके साथ अस्त हो जातीं ॥
हम स्निग्धकांतियुत शांतिगान गाती है ॥ हम आकर० ॥
हम शरदइंद्रधनुवर्ण दिखाकर छलतीं ।
हम ज्योत्स्नाकीसी अलस चालसे चलतीं ॥
हम हँसकर बसकर चित्त मदनमद ढालें ।
हम चपलाकीसी चमक निगाहे डालें ॥
हम आती है पर हाथ नहीं आती है ॥ हम आकर० ॥
हम श्यामलतामें शिशिरकणोंमें वनमे ।
हम इन्द्रधनुपमें नीलगगनमे घनमें ॥
हम गानतानमे कुसुमगंध अभिनवमे ।
हम चंद्रसूर्यकी किरणोंमें यों सबमें ॥
हम स्वप्न राज्यसे चली वहीं जाती है ॥ हम आकर० ॥

इन्द्र—ए छोकरे !

चन्द्र—देवराज !

इन्द्र—और एक प्याला अमृत दे !

(चन्द्रमा और एक पूर्ण पात्र देते हैं)

इन्द्र—पवन !

पवन—देवेन्द्र !

इन्द्र—अच्छा तुम तो स्वर्गलोक, मनुष्यलोक और पाताललोक-सब २ जाते हो ?

पवन—जी हाँ ।

इन्द्र—तुमसे एक बात पूछूँ, जवाब दे सकोगे ?

पवन—जी, अगर दे सकूँगा तो दूँगा ।

इन्द्र–अच्छा, बताओ–स्वर्गका सा राज्य, इन्द्रका सा राजा, प्राचीकी सी स्त्री, सुधाके ऐसा मद, कहीं देखा है या नहीं ?

पवन–जी, नहीं।

इन्द्र–तुमने तो चटसे कह डाला 'जी, नहीं'। अच्छी तरह सुन भी लिया है ?

पवन–सुना नहीं तो क्या यों ही जवाब दे दिया ?

इन्द्र–अच्छा, किसका सा क्या कहा, बताओ ?

पवन–(स्वगत) मुश्किलमें डाल दिया। (प्रकट)–यह–यही–स्वर्गकी सी नारी, सुधाका सा राजा, इन्द्रका सा राज्य और शचीका सा मद।

इन्द्र–दुर–तुम्हारी स्मरणशक्ति उतनी तेज़ नहीं जान पड़ती।

पवन–जी, नहीं तो।

इन्द्र–ना, तुम्हारी मात्रा ज़रा बढ़ गई है, अब न पीना (सुधाका पात्र हटा देता है)–वरुण !

वरुण–वज्रपाणि !

इन्द्र–इस प्रश्नका उत्तर दे सकते हो ?

वरुण–नही प्रभू !

इन्द्र–तुमने तो प्रश्न पूरा सुना भी नहीं, पहले ही कंधा रख दिया। अग्निदेव !

अग्नि–देवराज !

इन्द्र–एक प्रश्न करूं ?

अग्नि–मुझसे अगर न कीजिए तो बड़ी कृपा होगी।

इन्द्र–सूर्य !

सूर्य—मैं अभी उठा नहीं देवराज !

इन्द्र—ठीक है । अभी तो रात है ।—चंद्र !

चंद्र—लीजिए । (सुधाका पात्र आगे रखता है)

इन्द्र—खूब होशियार है छोकरा !—देखो पवन ! मतलब नहीं समझते ? उर्वशी, मेनका, रंभा बिल्कुल पुरानी हो गई हैं ।

पवन—बिल्कुल ही महाराज !

इन्द्र—किसी ऐसी अपने मतलबकी कामिनीका नाम बता सकते हो, जिससे जीवनमें जरा विचित्रता आवे ?

पवन—बता सकता हूँ । लेकिन वे सब गिरिस्तोंके घरकी औरते हैं ।

इन्द्र—गिरिस्तके घरकी होने दो—सुंदरी होनी चाहिए ।

पवन—अगर यह बात है, स्वर्ग छोडकर मर्त्यलोकमें उतरना चाहते हैं, तो मैं एक ऐसी रमणी बता सकता हूँ, जिसकी तुलना त्रिभुवनमें नहीं है ।

इन्द्र—वह कौन है ?

पवन—मिथिलामें महर्षि गौतमकी स्त्री अहल्यादेवी ।

वरुण—बहुत कठिन जगह है । वहाँ दाँत नहीं गड़ सकता ।

इन्द्र—(संदिग्धभावसूचक सिर हिलाकर) हूँ !

पवन—लेकिन एक सुभीता है ।

इन्द्र—क्या ?

पवन—महर्षि प्रवासमें हैं ।

इन्द्र—हाँ ! तब तो क़िला फ़तेह है ।—अरे कोई मदनको तो बुला लाओ !—पवन, तुम्हीं न चले जाओ !

पवन—जो आज्ञा। (प्रस्थान।)

इन्द्र—चन्द्र, ढाल भाई!—यह प्रस्ताव बुरा नहीं है।—क्यों जी अग्निदेव ? —ए, अप्सराओंको कोई जल्दी लाओ!

वरुण—लीजिए, मै ही लाता हूॅ। (प्रस्थान।)

इन्द्र—अग्नि!

अग्नि—जी!

इन्द्र—तुम तो बहुत ही गंभीर बनकर बैठ गये ?

अग्नि—ऍ—हॉ—सो मेरी आदत ही कुछ ऐसी है।

इन्द्र—सच ?—लो वह मदन आ गया।

[मदनका प्रवेश।]

मदन—प्रणाम देवराज!

इन्द्र—आ गये—जीते रहो।

मदन—जी हॉं। जीते रहना तो मै बहुत चाहता हूॅ; लेकिन देवराज ही उसका मौका नहीं देते।

इन्द्र—क्यों ?

मदन—यही, दिनरात लोगोंके सर्वनाशके लिए फिरता रहता हूॅ।

इन्द्र—कैसा सर्वनाश ?

मदन—यही, अमुककी स्त्रीको निकाल लाओ, अमुकका सतीत्व नष्ट करो, अमुकका तिवारा ब्याह कराओ।

इन्द्र—ये सब तो बहुत सहज शिकार हैं। विधवा बालिकाका सर्वनाश करना, द्विचारिणीको वेश्या बनाना, असहाया रमणीसे व्यभिचार कराना—यह सब तो मैं भी कर सकता हूॅ।

मदन–फिर और क्या करनेको कहते हैं ?

इन्द्र–यथार्थ सतीका सर्वनाश कर सकते हो ?

मदन–ना, इस काममें तो आप ही फ़र्द हैं।

इन्द्र–दिल्लगी रहने दो। यही काम करनेके लिए मैंने तुमको बुलाया है।

मदन–सो मैंने पहले ही ताड़ लिया था। अच्छा अब बताइए, वह भाग्यवती है कौन ?

इन्द्र–(चुपकेसे कानमें) महर्षि गौतमकी स्त्री अहल्या।

मदन–बड़ी कठिन जगह है।

इन्द्र–नहीं तो मैंने क्या तुम्हें फलाहारके न्यौतेमें बुलाया है ?–सुनो-एक बड़ा भारी सुभीता है।

मदन–क्या सुभीता ?

इन्द्र–महर्षि इस समय प्रवासमें हैं।

मदन–जान पड़ता है, तब तो शायद भस्म हुए बिना ही काम पूरा कर सकूँगा ! लेकिन—लेकिन, एक बात याद रखिएगा।

इन्द्र–क्या ?

मदन–सुनिए—(गाता है)

जो जन पड़े प्रेमके फंदे।
वह अवश्य ही रोता यकदिन, खूब समझ ले बंदे॥
पहले दो दिन हँसीखुशीमें कटे जिंदगी खासी।
फिर गंभीरभावसे साँसे, अंत गलेमें फाँसी॥
पहले तो आराम मिलेगा, अंत हृदयमें ज्वाला।
खूब रगड़नेसे हो जाता कड़वा नींबू आला॥

पहले नाचे मूँड़ चढ़ाकर पीछे खीझ झगड़ते ।
"छोड़ दे भैया जान बचे" यों कहकर नाक रगड़ते ॥

इन्द्र—सो पीछे जो होना होगा सो होगा। अभीका काम तो अभी करो ।

मदन—तथास्तु ।

इन्द्र—चंद्र !

चन्द्र—सुरराज !

इन्द्र—और एक प्याला देना !

[अप्सराओंका प्रवेश ।]

इन्द्र—आगई अप्सराओ ? अच्छा, कोई अच्छीसी चीज़ सुनाओ । देखो, ऐसा गीत गाओ, जिससे जी खुश हो जाय—उमंग बढ़े। कोई सोहनी गाओ—या तेवट नाचो ।

(अप्सराएँ पहले नाचतीं फिर गातीं हैं।)

गज़ल—सोहनी ।

ढालो, अमृत ढालो किशोरी चंद्रवदनी सुंदरी ।
है जो तृषा आकुल अधीर उसे बुझाओ, रसभरी !
हर एक नसमे गर्म खून उमगसे लहरा उठे ।
ढालो अभी मदिरा, बना दो मस्त मुझको, सुंदरी !
चोरी डुलाओ त्यो सुगंधित शुभ वसंती वायुसे—
बस शान्तिसुख भर दो हृदयमें, सुघर सुरपुरकी परी !
बाजे मृदंग सितार मुरली, ललित सारंगी बजे ।
गाओ मधुर स्वरसे, दिशाएँ गूँज उट्ठे, किन्नरी !
नाचो निराले हाव-भाव दिखावसे, अनुरागसे—
मन्मथ मथे मन और यों ही बाण मारे सरसरी ॥

मदन—फिर और क्या करनेको कहते हैं ?

इन्द्र—यथार्थ सतीका सर्वनाश कर सकते हो ?

मदन—ना, इस काममें तो आप ही फ़र्द हैं ।

इन्द्र—दिल्लगी रहने दो । यही काम करनेके लिए मैंने तुमको बुलाया है ।

मदन—सो मैंने पहले ही ताड़ लिया था । अच्छा अब बताइए, वह भाग्यवती है कौन ?

इन्द्र—(चुपकेसे कानमें) महर्षि गौतमकी स्त्री अहल्या ।

मदन—बड़ी कठिन जगह है ।

इन्द्र—नहीं तो मैंने क्या तुम्हें फलाहारके न्यौतेमें बुलाया है ?—सुनो—एक बड़ा भारी सुभीता है ।

मदन—क्या सुभीता ?

इन्द्र—महर्षि इस समय प्रवासमें हैं ।

मदन—जान पड़ता है, तब तो शायद भस्म हुए बिना ही काम पूरा सकूँगा ! लेकिन—लेकिन, एक बात याद रखिएगा ।

इन्द्र—क्या ?

मदन—सुनिए—(गाता है)

जो जन पड़े प्रेमके फंदे ।
वह अवश्य ही रोता यकदिन, खूब समझ ले बंदे ॥
पहले दो दिन हँसीखुशीमें कटे जिंदगी खासी ।
फिर गंभीरभावसे खाँसे, अंत गलेमें फाँसी ॥
पहले तो आराम मिलेगा, अंत हृदयमें ज्वाला ।
खूब रगड़नेसे हो जाता कड़वा नींबू आला ॥

पहले नाचे मूँड़ चढ़ाकर पीछे खीझ झगड़ते ।
" छोड़ दे भैया जान बचे " यों कहकर नाक रगड़ते ॥

इन्द्र–सो पीछे जो होना होगा सो होगा । अभीका काम तो अभी करो ।

मदन–तथास्तु ।

इन्द्र–चंद्र !

चन्द्र–सुरराज !

इन्द्र–और एक प्याला देना !

[अप्सराओंका प्रवेश ।]

इन्द्र–आगई अप्सराओ ? अच्छा, कोई अच्छीसी चीज़ सुनाओ । देखो, ऐसा गीत गाओ, जिससे जी खुश हो जाय–उमंग बढ़े । कोई सोहनी गाओ–या तेवट नाचो ।

(अप्सराएँ पहले नाचती फिर गातीं हैं ।)

गज़ल–सोहनी ।

ढालो, अमृत ढालो किशोरी चंद्रवदनी सुंदरी ।
है जो तृषा आकुल अधीर उसे बुझाओ, रसभरी !
हर एक नसमे गर्म खून उमंगसे लहरा उठे ।
ढालो अभी मदिरा, बना दो मस्त मुझको, सुंदरी !
चोरी डुलाओ त्यों सुगंधित शुभ वसंती वायुसे–
बस शान्तिसुख भर दो हृदयमें, सुघर सुरपुरकी परी !
बाजे मृदंग सितार मुरली, ललित सारंगी बजे ।
गाओ मधुर स्वरसे, दिशाएँ गूँज उठे, किन्नरी !
नाचो निराले हाव-भाव दिखावसे, अनुरागसे–
मन्मथ मथे मन और यों ही बाण मारे सरसरी ॥

दूसरा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान–अहल्याकी कुटी।

समय–सायंकाल।

[अहल्या अकेली बैठी है।]

अह०–कैसी घोर वर्षाऋतु है ! भूरे भूरे गहरे बादलोंने आकाशको ढक रक्खा है। रह रहकर झीला पड जाता है। पानी गिरनेकी अविराम झंकार पृथ्वीसे लेकर आकाशतक व्याप्त हो रही है। आओ बहन बरसात ! शीकर-शीतल-वायुपर बैठकर आओ सुकुमारी ! घामसे सूखी और तपीहुई धरतीको स्निग्ध करो—हरीभरी बनाओ सुंदरी ! (गाती है)—

सुंदर सब भाँति सुखद वर्षाऋतु आई।
घेरत घन घोर गगन, अंधकार दसहु दिसन,
सब प्रसन्न लोग मगन, शोभा सरसाई॥
मारि रह्यो काम तीर, आकुल हिय अति अधीर,
उत्कट उत्कंठा नहिं रोकि सकौं माई॥
चमकत चपला अकास, चौकत चित इत उदास,
गरजें घन घने शब्द हृदय काँपि जाई॥
झरझर जल धार झरत, आँसु इत दृगन गिरत,
धीरज मन नाहि धरत, कछु ना सुहाई॥
छाय रह्यो अंधकार, चार ओर उत अपार,
इत विषाद बेशुमार, हृदय रह्यो छाई॥

सजल पवन माहिं जाय, बायु मिलत धाय धाय,
शून्य दृष्टि नहिं हटाय, ताको मुरझाई ॥
यातना अनेक सहित, इत अनेक त्रिथा निहित,
निशिदिन करि धैर्यरहित जागै हिय माई ॥
मर्मस्थल भेदत सी, दीर्घश्वास छेदत सी,
उठत निराशा रही हृदय महँ समाई ॥
ज्वानीको वेग चपल, निष्फल सौन्दर्य सकल,
धिक धिक यह जन्म विफल. मेरो दुखदाई ॥

[रतिका प्रवेश ।]

अह०—तुम कौन हो ?

रति—अतिथि ।

अह०—खा चुकी हो या भूखी हो ?

रति—भूखी नहीं, प्यासी हूं ।

अह०—प्यासी ? वर्षाके लगातार होनेसे मैदान-घाट जंगल आदि सब पानीमें बूड गये हैं—और तुम—तुम प्यासी हो ?—यह क्या रूढ़ परिहास है ?

रति—परिहास नहीं । सच बात है । सरोवरमें शीतल जल भरा है, लेकिन उससे चातककी प्यास नहीं बुझती ।

अह०—दिल्लगी छोडकर अब पहेली बुझाने लगीं ?

रति—तुमने कभी आईनेमें अपनी इस अनूप रूप-राशिका प्रतिबिंब देखा है ?

अह०—देखा है ।—इस समय तुम क्या चाहती हो ?

रति-तपस्विनी ! मैं केवल टक लगाकर तुम्हारे मुँहकी मोहिनी देखा चाहती हूँ ।

अह०-तुम तो स्त्री हो-

रति-इससे क्या ? विश्वकी संपत्ति रूप है-यह विश्वभरके विस्मयकी वस्तु है ।

अह०-तुम्हारा क्या नाम है ?

रति-रति ।

अह०-निवासस्थान ?

रति-स्वर्ग है । मै किसी प्रयोजनसे, इधरसे, मिथिलाको जा रही थी-एकाएक वर्षाकी झड़ी लग गई । लाचार होकर मुझे इस आश्रमके बाहर आश्रय लेना पड़ा । सहसा तुम्हारी यह मोहिनी मूर्त्ति देख पड़ी मै विस्मयके मारे सन्नाटेमें आकर चित्रलिखितसी खड़ी रह गई । सखी, तुम्हारा नाम क्या है ?

अह०-मै तपस्विनी अहल्या हूँ ।

रति-मै वड़ी भाग्यशालिनी हूँ । स्वर्गमे अहल्याका नाम सुन चुकी ।-फिर जोरसे पानी आगया । कृपा करके क्या आज इस आश्रममें रहने दोगी ?

अह०-मै कृतार्थ हो जाऊँगी । मेरे पति घरमें नहीं हैं,-परदेस गये । तुम अभ्यागत हो, रहना चाहती हो-यह मेरा सौभाग्य है आश्रमके भीतर चलो ।

रति-चलो प्यारी सखी !

दूसरा दृश्य ।

स्थान—गौतमके तपोवनका मार्ग ।

समय—संध्याकाल ।

[मदन और वसन्त ।]

(मदन गाता है ।)

पहनूँ गले फूलकी माला, फूल-पराग शरीर मलूँ ।
फूल-साजसे केश सजाऊँ, फूल-वेशको पहन चलूँ ॥
फूल-धनुषको लिये हाथमें उसको तान करूँ मैं वार ।
फूल-बाण कसकस कर मारूँ हृदय चीर पहुँचें उस पार ॥
फूल-महक छा जाती, आँखें अलस अवश हो जातीं बंद ।
फूल बंधु है, फूलोंहीसे खेला करता हूँ सानंद ॥
मधुर फूल-मधु पिया करूँ, मैं फूल-सेज पर सोता हूँ ।
फूलोंहीकी सुंदर शोभा देख सुखी मैं होता हूँ ॥

मदन—क्या सोच रहे हो वसंत ?

वसंत—सोचता यह हूँ कि प्रभु, आप इतना झूठ भी बोल सकते हैं ?

मदन—क्या झूठ बोला हूँ सखा !

वसंत—कमसे कम भीतरी बातें सब दबा गये ।

मदन—कैसे ?

वसंत—यही, मुँहसे तो खूब कह दिया कि "फूलके वेषसे शरीर ढकता हूँ ;" लेकिन उसके नीचे महाशयकी खासा मखमलकी पोशाक देख रहा हूँ ।

मदन—केवल फूलसे कहीं शरीर ढका जा सकता है, या जाड़ा जा सकता है ?

वसंत–मेरा भी तो मतलब वही है। अगर फूलोंसे मतलब चल जाता तो फिर लोग रुईकी खेती छोड़कर फूलोंकी ही खेती करते।

मदन–अच्छा, उसके बाद और क्या झूठ बोला हूँ ?

वसंत–उसके बाद "फूलका धनुष" झूठ है। फूलका धनुष विश्वकर्माके बापसे भी नहीं बन सकता। उसके लिए एक कड़ी चीज जरूर ही चाहिए–ऊपरसे फूल भले ही लगा लिये जायँ।

मदन–अच्छा और क्या झूठ है ?

वसंत–और "फूलोंसे खेलना"। फूलोंसे खेलना अवश्य ऐसा कुछ कठिन काम नहीं है, लेकिन महाशयको मैने सदा 'गुल्ली-डंडा' खेलते ही देखा है।

मदन–वह तो लड़कपनकी बात कह रहे हो !

वसन्त–जाने दीजिए। लेकिन यह तो मै कसम खाकर कह सकता हूँ कि केवल फूलोंका मधु पीकर ही यह वास्तविक वर्तुलाकार शरीर इस तरह पुष्ट नहीं हो रहा है।

मदन–अजी—समझते नहीं—

वसंत–और फूलोंकी ओर ताकते रहनेके सिवा आपको हम लोगोंकी और भी दो-चार काम करने पड़ते हैं।

मदन–अजी ये सब तो कविताकी बाते हैं। जान पड़ता है, तुम [illegible] कला कुछ भी नहीं जानते।–क्यों ?

वसंत–जी नहीं, मैने काव्य-कला नहीं पढ़ी ! लेकिन कलाकंदकी मिठाई खाई है; और क़सम खाकर कह सकता हूँ कि कलाकंदकी बढ़िया मेठाईके आगे काव्य-कला या चित्र-कला कोई चीज़ नहीं है।

मदन—इस गीतकी सब बातें कविता हैं—लो वह शिकार आ रहा है। तुम्हारे साथी मलय-पवन और कोकिला आदि सब तैयार हैं ?

वसंत—सब तैयार हैं—देखिएगा ?

(निकट ही कोकिला बोलती है।)

मदन—वाह वाह, इस कोकिलाके शब्दको सुनकर भी अगर अहल्या देवी हमारे फंदेमें नहीं फँसे तो समझना होगा कि उनका शरीर रक्त-मांसका नहीं—ईंट-सुर्ख़ीका बना हुआ है। बेशक, कोयल भी विचित्र चिड़िया है। चलो, अब अलग हट चलें। (दोनोंका प्रस्थान)

जाते जाते मदन गाता है—

एक बहुत काली चिड़िया है, उसके पखने दो काले।
कवि उसको कोमल कहते हैं, उसने लाखों घर घाले॥
फागुन चैत मासमें बोले, है उसका अभ्यास बुरा।
संयोगीको सुधासदृश स्वर, वियोगिनीको मनों छुरा॥
कुहकुहू रव सुनकर जैसे प्राण तड़पने लगते हैं।
खाखाकर पछाड़ गिरती है वियोगिनी, दुख जगते हैं॥
प्राणकांतके बिना सुने जो उस चिड़ियाका स्वर मीठा।
तो फिर जीवन उनको लगता मनासा बिल्कुल सीठा॥
वह चिड़िया है सत्यानासी, नव वसंतमें आ करके—
गड़बड़ करती, गजब ढहाती पंचम स्वरमें गा करके॥
बड़े भाग्य हैं जो वह चिड़िया बारोंमास नहीं रहती।
नहीं तो जीना भारी होता, किसकी छाती यह सहती !

(प्रस्थान।)

[अहल्या और रतिका प्रवेश।]

रति—हाय सखी, इस वसंत ऋतुमें यह रूप, ऐसी भरी जवानी इन

तरह !–सखी, जीवनमें केवल एक बार जवानी आती है, और जवानी बहुत दिन नहीं रहती–चार दिनकी चॉदनी होती है !

अहल्या–समझती हूँ, सब समझती हूँ, लेकिन क्या करूँ ? मै बहुत ही अभागिन हूँ !

रति–जौहरीके सिवा बंदर भी कहीं रत्नकी कदर जान सकता है ? वनमें रत्न मत छिटकाओ। यह रूप और जवानी सदा नहीं रहेगी–इस रूप और जवानीको सार्थक करो। अच्छा तो अब जाती हूँ सखी !–मै बड़ी भाग्यवती हूँ जो एकाएक तुमसे भेंट होगई। अप्सराओंमें ही ऐसा अपूर्व रूप होना संभव है। राहमें इस रूपराशिको देखकर ही मै धन्य हो गई। (प्रस्थान।)

अहल्या–आहा ! कैसा सुंदर स ! कैसा मनोहर दृश्य है ! (बैठ जाती है) श्यामल निकुंज पुंजपुंज मंजु मंजरियोंसे अलंकृत हो र हैं; भौंरे गूँज रहे हैं। सुंदर पल्लवपूर्ण वन-वीथियॉ सन्ध्याकी किरणों रंजित हो रही हैं। दूरपर–वनकी कठोर भूमिमें, घने वृक्षोंकी छायामें आधा घूँघटसा निकाले नदी तेज़ीके साथ वही जा रही है। सारा व ५ है।–केवल दूरपर आमके बागमें एक कोकिला पुष्पित वन को कॅपाती हुई ललित उच्छ्वासके साथ कुहूध्वनि कर रही है ।रि, धीमे हिलकोरोंके साथ वसन्तकी हवा चल रही है। व मृगका बच्चा, गर्दन टेढ़ी करके, निस्पंद विस्मयके साथ, निस्तब्ध नकी ओर ताक रहा है। सबके ऊपर निस्पन्द, निर्मल, शीघ्र ही मेघ मुक्त हुआ गहरे नीले रंगका आकाश, पृथ्वीके लज्जासे लाल हुए सुखस्मित अधरबिंबको चूमनेके लिए जैसे झुक रहा है। कौन कहेग

कि यह वर्षा ऋतु है ! कौन कह सकता है कि कल इस नील आकाशको वर्षाकी घन-घटा घेरे हुए थी ? वसन्त और वर्षाके मधुर मेलने जैसे एक अपूर्व सौन्दर्यके राज्यकी रचना कर दी है—आहा ! कैसा मधुर दृश्य है ! बहुत दिनोंसे मैंने ऐसा मनको मुग्ध करनेवाला सौन्दर्यका चित्र नहीं देखा था । जान पड़ता है, बहुत दिनोंसे इतनी ठंडी हवा नहीं चली—कोकिलाने इतने अधीर आग्रहके साथ कुहूध्वनि नहीं की ।

(गाती है)—

आजु जिय चाहत कहा दई !
आकुल हिये वासना कैसी रहि रहि उठै नई ?
लहै न बोध अधीर हृदय क्यों ? सुधिबुधि कितै गई ?
क्यों मुँहज़ोर दीठ हयकी सी गति हिय आजु ठई ?
कौन अपरिचित आकर्षणसों कौन ओर चलई ?

अहल्या—वह चंद्रमा आकाशमें ऊपर उठ रहा है ! वाहवाह—कैसी शोभा है ! वनके भीतर चाँदनी भर गई ! एक ओर शान्त गौरवके साथ सूर्य अस्त हो गये हैं; दूसरी ओर चन्द्रमा स्निग्ध हास्यके साथ उदय हो आया है । सूर्य और चंद्र दोनोंने मानों दिगन्तविस्तृत उज्ज्वल आकाश-राज्यको बाँट लिया है । वह तारागणपरिपूर्ण सन्नाटेसे भरी रात्रि—श्रान्तिके बाद शान्तिकी तरह—शुष्क कार्यके बाद शिथिल स्वप्नकी तरह आ रही है ।—वह—वह कौन गारहा है !

[एक सजीहुई नावपर बैठीहुई अप्सराओंका गाते गाते प्रवेश और प्रस्थान ।]

समय सब योंही बीता जाय ।
आवेगा सँग कौन हमारे आवे सो आजाय ॥ समय० ॥
छोटा बजरा सजा हमारा हिलता डुलता जाय ।

जुही चमेलीके हारोंका हिलना रहा लुभाय ॥
फहराती रेशमी पताका, धीमी हवा सुहाय ।
नदिया भीतर बालम बजरा हिलता डुलता जाय ॥
प्रेमी नये मुसाफिर सारे, नये प्रेमको पाय ।
मगन उसीमें लगन लगाये, हिये न प्रेम समाय ॥
मुखमें हँसी बसी आँखोंमें रही खुमारी छाय ।
बढ़ते जाते प्रेमपंथमें दुनिया दूर बहाय ॥
पश्चिमका आकाश देखिए, संध्याकाल सुहाय ।
यह लाली अनुराग सरीखी, जीमें रही समाय ॥
मधुर स्वप्नसा उधर चन्द्र वह देख पड़े छवि छाय ।
उमँगभरी नदिया लहराती, कलधुनि रही सुनाय ॥
शीतल मंद सुगंध पवनमे वंशीधुनि सरसाय ।
छुटे फुहारा हर्ष-हँसीका, लीजे गले लगाय ॥

अहल्या—यह क्या स्वर्गीय संगीत है ? पुलकसे आवेशके मारे शरीरमें रोमांच हो रहा है । हृदयमें कैसी वासना जग रही है ? —अब प्रवाहको रोक रखना मेरी शक्तिके बाहर हो रहा है। —हाय, समझ गई, मेरी जवानी निष्फल है, मेरा यह नारीजन्म वृथा है । समय बीत गया—बस तो फिर अपने सूने आश्रमको लौट जाऊँ ! (जाना चाहती है—फिर नेपथ्यकी ओर देखकर) यह गोरे रंगका नौजवान कोन है ? सिरपर जटा रखाये, मंद गतिसे यह कौन पुरुष इस वनवीथीमें जा रहा है ? यह कौन है? मैंने तो इसे कभी नहीं देखा । शरीर सुगठित सुंदर और लंबा है, छाती चौड़ी है; चाल गजराजकी सी मस्त है; मृगाजिन शरीरकी शोभा बढ़ा रहा है । लेकिन सबसे बढ़कर सुंदर इसका मुखचंद्र है । शैवालवेष्टित कोमल कमलनालके ऊपर कमलकुसुमके समान, देहके ऊपर मुखमण्डलकी अपूर्व शोभा है । यह कौन है ? पुकारकर पूछूँ ।—पथिक ! तुम कौन हो?

[तपस्वीके वेषमें इन्द्रका प्रवेश।]

इन्द्र—सुंदरी तपस्विनी ! तुम कौन हो ? तुमने मुझे क्यों पुकारा है ?

अहल्या—तुम कहाँ जाओगे ?

इन्द्र—मिथिलाको जाऊँगा। मिथिला नगरी यहाँसे कितनी दूर है ? वि ! दया करके मुझे मिथिलाकी राह बता दो।

अह०—पथिक, वह दुर्गमस्थान यहाँसे बहुत दूर है। सन्ध्यासमय गया है। हे तापस ! तुम रातको मेरे आश्रममें सुखसे रहो। कल सवेरे ठकर वहाँ चले जाना।

इन्द्र—तुम कौन हो ?

अह०—तपस्विनी हूँ।

इन्द्र—तुम्हारा नाम क्या है ?

अह०—अहल्या है।—नहीं सखा, यह मैंने झूठ कहा। मैं केवल नारी हूँ. मेरा कोई नाम नही है।—नहीं मित्र, मेरा क्या नाम है—सो मैं भूली जा रही हूँ। नाम पूछते हो ? नहीं नहीं, मै केवल संन्यासिनी हूँ. और कुछ मेरा नाम नहीं है।

इन्द्र—सच सच खुलासा करके कहो। पहेली बुझाना मेरी समझमें नहीं आता। तुम कौन हो ?

अह०—प्रिय, सच कहूँ ? हाँ सच कहूँगी—मेरे आश्रममें चलो।

इन्द्र—नही, नही, मै आश्रममे नही जाऊँगा।

अह०—नहीं, तुम जरूर जाओगे ! तुम्हारे मनका भाव मुखपर स्पष्ट झलक रहा है। कपट छोडकर आश्रममे चलो। (अस्पष्टस्वरमे) सच कहती हूँ—मै तुम्हारी दासी हूँ, तुम मेरे प्राणेश्वर हो।

(दोनोंका प्रस्थान।)

[मदन और रतिका फिर प्रवेश और गाना–]

कुछ योंही हुवावें अनेक, हम इस संसारमें ।
अनिष्ट जो कि हुआ करते यार जीवनमें ।
सभीकी जड़ है हमी जान लो इसे मनमें ॥
रहे न लोकहँसाईका ख्याल इक छनमें ।
रहे न शांति जरासी भी कामबंधनमें ॥
ऋपियोंकी भी टिकती न टेक । हम इस० ॥

(मदन–) हृदयमें ताकके फूलोंके शर चलाऊँ मैं ।
(रति–) हृदय हृदयसे अधरसे अधर मिलाऊँ मै ॥
(काम–) कमलदलोंका सुकोमल पलँग विछाऊँ मैं ।
(रति–) सुगंध फूलोको उस पर विखेर आऊँ मै ॥
(दोनो–) श्रामबूँदोंसे हो अभिपेक । हम इस० ॥
(काम–) सुवास प्रेमकी सॉसोंमें तो बढ़ाऊँ मैं ।
विनोदप्रेमवचनगानसे रिझाऊँ मै ॥
(रति–) अधरमें स्वाद सुधाका मधुर चखाऊँ मै ।
कटाक्ष वाणसे पैने बना दिखाऊँ मैं ।
(दोनो–) कला चलती किसीकी न एक । हम इस० ॥
(काम–) मै स्वर्गलोककी रचना करूँ घड़ी भरमें ।
(रति–) सुधाकी वृष्टि मिलनमें कराऊँ घर घरमें ॥
(काम–) उड़ादूँ वस्त्रका ऑचल मै ऐसे अवसरमें ।
(रति–) उड़ाके लटको फँसा दूँ बुलाक वेसरमें ॥
(दोनो–) बचे हमसे न बद और नेक । हम इस० ॥
(काम–) प्रताप मेरा अमर जानें, क्षुद्र नर है क्या ।
(रति–) करूँ मै पूर्ण उसे सोलहो कलासे आ ॥
(काम–) जगत्में प्रेमकी जय-घोपणा करूँ मै सदा ।
(रति–) विपत्ति–वज्र गिराऊँ मै प्रेमपर ला ला ॥
(दोनो–) हरा हमने ही विधिका विवेक । हम इस० ॥

तीसरा दृश्य ।

स्थान–चिरजीवके आश्रमका बाहरी हिस्सा ।

समय–तीसरा पहर ।

[तेज़ीसे माधुरीका प्रवेश ।]

माधुरी–कैसा आश्चर्य है! कैसा अन्याय है ! कैसी लोमहर्षण घटना है! क्या करूं ? किसकी सलाह लूं ? एक बार दूसरे तपस्वियोंके आश्रममें जाऊं क्या ? नहीं । और तपस्वियोंके आगे अभी यह निन्दनीय घटना प्रकट करनेकी जरूरत नहीं है । देखूं, अगर मैं ही इसका कुछ उपाय कर सकूं । पहले स्वामीके साथ सलाह करना ही ठीक है । वह स्वामी जा रहे हैं—बुलाऊं । स्वामी ! जरा इधर आइए ।

[चिरजीवका प्रवेश ।]

चिरं०–क्या है ? क्या तूने मुझे बुलाया है ?

माधुरी–हां । एक बात कहनी है ।

चिरं०–क्या वह बात बहुत जरूरी है ?

माधुरी–हां, बहुत जरूरी है ।

चिरं०–तो फिर अभी कह डाल । मैं भी एक बहुत जरूरी कामसे जा रहा हूं ।

माधुरी–गुरुपत्नी कहां है ?

चिरं०–आश्रममें ।

माधुरी–क्या कर रही है ?

चिरं०–रोगी और क्या ? आंखें मन्द रही हैं । वही पुराना मसला

माधुरी—कौन पुराना मसला ?

चिरं०—वही बुड्ढे-बुड्ढीका मसला । तू शायद नही जानती ? अच्छा ले सुन । (गाता है)—

एक जगह पर बुढ़िया बुड्ढा, दोनों सुखसे रहते थे ।
हेलमेल था दोनोंहीको दोनों जीसे चहते थे ॥
बुढ़िया कट्टर वैष्णव थी, पर बूढ़ा शाक्त बड़ा भारी ।
जब झगड़ा होता तब होती लठ लेकर मारामारी ॥
धमाचौकड़ी देख महल्लेवाले और पड़ोसी लोग ।
दौड़े आते पुलिस बुलाते, ऐसा होता था संयोग ॥
"दुत्तेरे" की कहकर बुड्ढा हुआ अचानक अंतर्द्धान ।
बुढ़िया तब बुड्ढेकी खातिर देने लगी बिलख कर जान ॥
साल भरेके बाद कहींसे फिर आया बुड्ढा घरको ।
बुढ़िया तब तो रॉघ रसोई रखती खुशी खबर वरको ॥
झगड़ा मिटा प्रेम वैसा ही देख पड़ा उनके दर्म्यान ।
बुढ़िया मिस्सी मलती, बुड्ढा साबन मलकर करता स्नान ॥

चिरं०—अच्छा माधुरी ! मै एक बड़े भारी धोखेमें पड़ गया हूँ ।

माधुरी—क्या धोखा प्राणनाथ ?

चिरं०—धोखा यही है कि क्या तू सचमुच मुझे प्यार करती है ?

माधुरी—सचमुच प्यार करती हूँ ।

चिरं०—हूँ, देखनेसे तो यही जान पड़ता है ।

माधुरी—तो फिर धोखा क्या है ?

चिरं०—यही तो धोखा है ।—अच्छा तू खूब प्यार करती है ?

माधुरी—खूब प्यार करती हूँ ।

चिरं०—लेकिन मै तुझे बिल्कुल प्यार नहीं करता ।

माधुरी—एक दिन प्यार करोगे ।

चिरं०—ऊँ हूँ:—जान तो नहीं पडता । (संदेहसूचक सिर हिलाता है) मै तुझे किसी तरह प्यार नहीं कर सकता ।

माधुरी—क्यों ? मैं जातिकी वेश्या हूँ—इस लिए ?

चिरं०—नहीं, तू जातिकी स्त्री है—इसलिए । तुझे किसी तरह प्यार नहीं कर सकता ।—तू असार, अकिंचित्कर, एक साधारण स्त्री है । मुझ सा एक भारी जानवर तुझ सी एक क्षुद्र स्त्रीको प्यार नहीं कर सकता ।

माधुरी—तुम्हारी जैसी इच्छा । तुम मुझे प्यार करो या न करो, मगर मै तुम्हें सदा प्यार करती रहूँगी ।

चिरं०—यही तो स्त्रीजातिमें दोष होता है । गले पड़ जाती हैं तो पीछा ही नही छोडतीं ।

माधुरी—अच्छा इस बातको छोड़ो । हालमे तुमने गुरुपत्नीके आश्रममें कुछ देखा है ?

चिरं०—देखा है ।

माधुरी—क्या देखा है ?

चिरं०—साँप, बिच्छू, तोते, बुलबुल, गिरगिट, सियार—

माधुरी—नही नहीं—कुछ नई बात ?

चिरं०—मृगीके एक बच्चा हुआ है !

माधुरी—नहीं जी, यह कुछ नही । किसी नये आदमीको देखा है ।

चिरं०—आदमीको ?

माधुरी—हाँ ।

चिरं०--आदमी ? कहाँ--आदमी तो नहीं देखा ।

माधुरी--एक आदमी आया है ।

चिरं०--मर्द या औरत ?

माधुरी--मर्द । एक सुंदर गोरा जवान नित्य आधी रातको आता है, और सवेरे चला जाता है ।

चिरं०--हॉ ? सच ? यह तमाशा तो बुरा नहीं है ।--कहॉसे आता है और कहाँ चला जाता है ?

माधुरी--दूरपर नदीके ऊपर तुमने एक सजीहुई नाव क्या नहीं देखी?

चिरं०--शायद देखी है ।

माधुरी--वहीसे आता है और वहीं चला जाता है ।

चिरं०--समझ गया । बाबा, चिरंजीवशर्मा इतना मूर्ख नही है ।--जायगा कहॉ ? स्त्रीजातिका चरित्र ही ऐसा होता है, सो चाहे वह रेशमी सारी पहने, और चाहे वृक्षके वल्कल पहने--स्त्रीचरित्र कहॉ जायगा ? कहाँ जायगा ?

माधुरी--इस समय तुम्हें एक काम करना होगा ।

चिरं०--क्या करना होगा--बता तो सही ! मेरे शरीरमें जितनी ताक़त है उतनी ही बुद्धि अगर मस्तकमें होती, तो जान पड़ता है, शायद मै एक बुद्धिमान् आदमी हो सकता ।

माधुरी--करना यही होगा कि उस आदमीका पता लगाओ । वह कौन है ? कहॉ रहता है ? और उसका अभिप्राय क्या है ? यह जानना चाहिए ।

चिरं०--वह कौन है और कहाँ रहता है, सो बेशक मैं नहीं जानता।

लेकिन उसका अभिप्राय क्या है, सो खूब मेरी समझमें आगया। ऐसी हालतमें सभी मर्दोंका एक ही अभिप्राय हुआ करता है।

माधुरी—वह कल तडके जब आश्रमसे निकलकर चले, तब तुम उसके पीछे पीछे जाना। जाकर—

चिरं०—यह मुझसे नही होगा। मै पीछे पीछे जाकर उसे नहीं पकड सकूँगा। पकडूँगा तो सामनेसे लड़कर पकडूँगा। (उग्रभाव धारण करता है)

माधुरी—नही प्रभू। महर्षि गौतमके पवित्र आश्रममें कोई बदनामीका काम करनेकी जरूरत नहीं है।

चिरं० हूँ हूँ! (हुंकार)

माधुरी—दोहाई है तुम्हारी स्वामी। यहाँ नहीं। युद्ध करना हो तो तपोवनके वाहर जाकर करना। आज पिछली रातको जरा जागते रहना।

चिरं०—मुझे तो आज रातभर नींद नहीं आवेगी।—अच्छी वात है! बहुत अच्छी खबर है! इस तरह जीवनमें जरा विचित्रता आती है।

माधुरी—(नेपथ्यकी ओर देखकर) वह शतानंद आ रहा है। रोता क्यों है?

[रोते हुए शतानंदका प्रवेश।]

शता०—मौसी!

माधुरी—क्या है बेटा?

शता०—माने मुझे मारा है।

माधुरी—क्यों?

शता०–मुझे नहीं मालूम। मारा है, और कहा है कि आज रातको वे मुझे अपने पास सोने न देगी। (रोता है)

चिरं०–तो छोकरे, मा जब तुझे मारती है, तब तू उसके पास सोने क्यों जाता है ?

माधुरी–तुम नहीं समझते; यह हृदयके स्नेहका खिंचाव है। चल बेटा, तू मेरे साथ खेल। (शतानंदको लेकर माधुरीका प्रस्थान।)

चिरं०–(आप ही आप) हूँ हूँ, मै क्या यों ही कहता हूँ कि स्वभाव नहीं छूटता ! "नीम न मीठी होय चाहे सींचो गुड़-घीसे।" जायगा कहाँ ? स्त्रीका चरित्र ठहरा—कहाँ जायगा ?

[एक तपस्वीका प्रवेश।]

चिरं०–हूँ हूँ हूँ हूँ ! (हुंकार)

तपस्वी–क्यों महाशय ! एकाएक इतना उग्र रूप क्यों कर लिया ?

चिरं०–मेरे हृदयमें क्रोधका उदय हो आया है !

तप०–क्यों ?

चिरं०–तुझे इसकी खोज करनेकी क्या ज़रूरत पड़ी है रे ? (मारने है) निकल जा मेरे आश्रमसे !

तप०–जाता हूँ बाबा। मै तो एक अच्छी खबर देने आया था—

चिरं०–अच्छी खबर ? (आग्रहके साथ) क्या ? क्या ?

तप०–महर्षि गौतम लौटे आरहे हैं।

चिरं०–कब आवेंगे ?

तप०–यही, एक सप्ताहके भीतर ही !

चिरं०–क्यों ? लौटे क्यों आ रहे हैं ?

तप०—वहाँ तपस्या नहीं हो सकी। राक्षस लोग घोर उपद्रव कर रहे हैं। विश्वामित्र ऋषि महाराज दशरथके पास राक्षसोंके विनाशकी प्रार्थना करने गये हैं। और गौतमजी लौटे आ रहे हैं।

चिरं०—महर्षिमें कुछ भी मानसिक बल नहीं है। गौतम ऋषि अत्यन्त अपदार्थ हैं। स्त्रीको छोडकर उनसे वहाँ नहीं रहा गया—और क्या? समझ गया—अत्यंत अपदार्थ हैं। (दोनोंका प्रस्थान।)

चौथा दृश्य।

स्थान—अहल्याकी कुटीका भीतरी भाग।

समय—पिछली रात

[इन्द्र और अहल्या।]

अहल्या—तुम इन्द्र हो? पहले यह जानती तो तुमको क्यों अपने हृदयका ईश्वर बनाती मायावी?

इन्द्र—मुझमें क्या दोष है?

अह०—तुममें सैकड़ों दोष हैं। मैंने सुना है—तुम धूर्त, व्यभिचारी और लंपट हो।

इन्द्र—मेरी इस व्यर्थकी बदनामी पर तुम विश्वास न करना।

अह०—सच कहो, तुम अहल्याको प्यार करते हो?

इन्द्र—(दोनों हाथ पकडकर) अनिन्द्यसुन्दरी! मेरी हृदयेश्वरी! नन्दन-काननमें किशोर मंदार-पुष्प वसंतवायुसे संचालित होकर इतनी सुगंध नहीं देता, जितनी सुगंध तुम्हारी अस्फुट प्रणयवाणीसे मिली हुई

साँसमें मिलती है। तुम्हारे इन लाल लाल होठोंमें जितना अमृत है उतना अमृत मेरे स्वर्गके भांडारमें भी नही है। (चुंबन।) जलभरे बादलोंमें खेलती हुई विजली भी इतनी स्निग्ध-तीव्र नहीं है, जितनी स्निग्वता तुम्हारे आलिंगनमें है प्रियतमे ! (आलिंगन।)

अह०–सच कहते हो ?

इन्द्र–सच कहता हूँ।

अह०–हाय अगर तुम्हारी इस बातपर मै विश्वास कर सकती !

इन्द्र–क्यों नहीं विश्वास कर सकती ?

अह०–तुम्हारी सभामें वेश्याएँ नाचती हैं ?

इन्द्र–वे नाचनेवाली हैं, मेरी प्रणयिनी नहीं हैं।

अह०–शची देवी तुम्हारी रानी हैं ?

इन्द्र–इन्द्राणी केवल रानी हैं, प्रणयिनी नही हैं।

अह०–(सहसा) ना ना लौट जाओ ! अब भी तुम लौट सकते हो, अब भी मै लौट सकती हूँ ! जो होना था, हो गया। कोई नहीं जानेगा। ट जाओ।

इन्द्र–मै जाऊँगा प्रियतमे, लेकिन मेरे साथ तुमको भी चलना होगा। ो, अभी चलो। किनारे पर नाव सजी खड़ी है। चलो।

अह०–नहीं हृदयेश्वर ! क्यों मुझे गहरी दलदलमें फँसा रहे हो ? मै ऋषिकी स्त्री हूँ।

इन्द्र–क्यों अपने मनको यह मिथ्या प्रबोध देती हो ! बहुत दूर आ गई हो ! अब लौटना मत चाहो। अब अहल्या और इन्द्र मरणपर्यन्त एक न टूटनेवाली शृंखलामें बँध गये हैं। चलो, मै तुमको संगमर्मरके

हलमें—पुष्पसुवासित सोनेके पलँगमें—रक्खूँगा । हीरेके गहने पहननेको गा । सैकड़ों दास-दासियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी । मै देवराज खुद नित्य म्हारे पैर दबाऊँगा ।

अह०—(काँपते हुए स्वरमें) क़सम खाओ—सचमुच मुझे प्यार करते हो ?

इन्द्र—फिर भी संदेह बना है ? पूछती हो, प्यार करता हूँ ? हाय प्रेये ! प्राणेश्वरी ! इतना अधीर आग्रह, इतनी ज्वलन्त वासना, तुम्हारी समझमे नही आती ?

अह०—तो चलो, मै तुम्हारे साथ आज कलंकके सागरमें फाँदूँगी । इस राहसे लौटना चाहती हूँ, लेकिन हाय, लौटनेकी सामर्थ्य नहीं है । चलो । मगर पुत्र शतानंदका क्या होगा ?

इन्द्र—उसे छोड जाओ, तुम्हारे चेला और चेली दोनों उसका पालन करेंगे ।—अभी रात बाकी है । चलो ।

अह०—कहाँ चलोगे ?

इन्द्र—स्वर्गको ।

अह०—ना ना—स्वर्गको नहीं ।

इन्द्र—क्यो प्राणेश्वरी ?

अह०—पूछते हो "क्यों ?" जब स्वर्गमे राह-बाटमे दिव्यांगनाएँ मेरी ओर उंगली उठाकर कहेंगी कि "यह भ्रष्टा गौतमकी स्त्री है" तब मेरा मुँह क्या लज्जासे लाल न हो उठेगा ? लज्जाके मारे पृथ्वीमें समा जानेको मेरा जी न चाहेगा ?

इन्द्र—मै तुम्हे एकान्त भवनमे, अलग, सबसे दूर रक्खूँगा । कोई तुमको न जानेगा ।

अह०–नहीं प्रियतम ! उसकी अपेक्षा चलो–किसी दूर जनशून्य द्वीपमें, सागरके किनारे, अथवा पहाडकी चोटीपर चलो; जहॉ मनुष्यकी सॉस भी नहीं पहुँचे । जहॉ कानोंमें अपनी बदनामीकी भनक न पड़े, जहाँ अलक्ष्य एकान्तस्थानमें सुखसे परस्पर नित्य सदा अतृप्त विलासके साथ आनन्द भोग करें, वहाँ चलो । वहॉ मै समझूँगी कि यह विश्व जनशून्य है–केवल तुम और मै हूँ । वहॉ हम इस क्षुद्र मिलनकी नावको, अपार गंभीर प्रेमसागरमें–उसके गाढ, स्वच्छ, फेनिल हिलकारोंके बीचमें, अनेक युगोंतक, खेते चले जायँगे ।

इन्द्र–बहुत अच्छा । चलो, इसी घड़ी चल दें । शतानन्द सो रहा है । सारे वनमें सन्नाटा छाया है–एक पत्ता तक नहीं हिलता ।

अह०–पानी पड़ रहा है ।

इन्द्र–यह और अच्छा है । रातके अंधकारमें, शीकर-शीतल निस्तब्ध पिछली रातमें, सारा विश्व मुर्देकी तरह अचेत पड़ा सो रहा है । जल्दी आओ ।

अह०–चलो । (जाना चाहते हैं ।)

शता०–(जागकर) मा ! मा !

अह०–अब क्या करूँ ? पुत्र जग पडा है !

इन्द्र–बालक फिर सो गया ! चलो–जल्दी चलो । देर क्यों करती हो ?

अह०–अच्छा चलो ।

शता०–मा ! मा कहॉ गई !

इन्द्र–चुप बालक !–अहल्या पुत्रको चुप करो । नहीं तो यह सब तैयारी निष्फल कर देगा ।

अह०—चुप शतानन्द।

शता०—मा! यह कौन है? मा! तुम कहाँ जाती हो?

इन्द्र—इस अभागे बालकने सब काम बिगाड दिया!

अह०—अब क्या करूं?

शता०—मा-मा, भूख लगी है—

इन्द्र—गला घोट दो।

शता०—मा, भूख लगी है।

अह०—फिर?—अच्छा तो ले जन्म भरके लिए तेरी भूख मिटाये देती हूं। (जाकर पुत्रका गला घोट देती है।)

इन्द्र—पापी जन्म भरके लिए चुप हो गया। जल्दी चली आओ।

अह०—यह क्या किया! अपने बालककी हत्या कर डाली?

इन्द्र—चलो, बाहर कौए बोलने लगे। आओ। (बाहर जाता है)

अह०—चलो चलें!—समझ गई। मै नरकके राज्यमें उतर आईहूं! अच्छा तो फिर विश्वास, भरोसा, ममता और पुण्य—सबसे बिदा होती हूं।—आ, पापके कराल राज्य, गहरे अंधकारके साथ आकर पृथ्वीको दबा ले।

(जाना चाहती है।)

[माधुरीका प्रवेश।]

माधुरी—शतानंद क्यों रो रहा है?—गुरुपत्नी! तुम इस वेषसे इतने तड़के कहां जा रही हो?

अहल्या—पकड़ ली गई।

इन्द्र—(बाहरसे) आओ—शीघ्र चली आओ। (बाहर शब्द होता है)

अह०–नहीं प्रियतम ! उसकी अपेक्षा चलो–किसी दूर जनशू
द्वीपमें, सागरके किनारे, अथवा पहाड़की चोटीपर चलो; जहाँ मनुष्यक
साँस भी नहीं पहुँचे। जहाँ कानोंमें अपनी बदनामीकी भनक न प
जहाँ अलक्ष्य एकान्तस्थानमें सुखसे परस्पर नित्य सदा अतृप्त विलास
साथ आनन्द भोग करें, वहाँ चलो। वहाँ मै समझूँगी कि यह वि
जनशून्य है–केवल तुम और मैं हूँ। वहाँ हम इस क्षुद्र मिलनकी नावको
अपार गंभीर प्रेमसागरमें–उसके गाढ़, स्वच्छ, फेनिल हिलकारोंके बीचमें
अनेक युगोंतक, खेते चले जायँगे।

इन्द्र–बहुत अच्छा। चलो, इसी घड़ी चल दें। शतानन्द सो रहा है
सारे वनमें सन्नाटा छाया है–एक पत्ता तक नहीं हिलता।

अह०–पानी पड़ रहा है।

इन्द्र–यह और अच्छा है। रातके अंधकारमें, शीकर-शीत
निस्तब्ध पिछली रातमें, सारा विश्व मुर्देकी तरह अचेत पड़ा सो रहा है
जल्दी आओ।

अह०–चलो। (जाना चाहते हैं।)

शता०–(जागकर) मा ! मा !

अह०–अब क्या करूँ ? पुत्र जग पड़ा है !

इन्द्र–बालक फिर सो गया ! चलो–जल्दी चलो। देर क्यों करती हो ?

अह०–अच्छा चलो।

शता०–मा ! मा कहाँ गई !

इन्द्र–चुप बालक !–अहल्या पुत्रको चुप करो। नहीं तो यह सब
तैयारी निष्फल कर देगा।

अह०—चुप शतानन्द ।

शता०—मा ! यह कौन है ? मा ! तुम कहाँ जाती हो ?

इन्द्र—इस अभागे बालकने सब काम बिगाड दिया !

अह०—अब क्या करूँ ?

शता०—मा-मा, भूख लगी है—

इन्द्र—गला घोट दो ।

शता०—मा, भूख लगी है ।

अह०—फिर ?—अच्छा तो ले जन्म भरके लिए तेरी भूख मिटाये देती हूँ । (जाकर पुत्रका गला घोट देती है ।)

इन्द्र—पापी जन्म भरके लिए चुप हो गया । जल्दी चली आओ ।

अह०—यह क्या किया ! अपने बालककी हत्या कर डाली ?

इन्द्र—चलो, बाहर कौए बोलने लगे । आओ । (बाहर जाता है)

अह०—चलो चलें !—समझ गई । मै नरकके राज्यमें उतर आईहूँ ! अच्छा तो फिर विश्वास, भरोसा, ममता और पुण्य—सबसे विदा होती हूँ ।—आ, पापके कराल राज्य, गहरे अंधकारके साथ आकर पृथ्वीको ढक ले ।

(जाना चाहती है ।)

[माधुरीका प्रवेश ।]

माधुरी—शतानंद क्यों रो रहा है ?—गुरुपत्नी ! तुम इस वेषसे इतने तड़के कहाँ जा रही हो ?

अहल्या—पकड़ ली गई ।

इन्द्र—(बाहरसे) आओ—शीघ्र चली आओ । (बाहर शब्द होता है)

[इन्द्रको पकड़कर चिरजीवका प्रवेश।]

चिरं०—अरे भगोड़े, अब कहाँ जायगा ?

इन्द्र—अगर प्राण प्यारे हों तो कहता हूँ, छोड़ दे।

चिरं०—छोड़ता हूँ बेटा, अभी—ठहर जा !

(दोनो लड़ते हैं। इन्द्र चिरजीवके ऊपर वज्रकी आग छोड़ता है और चिरजीव गिर पड़ता है।)

अह०—यह क्या—यह क्या हुआ !

इन्द्र—शीघ्र चली आओ प्राणेश्वरी।

(अहल्याका हाथ पकड़कर खींचते हुए इन्द्रका प्रस्थान।)

तीसरा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—जनकका महल।

समय—प्रातःकाल।

[जनक, गौतम, चिरंजीव, शतानंद।]

गौतम—बंधु, क्या कहूँ—प्रवाससे लौटकर देखा तो आश्रमकी कुटी जनशून्य मिली। प्यारी अहल्याका पता नहीं। मेरी कुटीका शिखर विषादसे जैसे झुका हुआ है। कुटीके आँगनमें घासफूस उगकर जैसे अपने पुराने राज्यपर अधिकार कर रहे हैं।

चिरं०—इधर उधर उल्लू घूम रहे हैं!

गौतम—कुटीके पास नीमके पेड़की चोटीपर चमगीदड़ोंने घोंसले बना लिये हैं। सारा वन निस्तब्ध और मलिन हो रहा है। आश्रममें प्रवेश करते ही एक बड़ा भारी सियार चीत्कार कर उठा और मुझे देखकर बाहर निकल गया! मैंने जोरसे पुकारा—"अहल्या!" दूरपर वनमें मेरे ही शब्दकी प्रतिध्वनिने जैसे मेरा उपहास करते हुए उत्तर दिया—"अहल्या!" उसी समय मेरी चेली माधुरी आश्रमके बाहर निकल आई। उसने कहा—आश्रममें कोई नहीं है। शिष्य चिरंजीव कुटीमें घायल पड़ा हुआ था। प्यारा पुत्र शतानन्द मुर्देकी तरह पड़ा था—बहुत सेवा-शुश्रूषा करनेसे उसके प्राण बचे हैं! अहल्या लापता है।

जनक—आपने गौतमी (अहल्या) की खोज की है?

चिरं०—एक वनसे जाकर दूसरे वनमें—इस तरह दूर तक—उसकी बहुत कुछ खोज की, मगर कहीं कुछ पता नहीं चला।

जनक—उसके बाद ?

चिरं०—मैंने महर्षिसे कहा था, अगर स्त्रीको लेकर आप गृहस्थी नहीं चला सकते, तो फिर यह विडम्बना क्यों ? यह विवाहका बंधन क्यों अपने सिर लेते हो ?

गौतम—सच कहते हो चिरंजीव।

चिरं०—महाराज! गुरुजीने जब सुना कि अहल्या एक लंपटके साथ चली गई तब कहा—"यह असंभव है।" मैंने कहा—"प्रभू, नहीं, यह शास्त्रकी बात है। प्रोषितभर्तृकामें यह दोष होना कुछ भी असंभव नहीं है।"—मगर राजर्षिजी! नहीं जान पड़ता, उस लंपटने मेरे क्या खींचकर मारा था। वह शस्त्र तेजमें अग्निके समान और अद्भुत था।

गौतम—राजर्षि! अब जीनेकी श्रद्धा या अनुराग नहीं है। संसारमें रहनेको अब जी नहीं चाहता। आज इस वनकी बस्तीको छोड़कर ेे चेले और चेलीके साथ जाता हूँ।

,—कहाँ जाइएगा मित्रवर ?

गौतम—बहुत दूर कैलास पर्वतको जाऊँगा। सुना है, वह पर्वत बडा ही ृ और एकान्त निर्जन है। मैं वहाँ जाकर अत्यन्त आग्रहके साथ ी सब कामना, सब साधना, उसी विश्वनियन्ता जगदीश्वरके चरणोंमें लगा दूँगा।

जनक—अपने ही तपोवनमें रहकर तप क्यों नहीं करते ?

गौतम—प्रियमित्र, यहाँ रहकर तप नहीं कर सकूँगा। मेरा रम्य तपोवन अनेक सुखस्मृतियोंसे परिपूर्ण है। वह सदा मनमें बीती हुई बातें लाकर चित्तको उचाट करता रहेगा।

जनक—आपकी दशा बहुत ही करुणाजनक है।

गौतम—मैं समझता हूँ, यह वेदना शायद उस प्रभुका मंगलमय विधान है। इतने दिनोंतक मायामोहमें पड़कर, आत्मसुखरत होकर मैं उस विश्वेश्वरको भूला हुआ था। इसीसे शायद उस दयामय प्रभुने वह बंधन काटकर मुझ अकिंचन दासको अपनी ओर खींच लिया है। धन्य हो जगदीश्वर! तुम्हारी मंगलदायिनी इच्छा पूर्ण हो। (भगवान्‌के लिए प्रणाम करके)—मित्र जनक! इस अपने प्राणाधिक पुत्रको तुम्हारे हाथमें सौंपता हूँ। इसे तुम देखना।

जनक—अच्छी बात है। मैं इसे अपने पुत्रसे बढ़कर समझूँगा और इसका पालन करूँगा।

गौतम—प्राणाधिक पुत्र! शतानंद! जाता हूँ। मैं तेरा बहुत ही निष्ठुर पिता हूँ। तू बचपनहीसे माता-पिताके स्नेह-सुखसे वंचित है। तेरी मा तुझे छोड गई है। मैं भी ममताहीन होकर तुझे छोड़ जाता हूँ। जाता हूँ बेटा! कभी कभी मुझे याद कर लेना।—ना, ना, भूल जाना—अपने हृदयसे निष्ठुर पिताकी यादको मिटा देना, जड़ मूलसे उखाड़ कर फेंक देना।—प्यारे पुत्र! तू समझ लेना कि जन्मसे ही तेरे मा-बाप नहीं थे। (चुंबन)—अभिन्नहृदय मित्र जनक! तुम्हारे आश्रयमें इस बालकको रक्खे जाता हूँ।—जाता हूँ बेटा! (चुंबन) मित्र! इस बालकको देखना। यह बालक असहाय है। और क्या कहूँ? तुम सब

जानते हो। प्रियवर ! इसे देखना। पुत्र शतानन्द मुझे प्राणोंसे भी बढकर प्यारा है।–जाता हूँ बेटा ! (चुंबन) राजर्षि, क्षमा करना–इस अभागे असमर्थ वृद्ध गौतमको क्षमा करना।

जनक–नहीं जानता, आपका भाग्य ऐसा क्यों है ? अथवा मित्र ! इस तीव्र यातनाको सहकर तुम अनन्त अक्षय पुण्यके भागी बन रहे हो।

गौतम–अच्छा तो अब जाता हूँ।

चिरं०–गुरुजी ! आप एक सौ वार "जाता हूँ, जाता हूँ" कह चुके हैं। इस वारंवार "जाता हूँ–जाता हूँ" कहनेका अर्थ मै खूब जानता हूँ–आपकी जानेकी इच्छा नहीं जान पडती। अगर आपकी जानेकी इच्छा नहीं है, तो कौन जानेके लिए आपको अपने सिरकी कसम रखा रहा है ? यहीं रहते क्यों नहीं ?

गौतम–नहीं चिरंजीव, चलो, माधुरी कहाँ है ?

चिरं०–वह बाहर द्वारपर खड़ी हुई रो रही है–जो सदासे स्त्रीजातिका प्यारा काम है !

गौतम–अच्छा तो चलता हूँ ! (जनकसे) मित्र, जाता हूँ !

ज०–अच्छा जाइए मित्रवर !

गौतम–एक वार–बस और एक वार पुत्रका मुँह चूम लूँ।–बेटा प्राणोंसे प्यारे ! अपने पिताको, क्या तू और एक वार अपने पिताको पुकारने न देगा ? (शतानंदका मुख चूमता है) बेटा ! एक वार "पिता" कहकर पुकार, मै सुने जाऊँ।

शता०–पिता ! पिता !

गौतम—ना, मै न जासकूँगा । गृहस्थ होकर यहीं रहूँगा ।

चिरं०—सो तो मै पहलेहीसे जानता था । (बैठ जाता है)

गौतम—हा अबोध बालक ! हा निष्ठुर ! बेटा ! बेटा ! तूने अपने अमृतमय स्वरसे मुझे क्यों पुकारा ?—अब कहां जाऊंगा ?—वत्स ! प्रिय ! प्राणाधिक ! तूने यह क्या किया ?—नहीं, बस, जाता हूं । बालक ! मायावी शिशु ! तू मेरा कौन है ? कोई नही है । (वेगसे प्रस्थान ।)

चिरं०—लेकिन ऐसा तमाशा तो मैंने कभी नहीं देखा । (प्रस्थान ।)

जनक—गौतम ! इस जगतमें तुम्हारी तुलना नहीं है ।—बेटा शतानन्द ! चलो, अन्त पुरमें चलो ।　　　(दोनोंका प्रस्थान ।)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—राजा दशरथकी सभा ।

समय—प्रातःकाल ।

[दशरथ, विश्वामित्र, वशिष्ठ, राम और लक्ष्मण ।]

विश्वा०—महाराज, दोनों कुमार मुझे दे दीजिए ! तुमसे फिर इनके लिए प्रार्थना करता हूँ ।

दशरथ—तो मै क्या यह समझूँ कि अमित प्रभाववाले महर्षि विश्वामित्र राक्षसोंका अत्याचार मिटानेमें असमर्थ हैं ?

विश्वा०—ब्राह्मण अगर जप-तप-पूजा छोडकर समर करेंगे तो फिर तुम ही बताओ, क्षत्रियके लिए क्या काम रह जायगा ?

दश०—आपका कहना सच है प्रभू । मै आपके साथ अपना एक

सेनापति भेजता हूँ। अथवा मैं खुद चलकर युद्धमें राक्षसोंको मारूँगा ये कुमार अभी बालक हैं; प्रचंड राक्षसोंके साथ कैसे युद्ध करेंगे? क्षमा कीजिए।

विश्वा०–राजन्! मै यह क्या सुन रहा हूँ? क्षत्रिय राजा युद्ध भूमिमें अपने बालकोंको भेजते इतना कातर भाव दिखा रहा है? अच्छी बात है! तुम क्षत्रिय हो?

दश०–भगवन्! ये अभी बालक हैं।

विश्वा०–वारंवार वही एक बात–"ये बालक हैं!" दशरथ! क्षत्रियका बालक जिस दिनसे हाथमें शस्त्र पकड़ सकता है, उस दिनसे उसका काम युद्ध ही होता है, युद्ध ही उसकी कामना है, सोते और जागते उसे युद्धहीका ध्यान रहता है–यह क्या तुम नहीं जानते?

दश०–महर्षि! ये दोनों बालक अभी युद्धविद्यामें निपुण नहीं हैं।

विश्वा०–हा! धिक्कार है! "क्षत्रियका बालक बारह वर्षकी अवस्थामें युद्धशास्त्रकी शिक्षासे खाली है"–यह कहते अपमानसे तुम्हारी जीभ सिकुड़ नहीं गई? लज्जासे मुँह लाल नहीं हो आया?

दश०–ऋषिवर, आप जानते हैं, बहुत दिनोंतक तप करके मैंने इन को पाया है।

विश्वा०–महाराज! इन बहानोंको रहने दो। स्पष्ट कहो–दोगे नही दोगे?

वशिष्ठ–राजन्! ऋषिकी प्रार्थना पूरी करो। यह महर्षि स्वयं सहायक हैं, तुम्हारे पुत्रोंके लिए कुछ भय नहीं है।

दश०—गुरुदेव! तो फिर वही हो।—मुनिवर, इन मेरे प्राणाधिक प्रिय कुमारोंको आप ले जाइए। प्रभु, आज मैं अपने इन आंखोंके तारे प्यारे पुत्रोंको आपके हाथमें सोंपता हूं। राम और लक्ष्मणको ले जाइए।

विश्वा०—राजन्, कृतार्थ हो गया। मुझे मालूम है कि पिताके अत्यन्त अधिक स्नेहके कारण दोनों कुमार अभीतक शस्त्रविद्यामें निपुण नहीं हो सके हैं। इसीसे इस समय मैंने तुमको झिडका भी। महाराज, तुम अत्यन्त अधिक स्नेहके कारण पिताके कर्तव्यपर ध्यान नहीं देते। यह तुम्हे नही सोहता। मै तुमसे तुम्हारे सेनापतिकी सहायता ही मांगने आया था। लेकिन यहाँ आकर देखा तो जान पड़ा, तुम्हारे दोनों कुमार अभीतक अस्त्र-शस्त्रकी विद्यासे खाली हैं। राजन्, विना युद्ध किये युद्धकी शिक्षा प्राप्त करना असंभव है। इसीसे मै तुमसे राम और लक्ष्मणको माँगता हूँ। कुछ चिन्ता नही है, मै राम लक्ष्मणको शस्त्रकौशलकी शिक्षा दूँगा और इनके निकट रहूँगा। ये शीघ्र ही सकुशल अपने पिताकी गोदमें आजायँगे।

दश०—ऋषिवर, वही हो। (स्वगत) भरत और शत्रुघ्न तो मेरे पास रहेगे। भाग्यवश वे दोनों कुमार यहाँ मौजूद नहीं थे। उनका होना ऋषिको मालूम नहीं है—यही कुशल है। (प्रकट) अच्छी बात है। आप इन दोनोंको ले जाइए। (सबका प्रस्थान।)

तीसरा दृश्य ।

स्थान–वनके भीतरकी राह ।

समय–गोधूलि ।

[चिरजीव और माधुरी ।]

चिरं०–तू मेरा साथ नहीं छोड़ेगी ?

माधुरी–नहीं स्वामी ।

चिरं–(गाता है—)

हायरे संसार, सब ही असार, विधिकी महा चूक । हायरे० ॥
'अस्ति' देखते 'नास्ति' बेशी, सृष्टि देखते शून्य ।
ढेरके ढेर पापके भीतर कितना सा है पुण्य ॥
प्रकाशसे है अधिक अँधेरा, स्थलसे ज्यादा सिंधु ।
महामृत्युके बीच जन्म है छोटा सा जलबिंदु ॥
सत्य देखते मिथ्या बेशी, धर्म देखते तंत्र ।
भक्ति देखते कीर्तन बेशी, पूजासे है मंत्र ॥
फूल देखते पत्ते बेशी, मणिसे ज्यादा कर्दम ।
स्वल्प शांतिके बाद प्रियाका तर्जन गर्जन हर्दम ॥

चिरं०–अब भी कहता हूँ—तू लौट जा ।

माधुरी–क्यों, मै तुम्हारा क्या अनिष्ट करती हूं ?

चिरं०–अनिष्ट ?–सब अनिष्ट ही तो कर रही है । तू धीरे धीरे पैरोंसे चिमटी जा रही है । लौट जा ! नहीं जायगी ?

माधुरी–नहीं ।

चिरं–(हताश भावसे लंबी साँस लेकर फिर गाता है—)

ब्रह्माजीसे विष्णु बड़े हैं, ब्रह्मा देते माँगा।
विष्णुदेवसे किन्तु अभी मैं रखता हूँ कुछ आशा ॥
भर्त्तासे है भार्या ज्यादा, भर्ता घरका कर्ता।
मगर रसोईके बारेमें स्त्री भर्तारी भर्ता ॥
शक्ति देखते भक्ति बड़ी है, भक्तकी अपनी शक्ति।
शक्ति भक्तको देते रहते अजी महत्तर व्यक्ति ॥
पत्नीसे है साली बढ़कर, बहन न जिस नारीके।
वह है त्यागयोग्य शास्त्रोंमें, वचन बड़े ऋषियोंके ॥

चिरं०—फिर भी नहीं गई? बात क्यों नहीं सुनती? यही तो
समें दोष है।

माधुरी—यह आज्ञा न करो प्रभू! तुम मेरे स्वामी हो, मैं तुम्हारी
ी हूँ। जहाँ तुम्हारी गति है, वही मेरी गति है। शास्त्र कहता है—
ीको छायाकी तरह पतिके पीछे चलना चाहिए।

चिरं०—तो कहना चाहिए कि शास्त्रके अनुसार पतिकी अवस्था
हुत ही शोचनीय है। जहाँ वह जायगा, वहीं उसके साथ पहरा रहेगा?
रा भी छुट्टी नहीं पावेगा? पतिने क्या पूर्वजन्ममें ऐसे भयानक पाप
किये थे? अब भी लौट जा! नहीं तो अच्छा न होगा—कहे देता हूँ।
नहीं जायगी?

माधुरी—नहीं।

चिरं—(फिर गाता है—)

बाँह देखते पीठ भली है, क्रोध देखते क्रन्दन।
दास्यभावसे कहीं भला है, यारो फाँसी-बन्धन ॥
शत्रु खुलासा भला, न अच्छा कपटी जीका मित्र।
असल प्रेमसे भला काव्यमें लिखा प्रेमका चित्र ॥

गुप्त प्रेमका फल है पीछे बहुत ज़रूरी दंड ।
व्याह करे जो वह है भारी मूर्ख भंड पाखंड ॥
'मगर' कहीं अच्छा पत्नीसे, कहते हैं सब शास्त्री ।
चाहे 'मगर' पकड़ कर छोड़े, पकड़ छोड़ती ना स्त्री ॥

चिरं०–देख, तू क्या भूतकी तरह मेरे सिरपर सवार ही रहेगी? अगर अब भी नहीं लौट जायगी तो इसी जगह तेरा गला घोटकर तुझे मार डालूँगा और कहीं गढा खोदकर गाड दूँगा। महर्षि गौतम बहुत आगे बढ गये हैं। सन्ध्या हो आई है। रातमें कोई आदमी भी आता-जाता नहीं देख पडता।

माधुरी–मैने ऐसा क्या अपराध किया है स्वामी ?

चिरं–तू पिशाची डाइन है। तू अपने आग्रह-आदरमें, स्नेहमें, अपनीकी हुई सेवामें, दिनरात मुझे फँसाना चाहती है। मुझपर जादू करती है, टोना-मंत्र करती है। मेरा सर्वनाश करनेकी तदबीर कर रही है। बीच बीचमें मुझे जान पडता है, जैसे मैं तुझे कुछ कुछ प्यार करने लगा हूँ। पहले तो मै तुझे प्यार नही करता था ?

माधुरी–सो अगर कुछ प्यार करने लगे हो तो उसमें हर्ज क्या है? अगर स्वामी प्यार करे तो इसमें क्या कुछ दोष है ?

चिरं०–फिर बहस शुरू कर दी।–नहीं लौटेगी ?

माधुरी–नहीं।

चिरं०–(सहसा) अरे बापरे बाघने खा लिया—

(माधुरीको धक्का देकर गिरा देता है और आप भाग जाता है।)

चौथा दृश्य ।

स्थान—कैलासपर्वतका शिखर ।

समय—सन्ध्याकाल ।

[अकेली अहल्या ।]

अहल्या—बहुत स्थानोंमें घूमी !—पुर, जनपद, मैदान, कुंज, उपवन, पर्वत शिखर आदिमें फिर आई । मगर सुख नहीं पाया !—सुख कहाँ है ?—नित्य हृदयको फाडकर एक मर्मभेदी लंबी साँस निकलती है । आकुल अधीर चित्तको अनन्त विषाद आकर छालेता है । मिलनकी तीव्र मदिरा पीकर क्षणभरके लिए यह तीक्ष्ण यन्त्रणा भूल जाती हूं । किन्तु तत्कालही फिर वही पापकी विराट् मूर्ति रह रहकर आंखोंके आगे नाचने लगती है । सहसा आँख उठाकर देखती हूँ तो सामने एक भयानक गढा देख पडता है, जिसकी थाह नहीं है, जिसमें प्रकाश नहीं है, जिसमे शब्द नही है, जिसका कराल मुख नित्य निरन्तर मुझे ग्रसनेके लिए फैला रहता है ।—यही परिणाम है ! इसीके लिए मुझ पापिनने घृणित व्यभिचार और पुत्रकी हत्या की ! वह बालकके अंतिम रोनेका शब्द अभी तक मेरे कानोंमें गूँज रहा है । "मा, मा"—यह क्या ? मुझे पुत्रने पुकारा ! ना, यह प्रतिध्वनि है ! यह कल्पना है ! यह कल्पना है ? ना, यह कल्पना नहीं है ।—धरतीके नीचेसे, आकाशके छोरसे, यह रोनेका शब्द आ रहा है । दिनके प्रखर प्रकाशको ढककर, रातके गहरे अन्धकारको और भी घना करके, सुस्वर संगीतको छाप-कर—कर्कश बनाकर, पर्वतोंको फोडकर, शून्य आकाशको फाडकर

यह रोनेका शब्द निकल रहा है। वह करुण कातर रुँधा हुआ शब्द—वह हाय उठाकर नीरव अनुनय, वह माताके आगे हाथ उठाकर सन्तानकी निष्फल जीवन-भिक्षा—ओ. !—अहो जगदीश्वर! कामके प्रलोभनमें पडकर नारी इतनी अंधी हो जाती है! माता इतनी निर्मम हो जाती है!—वह फिर पुत्रने पुकारा क्या? आती हूँ बेटा! आज उस पापके दागको अपने रक्तसे धोऊँगी। यह मेरे पास कटार है। हे चमचमाते हुए, तीक्ष्ण, सुंदर, क्षुद्र शस्त्र! तू इतना क्षुद्र होने पर भी इतना भयंकर है! आज प्रिय प्रणयीके समान मेरी छातीसे तू लग जा प्यारे शस्त्र! अहल्याका गर्म रुधिर पी ले—संसारसे कलंकिनी अहल्याका नाम मिटा दे!—शतानंद बेटा! फिर तूने पुकारा? आती हूँ, ठहर जा—

(छातीमें कटार मारना चाहती है। पीछेसे मदन आकर उसका हाथ पकड़ लेता है।)

अहल्या—तुम कौन हो?

मदन—क्षमा करना देवी! तुम्हारे पैरोंके नीचे यह शस्त्र रक्खे देता हूँ। इसके बदले यह अमृतसे भरा हुआ पात्र लो और लाल लाल होठोंसे । लो।

[रतिका प्रवेश।]

रति—क्या करती है ओ मूढ नारी! यह वसन्त ऋतु है, ऐसी ...ह॰ वायु चल रही है; वह स्वच्छ नील आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा ... रहा है, यह फूले हुए वृक्षोंसे सुशोभित निकुंज निकट है। मरना, यह स्थान और समय क्या आत्महत्या करनेके योग्य है? छी छी. !—हाँ जब मलिन आकाशसे पानी गिर रहा हो, जब सूर्यके प्रकाशमें

न्य कीचडका दिन हो, बिल्कुल ही नीरस तीसरा पहर हो, कोयल न
लती हो, गर्म जलकणयुक्त वायु लंबी सासें ले रही हो, सूने मकानों
और खेतोंमे पानी भरा हो, मार्गोंमें कीचड हो, तब आत्महत्या करो
। कोई हर्ज नहीं। कमसे कम उस समय आत्महत्या करना इतना
खा और इतना असंगत किसीको नहीं जान पड़ेगा।

मदन—यह वसंतका समय है, तुम भी सौन्दर्यकी राशि और नवा-
ोमें चूर हो। इस समय तुम आत्महत्या कर रही हो? यह क्या
ोहता है? क्या सहा जायगा?—यह तो कोरी दिल्लगी जान पडती
—यह तो बहुत ही असभ्यताका काम है सुन्दरी!

रति—सखी, मरना तो एक दिन होगा ही। मौत तो आप ही आती
, उसे बुलाना नहीं पडता। कितने दिनकी ज़िंदगी है? जो संक्षिप्त
उसे और भी संक्षिप्त करना किस लिए? ऐसा करनेकी क्या ज़रूरत
? जबतक जीवन है, तबतक जहाँतक संभव हो—जिस तरह संभव हो—
भोग कर लो।

अहल्या—प्रिय मित्र और प्रिय सखी! तुमने सच कहा। लाओ
मदिराका पात्र—जली जा रही हूँ—लाओ मदिराका पात्र। पीकर यह
तीव्र और तीक्ष्ण हृदयकी ज्वाला बुझाऊँ। (अमृत-मदिराका पात्र लेकर
पीती है) और लाओ! (लेकर पीती है) और लाओ! (लेकर पीती
है) सच कहा सखी "भोग कर लो।" बादको? उसके बाद? जो
होना होगा सो होगा। भोग कर लो।—फिर शतानंदने पुकारा? जा जा—
तू जा मूढ बालक! पुत्र है? कहाँका पुत्र?—पुत्र नही है; पुत्र कभी
नहीं था। कौन कहेगा कि मैने पुत्रकी हत्या की है? मैंने पुत्रकी हत्या

नहीं की। ढालो मदिरा और पियो। (फिर लेकर पीती है) नाचो और गाओ, यही ज़िंदगीका मज़ा है!

(मदन और रति गाते हैं—)

फूल रहे हे फूल सुहाये, गगन चंद्र है उदित मनोहर।
उड़े जा रहे उजले बादल, नील वायुमंडलके ऊपर।
करे कलोल कोकिला वनमें, रहरहकर बोले मीठे स्वर॥
सिरिस आमकी मंजु मंजरी महक रहीं, है मस्त चराचर।
उसे लिये यह हवा आरही, मंद चालसे अठखेली कर॥
ऐसे दिनमें बैठ इस जगह, यह उमंग ऐसे अवसर पर।
मनभाये प्यारे बिन कैसे रहा जाय जीतेजी दमभर॥

अह०—बहुत अच्छा गान है! बहुत अच्छा गान है! आहा—वाहवाह! प्राणेश्वर! कहाँ हैं प्राणेश्वर? मदन, मेरे प्राणनाथको लाकर मुझसे मिला दो—हृदयमें लालसाकी प्रचंड अग्नि प्रबल हो रही है। रति-पति, जाओ, उन्हें बुला लाओ।

[इन्द्रका प्रवेश।]

अह०—(आग्रहके साथ) निठुर प्रणयी! अहल्याको छोड़कर अब कहाँ थे? आओ प्रियतम—मेरे पास आओ! आज इतने चिन्तातु[र] ..ल क्यों देख पडते हो?

[इ]न्द्र—कारण तो मुझे भी नहीं मालूम।

अह०—चिन्ताको चित्तसे दूर करो। मैं तुम्हारे पास हूँ, फिर भ[ी] ..र। मुखमण्डल मलिन है? देखो, कैसी मनोहर पूर्णिमाकी चाँदन[ी] ..ी हुई है। जैसे चन्द्रमाके संयोगसे रात हँस रही है। प्रियतम! [वह] दिन याद है?

इन्द्र—कौन दिन ?

अह०—जिस दिन आकर तुम मेरे सामने खडे हुए थे हे सुंदर पात्र ! क उसी जगह, शान्त शुभ्र स्वच्छ चंद्रमा नीले आकाशमें था, और ही चमकीला तारा चंद्रमाके समीप चमक रहा था। ऐसी ही हरीभरी थ्वी थी। ऐसी ही स्निग्ध वसन्त-वायु धीमी चालसे चलकर अपने द मधुर उच्छ्वाससे हृदय शीतल कर रही थी। इसी तरह दूर पर—

इन्द्र—उस दिनकी बातें रहने दो। मै इस समय तुमसे एक जरूरी ात कहने आया हूँ।

अह०—क्या ? क्या खबर है ?

इन्द्र—अहल्या ! मुझे इसी घड़ी तुम्हें छोडकर जाना होगा।

अह०—कहाँ जाओगे ?

इन्द्र—स्वर्गको लौट जाऊँगा।

अह०—स्वर्गको ? क्यों ? क्या यही हमारा स्वर्ग नहीं है ?—यहीं हाथसे हाथ, होठसे होठ, छातीसे छाती मिलाकर सुखभोग करो। सिरके ऊपर अनन्त आकाश फैला है, पैरोंके नीचे विश्वका मधुर उच्छ्वास है—क्या यह स्वर्ग नही है ? नही नहीं, नाथ, सृष्टिसे स्वर्गराज्यका नाम लुप्त हो जाय। मै स्वर्ग नही जाना चाहती।

इन्द्र—तुम नहीं जाओगी। मै अकेला ही जाऊँगा।

अह०—अकेले ? अकेले जाओगे ?—और—मै ?

इन्द्र—तुम—मिथिलापुरीको लौट जाओ—अपने आश्रममें रहो।

अह०—यह तुम्हारी अपूर्व दिल्लगी है !

इन्द्र—कौन दिन ?

अह०—जिस दिन आकर तुम मेरे सामने खड़े हुए थे हे सुंदर पाप ! ठीक उसी जगह, शान्त शुभ्र स्वच्छ चंद्रमा नीले आकाशमें था, और यही चमकीला तारा चंद्रमाके समीप चमक रहा था। ऐसी ही हरीभरी पृथ्वी थी। ऐसी ही स्निग्ध वसन्त-वायु धीमी चालसे चलकर अपने मंद मधुर उच्छ्वाससे हृदय शीतल कर रही थी। इसी तरह दूर पर—

इन्द्र—उस दिनकी बातें रहने दो। मै इस समय तुमसे एक दारुण बात कहने आया हूँ।

अह०—क्या ? क्या खबर है ?

इन्द्र—अहल्या ! मुझे इसी घड़ी तुम्हें छोड़कर जाना होगा।

अह०—कहाँ जाओगे ?

इन्द्र—स्वर्गको लौट जाऊँगा।

अह०—स्वर्गको ? क्यों ? क्या यही हमारा स्वर्ग नहीं है ?—यहीं हाथसे हाथ, होठसे होठ, छातीसे छाती मिलाकर सुखभोग करो। सिरके ऊपर अनन्त आकाश फैला है, पैरोंके नीचे विश्वका मधुर उच्छ्वास है—क्या यह स्वर्ग नहीं है ? नहीं नहीं, नाथ, सृष्टिसे स्वर्गराज्यका नाम लुप्त हो जाय। मै स्वर्ग नहीं जाना चाहती।

इन्द्र—तुम नहीं जाओगी। मै अकेला ही जाऊँगा।

अह०—अकेले ? अकेले जाओगे ?—और—मै ?

इन्द्र—तुम—मिथिलापुरीको लौट जाओ—अपने आश्रममें रहो।

अह०—यह तुम्हारी अपूर्व दिल्लगी है !

नहीं की। ढालो मदिरा और पियो। (फिर लेकर पीती है) न
और गाओ, यही ज़िंदगीका मज़ा है!

(मदन और रति गाते हैं—)

फूल रहे हैं फूल सुहाये, गगन चंद्र है उदित मनोहर।
उड़ जा रहे उजले बादल, नील वायुमंडलके ऊपर।
करे कलोल कोकिला वनमें, रहरहकर बोले मीठे स्वर॥
सिरिस आमकी मंजु मंजरी महक रहीं, है मस्त चराचर।
उसे लिये यह हवा आरही, मंद चालसे अठखेली कर॥
ऐसे दिनमें बैठ इस जगह, यह उमंग ऐसे अवसर पर।
मनभाये प्यारे बिन कैसे रहा जाय जीतेजी दमभर॥

अह०–बहुत अच्छा गान है! बहुत अच्छा गान है! आह
वाहवाह! प्राणेश्वर! कहाँ हैं प्राणेश्वर? मदन, मेरे प्राणनाथको ला
मुझसे मिला दो–हृदयमें लालसाकी प्रचंड अग्नि प्रबल हो रही है। र
पति, जाओ, उन्हें बुला लाओ।

[इन्द्रका प्रवेश।]

अह०–(आग्रहके साथ) निष्ठुर प्रणयी! अहल्याको छोड़कर अ
कहाँ थे? आओ प्रियतम–मेरे पास आओ! आज इतने चिन्त
ं क्यों देख पडते हो?

न्द्र–कारण तो मुझे भी नहीं मालूम।

अह०–चिन्ताको चित्तसे दूर करो। मैं तुम्हारे पास हूँ, फिर
ा मुखमण्डल मलिन है? देखो, कैसी मनोहर पूर्णिमाकी चाँद
ल हुई है। जैसे चन्द्रमाके संयोगसे रात हँस रही है। प्रियतम
वह दिन याद है?

नहीं की। ढालो मदिरा और पियो। (फिर लेकर पीती है) नाचो और गाओ, यही ज़िंदगीका मज़ा है!

(मदन और रति गाते हैं—)

फूल रहे हैं फूल सुहाये, गगन चंद्र है उदित मनोहर।
उड़े जा रहे उजले बादल, नील वायुमंडलके ऊपर।
करे कलोल कोकिला वनमें, रहरहकर बोले मीठे स्वर॥
सिरिस आमकी मंजु मंजरी महक रहीं, है मस्त चराचर।
उसे लिये यह हवा आरही, मंद चालसे अठखेली कर॥
ऐसे दिनमें बैठ इस जगह, यह उमंग ऐसे अवसर पर।
मनभाये प्यारे बिन कैसे रहा जाय जीतेजी दमभर॥

अह०—बहुत अच्छा गान है! बहुत अच्छा गान है! आहा-वाहवाह! प्राणेश्वर! कहाँ हैं प्राणेश्वर? मदन, मेरे प्राणनाथको लाकर मुझसे मिला दो—हृदयमें लालसाकी प्रचंड अग्नि प्रबल हो रही है। रति-पति, जाओ, उन्हें बुला लाओ।

[इन्द्रका प्रवेश।]

अह०—(आग्रहके साथ) निठुर प्रणयी! अहल्याको छोड़कर अब कहाँ थे? आओ प्रियतम—मेरे पास आओ! आज इतने चिन्तासे ...ल क्यों देख पड़ते हो?

...न्द्र—कारण तो मुझे भी नहीं मालूम।

अह०—चिन्ताको चित्तसे दूर करो। मैं तुम्हारे पास हूँ, फिर भी ...र। मुखमण्डल मलिन है? देखो, कैसी मनोहर पूर्णिमाकी चाँदनी ...ली हुई है। जैसे चन्द्रमाके संयोगसे रात हँस रही है। प्रियतम! वह दिन याद है?

इन्द्र—कौन दिन ?

अह०—जिस दिन आकर तुम मेरे सामने खड़े हुए थे हे सुंदर पाप! ठीक उसी जगह, शान्त शुभ्र स्वच्छ चंद्रमा नीले आकाशमें था, और यही चमकीला तारा चंद्रमाके समीप चमक रहा था। ऐसी ही हरीभरी पृथ्वी थी। ऐसी ही स्निग्ध वसन्त-वायु धीमी चालसे चलकर अपने मंद मधुर उच्छ्वाससे हृदय शीतल कर रही थी। इसी तरह दूर पर—

इन्द्र—उस दिनकी बातें रहने दो। मै इस समय तुमसे एक दारुण बात कहने आया हूँ।

अह०—क्या? क्या खबर है?

इन्द्र—अहल्या! मुझे इसी घड़ी तुम्हें छोड़कर जाना होगा।

अह०—कहाँ जाओगे?

इन्द्र—स्वर्गको लौट जाऊँगा।

अह०—स्वर्गको? क्यों? क्या यही हमारा स्वर्ग नहीं है?—यहीं हाथसे हाथ, होठसे होठ, छातीसे छाती मिलाकर सुखभोग करो। सिरके ऊपर अनन्त आकाश फैला है, पैरोंके नीचे विश्वका मधुर उच्छ्वास है—क्या यह स्वर्ग नही है? नहीं नहीं, नाथ, सृष्टिसे स्वर्गराज्यका नाम लुप्त हो जाय। मै स्वर्ग नहीं जाना चाहती।

इन्द्र—तुम नही जाओगी। मै अकेला ही जाऊँगा।

अह०—अकेले? अकेले जाओगे?—और—मै?

इन्द्र—तुम—मिथिलापुरीको लौट जाओ—अपने आश्रममें रहो।

अह०—यह तुम्हारी अपूर्व दिल्लगी है!

इन्द्र—दिल्लगी नहीं है । सच कहता हूँ । अहल्या, क्या तुमसे कहना होगा ? तुम समझीं नहीं ?

अह०—क्या समझूँगी ? कुछ नहीं समझी ।

इन्द्र—अच्छा तो सुनो। इतने दिन तुमसे सुखभोग करके मेरी लालसा मिट गई ! अब मै वह सुख नहीं चाहता ! इन दिनोंका उदास संभोग और शिथिल आग्रह देखकर तुम प्रेमप्रवाहके उतारको नहीं समझ सकी ? लालसाकी आग बुझ गई—प्यास मिट गई ।

अह०—यह क्या मैं ठीक सुन रही हूँ ? पर्वत, तुम सुन रहे हो ? वृक्ष-गुल्मलता आदि, तुम सुन रहे हो ? वायु, झरने, नील असीम आकाश आदि, तुम सुन रहे हो ? " लालसाकी आग बुझ गई ? प्यास मिट गई ? " नहीं जानती—मै जाग रही हूँ या सो रही हूँ । स्वप्न देख रही हूँ क्या ? "प्यास मिट गई ?" प्रभू, जगत्में क्या कभी प्रेमकी प्यास भी मिटती है ? मेरी प्यास तो नहीं मिटी। देवराज, सच कह रहे हो ? आज तुम्हारी प्रेमकी प्यास मिट गई ?

इन्द्र—अहल्या, तुम अब बालिका नहीं हो । क्या तुम नहीं समझीं कि मै अब तक जिस बन्धनमें बँधा हुआ था, वह प्रेमका नहीं, लालसाका बंधन था ?

अह०—सच ? यह सच कहते हो ? प्रेम नहीं था ?—वह लालसा थी ? मै ठीक सुन रही हूँ ? ओ. ! मेरी समझमें कुछ नहीं आता । तुम इन्द्र हो ? और मै अहल्या हूँ ?—यह बात—यहाँ तक ठीक है ? या सब स्वप्न है ? कुछ समझमें नहीं आता ।—ओ !—सिर घूम रहा है ।

(एक वृक्षसे पीठ लगाकर खड़ी हो जाती है ।)

इन्द्र—अहल्या, लौट जाओ!

अह०—कहाँ ?

इन्द्र—अपने देशको ।

अह०—अपने देशको ? किसके पास ?

इन्द्र—भद्रे, इतने दिनोंके बाद गौतमऋषि आश्रमको लौट आये हैं ।

अह०—क्या कहते हो ? किसका नाम ले रहे हो लंपट ? वह पवित्र
ाम इस जीभपर न लाना—जीभ भस्म हो जायगी ! उस पवित्र नामको
स गंदी जीभपर लाकर कलुषित मत करो । मै अचेत और पागल हो
ाऊँगी ।—तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, भिक्षा माँगती हूँ, केवल वह नाम
त लो ।—उनके पास लौट जाऊँगी ? सच ? धन्य हो इन्द्र ! धन्य है
ुम्हारी समझ ! यह हास्यकर वात तुमसे कैसे कही गई ? लंपटके पाप-
मय स्पर्शसे विना किसी संकोचके महर्षिके पवित्र चरणोंमें लौट जाऊँगी ?
उन महर्षिकी पवित्र रसना तुम्हारा जूठा जल पियेगी ?—तुम नहीं
जानते ?—जिस दिन घृणित अभिप्रायसे वह पवित्र आश्रम छोड़कर मैं
चली आई, उसी दिन उस पुण्यभूमिमे पैर रखनेका अधिकार भी छूट
गया । जिस दिन पापी लंपटका हाथ पकड़ कर मै नरकके भयानक गढ़ेमें
उतर गई उसी दिन स्वर्गमे प्रवेश करनेका अधिकार जाता रहा !—

इन्द्र—अहल्या, अहल्या, सुनो—

अह०—उसी दिनसे उस नरकमें मरणपर्यन्तके लिए तुम ही मेरे सर्वस्व,
हृदयवल्लभ, जीवनधन हो गये । अपनेको घृणा करती हूँ, तुम्हारे साथ रह-
नेको सैकड़ों धिक्कार देती हूँ—तो भी, तो भी तुमको प्यार किया है, तुमको

प्यार करती हूँ, और तुमको प्यार करती रहूँगी। जीवन या मरण
तुम ही मेरे प्राणेश्वर हो।

इन्द्र—अहल्या, यह युक्ति-तर्क सब वृथा है। मै स्वर्गका स्वाम
देवेन्द्र हूँ, और तुम मानवी हो। मेरे और तुम्हारे बीच प्रेमका सं
होना भी क्या कभी संभव है?

अह०—अगर असंभव था तो तुमने फिर क्यों एक कुलवधूको बहक
कर कलंकित किया? क्यों उसे कहींका नहीं रक्खा? फिर क्यों मु
उस शान्त पुण्य आश्रमसे खींचकर ले आये? मै अपने क्षुद्र सु
दुःखको लेकर वहाँ पड़ी हुई थी। तुम उस पूर्णचन्द्रयुक्त सुन्दर पूर्णि
-माकी रातको, स्निग्ध संध्याकालके पवनके झोकोंमें, कोकिलाके कुहू
शब्दमें, क्यों मुझे देख पड़े? कुचक्र रचकर तुमने मुझे क्यों बहकाया
फंदा डालकर क्यों वनकी मृगीको फँसाया? दो दिन आदर करके, अगोंप
हाथ फेरकर, पीछेसे गलेपर छुरी फेरनेके लिए, क्यों उसे अपने जाल
फँसाया?

इन्द्र—तुम्हारा यह सब प्रलाप बिल्कुल निष्फल है!—अहल्या, लौ
ओ। यही तुम्हारे लिए अच्छा है।

अह०—(दमभर सोचकर) सुनो प्रियतम! मुझे तुमसे कुछ कहना
। (हाथ पकड़ती है)

इन्द्र—छोड़ो—हाथ छोड़ो!

अह०—यहाँ तक जी हट गया? अच्छा तो जाओ निर्मम निठुर!
जाओ, स्वर्गको लौट जाओ।—अहल्याको भूल जाओ। ना देवेन्द्र,
उसे नहीं भूल सकोगे। जाओ, स्वर्गको लौट जाओ। लेकिन याद रक्खो

इन्द्र, मेरी स्मृति तुम्हारे हृदयमे रक्तके साथ मिलकर सदा बनी रहेगी। जाओ, जाओ—सोते, जागते, चलते-फिरते, सदा नित्य मेरी भयानक छाया देखकर तुम कॉप उठोगे। जाओ—स्वर्गको लौट जाओ। मैं अनन्त दुःस्वप्नकी तरह तुम्हारे अनन्त जीवनके साथ रहूँगी।

इन्द्र—अच्छी वात है अहल्या ! तो फिर मै जाता हूँ।

(जाना चाहता है)

अह०—(सहसा इन्द्रको पकड़कर, पैरोंपर गिरकर) कहॉ जाते हो ? जाना नही प्रियतम ! अभी तक मै युवती हूँ। तुमने दसवर्ष तक अवश्य इस रूपकी तीव्र मदिराको पिया है, लेकिन पात्रको देखो, अभी और बाकी है, मै अभी और भी दे सकती हूँ। ऑख उठाकर इन घने लंबे काले चिकने केशोंको देखो, इन उज्ज्वल कुंदकली ऐसे दॉतोंको देखो, इस सुंदर सुगठित देहलताको देखो, इन लालसाविह्वल विशाल नेत्रोंको देखो, इन लाल लाल रसीले होठोंको देखो, इन पीन उन्नत पयोधरोंको देखो। जितनी रूपकी मदिरा चाहोगे उतनी दूँगी; जितनी चाहो, पियो।—पर जाओ नही।

इन्द्र—तुम्हारा अनुनय-विनय करना बिल्कुल निष्फल है। मैं जाता हूँ।

अह०—सच ? जाओगे ही ? कहॉ जाओगे धूर्त ? और किसी कुल-कामिनीको छलने जाओगे ? मेरे मुँहमे कलंककी कालिमा पोतकर सुखी होओगे ? मूर्ख-निर्मम-लंपट ! मुझे कहींका न रखकर—नरकमें ढकेल कर स्वर्गको जाओगे ? जाओगे ? जाओगे ? लो, जाओ इन्द्र—जाओ, लेकिन स्वर्गको नही—यमपुरीको !

(कमरसे छुरी निकालकर इन्द्रके कंधेमें भरपूर भोंक देती है ।)

इन्द्र–ओः ! (गिर पड़ता है) क्या किया पिशाची राक्षसी

मदन०—शास्त्रमें लिखा है "य· पलायति स जीवति" नाना–भागो

(मदन और रतिका भाग जाना ।)

अह०–इसी हाथसे मैंने अपने पेटसे पैदा बच्चेको मारा है—गला घो कर उसकी नसोंमें वह रहे गर्म रक्त प्रवाहकी शीघ्र गतिको बंद कर दि है । और, आज उसी हाथसे, इस खूनसे, उस खूनका बदला चुका है ! देवराज—इतने दिनोंपर आज तुमने प्रेमिका रमणी देख ली देखो आज वही रमणी भैरवी है !–हा· हाः ! यहीं सड़ो–यही मरो वनके गिद्ध और सियार तुम्हारे शरीरको खाकर तृप्त हों ।

(पागलकी तरह अट्टहास करते करते प्रस्थान ।)

इन्द्र–पिशाची–हत्यारिन–ओ· !–

[गौतम ओर चिरजीवका प्रवेश ।]

चिरं०–अरे यह कौन पड़ा है बिल्कुल हिलता डुलता नहीं–सा शरीर रक्तसे नहाया हुआ है ! मारनेवाला कहाँ भाग गया ?

गौतम–देखूँ, नाड़ी देखूँ । (नाडी देखकर) अभी तक जीि । आश्रममें उठाकर ले चलो चिरंजीव । चेष्टा करके देखूँ–शायद ब चा सकूँ ।

(दोनों इन्द्रको उठाकर ले जाते हैं ।)

चौथा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान–शचीका महल।

समय–सन्ध्याकाल।

[देवियोंके साथ शचीदेवी बैठी हैं।]

शची–सो मै क्या करूँ ?

अंजना–सच तो है, तुम क्या करोगी ?

कालिंदी–लेकिन बात तो अच्छी नही है। पॉच सालसे तुम्हारे वामीका पता नही है।

अंजना–पॉच पॉच साल ग़ायब रहना ! यह क्या साधारण चिन्ताकी ात है बहन !

शची–तुम ही बताओ बहनो, उसके लिए मै क्या कर सकती हूँ ?

अंजना–सो तो ठीक ही है बहन–तुम क्या कर सकती हो !

स्वाहा–लेकिन बहन, लोग तो इधर उधर कानाफूसी करते हैं।

अंजना–करते तो है ही। लोग क्यों रियायत करने लगे बहन ?

शची–कानाफूसी करें, क्या कर लेंगे ?

अंजना–हॉ–कानाफूसी करके चुप हो जायँगे।

वारुणी–लेकिन स्वामीकी खोज-खबर लिये बिना काम कैसे चलेगा ? पता तो लगाना ही चाहिए।

अंजना—हाँ, पता लगाये विना कैसे चल सकता है? खोज-खबर लेनी ही चाहिए।

शची—और यह आदत तो उनकी कुछ नई नहीं है।

अंजना—बेशक, यह तो उनकी पुरानी आदत है।

कालिंदी—तब भी बहन, वह स्वामी तो हैं।

अंजना—सो तो हैं ही। यह कौन कहे, कि स्वामी नहीं हैं। ना बजा कर ब्याह हुआ है—ब्याहकी सब रीतियाँ हुई है। दस्तूरके माफि ब्याह किये हुए स्वामी हैं।

स्वाहा—सो बहन, उनका पता तो लगाना ही चाहिए।

अंजना—पता लगाये बिना काम कैसे चलेगा?—पता तो लगा ही चाहिए।

शची—तुम ही बताओ, कहां पता लगाऊं?

अंजना—हूँ—कहाँ पता लगाया जाय?

वारुणी—न-जाने कहाँ गोता लगा गये!

अंजना—(निराशा-सूचक भावसे मुँह मटकाती है।)

कालिंदी—जब उनके साथ मदन और रतिका जोड़ा घूम रहा है एक कोई कलंककी घटना हुए बिना नहीं रह सकती।

अंजना—कलंक ऐसा कलंक! एकदम कान नहीं दिये जाते!

स्वाहा—एलो, नाम लेते ही आगई!—

शची—कौन!

स्वाहा—रति देवी।

अंजना—हाँ रति ही तो हैं।

कालिंदी–नहीं जी–रति तो नहीं हैं !

अंजना–हाँ जी, रति कहाँ हैं !

वारुणी–हूँ, रति ही तो हैं ।

अंजना–रतिके सिवा और कोई है ही नहीं ।

कालिंदी–ऊँहूँ, रति नहीं हैं ।

अंजना–ना ना–रति नहीं हैं ।

[रतिका प्रवेश ।]

शची–आओजी रति !

अंजना–क्योंजी ! इतने दिनोंके बाद दर्शन दिये !

कालिंदी–अकेली ही आई हो क्या ?

स्वाहा–तीर्थयात्राको गई थीं क्या जी ?

वारुणी–अजी–देवराजकी क्या खबर है ?

अंजना–हाँ, वही खबर पहले सुनाओ ।

रति०–(गाती है—)

केवल प्रेम-वनिज मैं करती ।
और न कछु जानहुँ मैं सजनी, और वीच नहिं परती ॥
बिम्बाधरमहँ सुधारासि, या कुंददसनमहँ हाँसी ।
मधुर चितौन स्याम पुतरिनकी–यह करि वनिज विचरती ॥
कारे घेस वाँधिवो वेनी, ताहि पीठ पर डरिवो ।
इनमहँ मैं प्रवीन हो, परधन जमाखरच सो करती ॥
कारे रंगमहँ मींजि धोइकै गोरे रंग बनाई ।
त्यों सारी रंगीन पहिरि तिय किमि पिय कहँ बस करती ॥
जो सुनिबो चाहौ इन बातन तौ मैं कछु कहि सकिहौं ।

याद रहैं केवल ये बातें, सब परपंच बिसरती ॥
बाँकी काजर-रेख लगावहुँ नैनन, पाँयन जावक ।
अलंकार सब साजि माँगहू गजमुक्तन मैं भरती ॥
नयन नचैबो, हृदय ढाँकिबो आँचल खैचि अदा सों ।
अवसर देखि बहैबो आँसू-सकल कला ये धरती ॥
यह प्रसंग जो पूछहु मोसों, तौ मै कछु कछु जानौं-
कछु कहि सकौं, और बातनमहँ, देवी, मै नहिं परती ॥

शची-इस समय दिल्लगी रहने दो !

अंजना-हाँजी-यह क्या दिल्लगी करनेका समय है बहन ?

रति-नहीं तो फिर और कब समय होगा ?

अंजना-यह भी ठीक है । अभी न दिल्लगी करेंगी तो फिर न करेंगी ?

कालिंदी-उस स्त्रीका नाम क्या है जी ?

रति-अहल्या ।

वारुणी-देवराज कहाँ हैं ?

रति-उनकी अवस्था लौट कर आनेके लायक नहीं है ।

स्वाहा-कैसे ?

शची-पहेली बुझाना रहने दो । क्या खबर है-खुलासा कहो ।

रति-बहुत सी बातें हैं । पहले भीतर चलिए-वहीं सुनिएगा ।

(सबका प्रस्थान ।)

दूसरा दृश्य।

स्थान—शतानंदके घरके सामने–मिथिलापुरीकी सड़क।

समय—सन्ध्याकाल। बादल घिरे हुए है।

[अहल्या अकेली खड़ी है।]

अह०—यही वह मिथिलापुरी है। वे ही ऊँची महलोंकी चोटियाँ हैं, वही सडक है, वैसे ही चींटियोंके दलकी तरह अविराम उद्यम और उत्साहके साथ आदमियोंकी भीड़ चल रही है। जाऊँ, उस देवदारुके पेडके पास बैठ जाऊँ। पैर फट गये हैं—रुधिर वह रहा है। आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ निकल रही हैं। अहो विधाता! (बैठ जाती है) ये कौन लोग कोलाहल करते आ रहे हैं?—पुरवासी लोग हैं।

[कई पुरवासियोंका प्रवेश।]

१ पुर०—ना, यह झूठ बात है!

२ पुर०—स्वयं ऋषि शतानंदने यह खबर मुझे दी है।

३ पुर०—कौन ऋषि शतानंद?

४ पुर०—महर्षि गौतमके पुत्र।

१ पुर०—कब खबर दी थी?

२ पुर०—कल सबेरे।

३ पुर०—महर्षि विश्वामित्र आते हैं?

२ पुर०—हाँ, वही आते हैं।

३ पुर०—उनके साथ दशरथके दोनों पुत्र भी हैं?

१ पुर०—सचमुच आ रहे हैं?

२ पुर०—सचमुच आ रहे हैं!

३ पुर०—यह शुभ समाचार है!!

१ पुर०—अत्यन्त शुभ है!!! चलो, राजमहलमें और और जगह यह खबर सुनावें। (पुरवासियोंका प्रस्थान)

अह०—(उठकर) यह क्या सच है? या मै सपना देख रही। शतानंद जीवित है!—जीवित है! परमेश्वर! मै प्रार्थना करती हूँ- यह बात सच निकले!

[और कुछ पुरवासियोंका प्रवेश।]

१ पुर०—पुरुषका धर्म? उसका प्रमाण इन्द्र है!

२ पुर०—नारीका सतीत्व? उसका प्रमाण अहल्या है!

३ पुर०—अभागे गौतम!

४ पुर०—दुर्मति अहल्या—तुझे धिक्कार है!

३ पुर०—भाई—पापिन अहल्याका नाम मत लो।

२ पुर०—वह महापापिन है!

४ पुर०—वह पिशाची है!

३ पुर०—वह पतिको धोखा देकर परपुरुषगामिनी है।

अहल्या—(आगे बढ़कर) पुरवासियो, तुम कौन हो जो इस त[illegible] अहल्याकी निंदा कर रहे हो?—इस तरह एक जवानमें सौ सौ गालि[illegible] रहे हो?

३ पुर०—अरे यह कौन है जी?

२ पुर०—वही तो! कोई भूतनी है क्या?

१ पुर०—नहीं जी। इसके तो कपड़े फटे हैं, बाल पके हैं, झु[illegible]

पड़ी हैं। यह तो कोई दुखिया अनाथ जान पड़ती है।—तुम कौन हो मैया ?

२ पुर०—बोल, तू कौन है ?

अह०—तुम लोग ऐसी अश्रद्धाके साथ सड़कपर खड़े जिसका नाम ले रहे हो—वही हूँ मै !—पुरवासियो मैं ही वह अहल्या हूँ।

२ पुर०—यह क्या कहती है जी ?

३ पुर०—सच ? तू ही अहल्या है ?

४ पुर०—बेशक यह अहल्या ही है।—मारो मारो।

१ पुर०—असहाय स्त्री है। छोड दो—जाने दो।

३ पुर०—असती है यह—

२ पुर०—बदचलन अहल्या यही है—

४ पुर०—मारो। यह पापिन है।

अह०—मैं पापिन नहीं हूँ। बदचलन नहीं हूँ। पहले मेरा हाल सुनो।

२ पुर०—कुछ नहीं—मारो।

३ पुर०—मारो मारो। (मारता है)

[शतानन्दका प्रवेश।]

शता०—क्या करते हो पुरवासियो ! दुर्बल नारीपर यह कैसा अत्याचार है !

२ पुर०—यह बदचलन व्यभिचारिणी है।

शता०—क्यों ?—इस स्त्रीने क्या किया है ? (अहल्यासे) मैया तुम्हारा क्या नाम है ?

अह०—मेरा नाम अहल्या है।

शता०—अहल्या !—तपस्विनी ?—गौतमकी स्त्री ?—

अह०—सच है। गौतमकी स्त्री।

शता०—पुरवासियो, तुम अपने अपने घर जाओ। मै इस तप[स्वि]नीकी शास्त्र-विधानके अनुसार व्यवस्था करूँगा।

३ पुर०—सूलीपर चढ़ा देना होगा।

४ पुर०—नहीं महाशय! सिर मुडाकर नगरके बाहर निकाल दे[ना]

शता०—जो कर्तव्य होगा वह मै करूँगा। ब्राह्मणीको दण्ड देने[का] अधिकार ब्राह्मणहीको होता है। जाओ।

(पुरवासियोंका प्रस्थान।)

शता०—तुम्हारा नाम अहल्या है? तुम तापसी, इस मिथिलान[ग]रीमे क्या चाहती हो?—क्यों आई हो?

अह०—पुत्र शतानंदको देखना चाहती हूं।

शता०—पुत्र शतानंदको? तुम्हारा क्या प्रयोजन है?

अह०—तुम कौन हो युवक? तुम्हारा यह मुखमंडल—यह गुल्फ [त]क लंबा डील परिचित सा जान पडता है। तुम्हारा कंठस्वर यद्यपि [भ]य विशुष्क, रूद्ध और गद्गद है—तो भी जैसे परिचित सा है। [जा]न[त]ा है—जान पडता है—तुम कौन हो युवक?—तुम—तुम क्या—

शता०—हाँ मै शतानन्द हूँ।

अह०—तुम? तुम? (आगे बढती है)

शता०—(पीछे हटकर) क्या कहना चाहती हो?

अह०—क्या कहना चाहती हूँ?—बेटा—

(छातीमे लगाना चाहती है)

शता०—ठहरो नारी! इस उच्छ्वासकी ज़रूरत नहीं है। तुम पुत्रको पुत्र कह कर पुकारनेका अधिकार बहुत दिनोंसे गँवा चुकी हो।—शतानंदको नहीं पाओगी।—जाओ, लौट जाओ—स्वर्गमे, ब्रह्मलोकमे, वैकुण्ठमें, कैलासमे—मनुष्यलोकमे, या नरकमें, चाहे जहाँ जाओ—शतानंदको नहीं पाओगी।—नारी, क्या तुम भूखी हो? इस राहसे उस देवालयको चली जाओ। वहाँ आश्रय, भोजन और पीनेको पानी पाओगी।—पानीकी घटा ज़ोरसे उठी है। अन्धकार घना होता जाता है।—चली जाओ।

(घरके भीतर जाकर किवाड़े बद कर लेता है।)

अह०—पुत्र! तुम्हारे हृदयमें असीम करुणा है!—अहो; पृथ्वी, तू फटकर सौ टुकड़े क्यों नहीं हो गई?—परमेश्वर, यह तुम्हारा कैसा टेढ़ा नियम है? सच है, मै कलंकिनी हूॅ। लेकिन किसके दोषसे? किसने इस स्वर्णलताको नीरस पाषाणके स्तूप पर रोपा? किसने प्रलोभन दिखाकर असहाय दुर्वल हृदयवाली रमणीको वहकाया? किसने, उसे, संभोगके बाद, तीव्र मदिरा पीनेके उपरान्त ख़ाली बर्तनकी तरह फेक दिया? क्या वह पुरुष निर्मम क्रूर नहीं है? तो भी समाजके विचारमे अकेली मै ही दोषी हूॅ?—ऑधी, वेगसे चल! जलधारा, प्रलयकालकी तरह वरस कर धरतीको ढवो दे! वज्र, दारुण हुंकारके साथ गरज! कालरात्रि, दसों दिशाओंको ढक ले! जैसे पुरुष क्रूर और ममताहीन होते हैं वैसा और कोई नही।—ऑधी, ज़ोरसे चल! इस अराजक राज्यको धूलमें मिला दे! पाषाणी अहल्या खड़ी खड़ी भैरव उल्लासके साथ उसे देखे!

(उन्मादकी अवस्थामें प्रस्थान।)

तीसरा दृश्य।

स्थान—कैलासपर्वत।

समय—प्रभात।

[गौतम और चिरंजीव खड़े हैं।]

योगी लोग—(दूरपर गाते हैं—)

प्रतिमा गढ़ क्या पूजें तुमको, सब जग मूर्ति तुम्हारी है।
सबमें समारहीं तुम मैया, यह धारणा हमारी है॥
मंदिर क्या हमलोग तुम्हारा बना सकें, साधारण जीव।
नीलाकाश दिगन्तवितत यह भवन तुम्हारा भारी है॥
रवि, शशि, तारा, सागर, झरने, वन, गिरि, कुंज, वसतपान।
वृक्ष, लता, फल, फलमधुरिमा, प्रतिमा न्यारी न्यारी है॥

गौतम—कैसा महान् दृश्य है!—दूरपर निश्चल नीरव शुभ्र तुषारका स्तूप सा लगा है, ऊपर असीम नील आकाशका पसार है, नीचे निश्चल कठिन धुएँके रंगके पर्वतकी तहें हैं—दिगन्तविस्तृत दृढ़ पत्थरकी लहरों सी हैं। यह दृश्य—कैसा महान्, कैसा निस्तब्ध, कैसा उदार, कैसा और गंभीर है!

[illegible]—(फिर गाते हैं—)

सतियोंका सुपवित्र प्रणयमधु, शिशुमुसकान, जननि-चुंबन।
भक्ति मातृजनकी, मति, प्रतिभा, द्युति, शक्ति जो भारी है॥
प्रीति प्रतीति परस्पर जो कुछ दया और करुणाका सार।
सब माधुरी तुम्हारी जननी, महिमा महा तुम्हारी है।
जिधर देखिए, निखिल भूमिमें, तुम्हीं विराजो हर शकल।
शीत, वसन्त, रात, दिन, सबमें वैभवगरिमा न्यारी है॥

गौतम—ऐसे सुनसान सन्नाटेवाले अत्यन्त रम्य गंभीर निर्जन स्थानमें प्रकृतिके साथ मानव प्रकृतिकी संधि होती है—हृदय हलका हो जाता है—सब झगड़े मिट जाते हैं। जीवन सार्थक होता है, क्षोभ और संताप दूर हो जाता है, मृत्युका भय जाता रहता है।

योगी—(फिर गाते हैं—)

तो भी मिट्टीकी प्रतिमा गढ़ तुम्हे पूजना चाहें हम।
हे ईश्वरी, जगज्जननी, यह भावासक्ति हमारी है॥
हृदय गभीर अमर कविका भी, भाषासीमामें आवद्ध—
कर न सके गुण-रूप तुम्हारे; भाषा हिम्मत हारी है॥
हम अबोध खोजते फिरें मा, देख न पाते, तुम तो आप—
निकट हमारे विराजती हो! मायाकी बलिहारी है॥
हाथ बढ़ाये, द्वार खड़े हम, करुणामयी, जगज्जननी—
तुम्हे पुकारें, दया करो मा! महिमा अगम तुम्हारी है॥

गौतम—अब दुःख नहीं है, अब चिन्ता नहीं है, अब लालसा नहीं है। ईर्षा नहीं है, द्वेष नहीं है। मैने पिताकी आँखोंके नीचे, माताकी गोदमें, अनन्त विश्राम पा लिया है। आज इस ऊँचे पर्वतके शिखरपर बैठकर पैरोंके नीचे आँख उठाकर देखता हूँ—अनन्त विस्मयके साथ पृथ्वीके झगड़े, कोलाहल, क्षुद्र लोभ और घृणित हिंसा देखता हूँ।— चिरंजीव! क्या सोच रहे हो?

चिरं०—सोचता यही हूँ प्रभू कि दुर्बोध संस्कृत भाषाके विज्ञानमें आपकी बड़ी गति है। जो सरल सहज बात है, उसे जटिल बनानेमें आपकी विचित्र क्षमता है—अत्यन्त अद्भुत शक्ति है।

[इन्द्रका प्रवेश ।]

गौतम–यह क्या, तुम यहाँ क्यों आये ? आश्रमसे इतनी दूर चले आये ?

इन्द्र–परीक्षा करके देखा तो शक्ति आगई जान पड़ी । योगिवर, आज मै घरको लौट जाना चाहता हूँ ।

गौतम–और दो दिन ठहर जाओ । और भी थोड़ा बल आ जाने दो ।

इन्द्र–यथेष्ट बल आगया है । तुम्हारे आग्रहसे, तुम्हारे रात रातभर जागकर सेवा करनेसे, मै इस समय अच्छी तरह आरोग्य हो गया हूँ । अब मै क्या पूछ सकता हूँ कि तुम कौन हो ?

चिरं०–क्यों, यह पूछकर तुम क्या करोगे ?

इन्द्र–(गौतमसे) तुमने मेरी बहुत सेवा की है । मै उसका पुरस्कार तुमको देना चाहता हूँ ।

गौतम–मैं एक संन्यासी मनुष्य हूँ । मुझे किसी बातकी कमी नहीं है

इन्द्र–तुम माँगनेमे कुंठित होते हो ? मनुष्य, मैं एक धनी व्यक्ति हूँ । तुम जो जो चाहो, सो दे सकता हूँ ।

गौतम–मुझे कुछ न चाहिए ।

इन्द्र–कुछ न चाहिए ? सच ?–तुम्हारा नाम क्या है ?

गौतम–मेरा नाम गौतम है ।

इन्द्र–क्या नाम है ?

गौतम–गौतम ।

इन्द्र–क्या नाम बताया ?

गौतम–गौतम ।

इन्द्र–गौतम ? तुम्हारा घर कहाँ है ?

गौतम—मिथिलामें।

इन्द्र—जिन गौतमकी स्त्रीका नाम अहल्या है, आप क्या वही गौतम हैं?

चिरं०—हाँ, यह वही गौतम हैं। इस बारेमे क्या आपको कुछ कहना है?

इन्द्र—आप महर्षि गौतम हैं?

चिरं०—हाँजी हाँ—तुम तो समझकर भी जैसे समझना नहीं चाहते।

इन्द्र—महर्षि, जानते हो—मै कौन हूँ?

गौतम—जानता हूँ—तुम देवराज इंद्र हो।

चिरं०—और अहल्या देवीके उपपति हो।

इन्द्र—ऐं—ऐं—असंभव है। तुमने किससे सुना?

गौतम—तुमसे ही।

इन्द्र—कब?

गौतम—ज्वरके प्रलापमें।

चिरं०—और मैने इतने दिनोंतक तुम्हे मार नहीं डाला, उसका कारण यही है कि इन महर्षिने मुझे ऐसा करने नहीं दिया। लेकिन अनेक बार पछता चुका हूँ कि वनमें तुमको अचेत देखकर सेवाके लिए कंधे-पर लाद कर आश्रममें मुझे लाना पड़ा!

इन्द्र—(दमभर सोचनेके बाद घुटने टेककर) महर्षि! मैने आपका जो अपराध किया है वह यद्यपि क्षमा नहीं किया जा सकता, तो भी आपसे क्या मै क्षमाकी भिक्षा माँग सकता हूँ?

चिरं०—सो अब नहीं हो सकता! यह जान बच गई उसे ही अपनी अँख मोटागका सतका समझो।

गौतम—चिरंजीव ! चुप रहो।—इन्द्र तुमसे मुझे कुछ द्वेप नहीं है।

चिरं०—जाओ, बहुत कुछ मिल गया। अब भाग जाओ।

गौतम—जाओ देवराज, विश्वपति परमेश्वरसे क्षमाकी भिक्षा माँगो वह हमारे तुम्हारे दोनोंके स्वामी हैं—उनके निकट छोटे बड़े सब समान है।—क्षमा ? मै तुमको हृदयसे क्षमा कर चुका हूँ। देवराज ! मैं दरिद्र ब्राह्मण हूँ—तुमको और क्या दूँगा ? आशीर्वाद करता हूँ—सुस्थ होओ-सुखी होओ।

(इन्द्रका प्रस्थान।)

चिरं०—प्रभू ! आपने तो एकदम अवाक् कर दिया !

गौतम—क्यों चिरंजीव ?

चिरं०—ऐसे पाजी पापी शत्रुको आशीर्वाद ? यदि मुझसे क्षमाकी प्रार्थना करता तो मै उसकी गर्दन पकड़कर जूते मारकर निकाल देता।

गौतम—सुनो चिरंजीव ! शत्रुको लांछित करना—उसका अपमान करना धर्म नहीं है।

चिरं०—ना—धर्म है शत्रुको पैर धोकर मिठाई खिलाना !

गौतम—प्रतिहिंसा पिशाच शत्रुका दमन कर सकती है, विनाश कर ती है, उसे भस्म कर सकती है। लेकिन क्षमा वह चीज़ है, जो ुको मित्र बना देती है, निरीह बना देती है, देवता बना देती है। । पहुँचाना नरकका धर्म है, प्रतिहिंसा पृथ्वीका धर्म है और क्षमा स्वर्गका धर्म है।

[एक राजदूतका प्रवेश।]

दूत—(गौतमसे) आप ही क्या महर्षि गौतम हैं ?

चिरं०—हाँ, यही गौतम हैं। तुम भैया किस आकाशसे उतर आये?

दूत—(साष्टांग प्रणाम करके) राजर्षि जनकने आपको यह पत्र
है। (पत्र देता है)

गौतम—राजर्षि जनकने! देखूँ! (पत्र पढ़कर) चिरंजीव, बड़ी
खबर है! बड़ी शुभ खबर है!

चिरं०—क्या खबर है?

गौतम—राजपुत्री सीताका विवाह है। राजर्षिने निमंत्रणपत्र भेजा
। तुम कल तडके चलनेके लिए तैयार हो जाओ।—दूत! तुम थके
हो। आश्रममे चल कर मुझको धन्य करो।

(सबका प्रस्थान।)

चौथा दृश्य।

स्थान—गौतमका तपोवन।

समय—सन्ध्याकाल।

[विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण।]

राम—यही क्या वह पुण्य आश्रम है?

विश्वा०—यही गौतमका पुण्य आश्रम है। आज यह परित्यक्त
हा है। इधर उधर टूटा फूटा हुआ है। घास-फूसने उग कर इसे
हड़ बना दिया है। ऋषि तो सुदूर कैलास पर्वतपर चले गये हैं।
असीम वैराग्यके कारण गृहस्थाश्रम और संसारसे उन्होंने नाता तोड़
दिया है। उनकी प्रेयसी अहल्या प्रलोभनमें पड़कर पतित होकर,
पाषाण हो गई है।

लक्ष्मण–प्रभू, यह तपोवन कैसा सुन्दर, निर्जन, नीरव, गंभीर, घनी छायासे परिपूर्ण और रमणीय है !

विश्वा०–जिस दिन महर्षि गौतम और तपस्विनी अहल्या–दोनों अविच्छिन्न सुखमें मग्न होकर इस वनग्राममें रहते और तपस्या करते थे, उस दिन यह स्थान इससे भी अधिक रम्य था ।

लक्ष्मण–अहल्याकी कथा तो अत्यन्त करुणाजनक है ।

विश्वा०–वह नीरव गंभीर शान्ति–स्वच्छ समुद्रकी तरह, मीठे झर-नेकी तरह, मनोहर शान्ति–आज भी याद आरही है । वह पवित्र जोड़ी–नील आकाशके हृदयमें पूर्णिमाकी चाँदनीके समान नयनसुखद वे दोनों मूर्तियाँ—आज भी आँखोंके आगे जैसे नाच रही हैं । आज भी वह संमिलित कंठसे निकला हुआ गीत–मृदंगके साथ, वीणाके स्वरकी तरह–याद आरहा है ।

(नेपथ्यमें यंत्रणाका शब्द होता है ।)

राम और लक्ष्मण–यह कैसा शब्द है ?

विश्वा०–सच तो है । यह तो जैसे किसी रमणीके कंठका स्वर है । ो, चलकर देखें ।

लक्ष्मण–वृक्षकी आडमें वह कौन रमणी है ? इसका मुख तो मुर्देका ऐसा हो रहा है !

विश्वा०–कहाँ ?

लक्ष्मण–वह पास ही तो है ।

विश्वा०–ठीक तो है । यह नारी कौन है ? यह क्या ! हरे हरे ! यह क्या वही अहल्या है ?

अह०–(आगे बढकर) हाँ, मैं अहल्या हूँ। तुम कौन हो पथिक !

विश्वा०–अहल्या ! तुम यहाँ हो ?

अह०–हाँ, मै यहाँ हूँ। तुम कौन हो, जो परिचित स्वरसे अहल्याका नाम लेकर पुकार रहे हो ?

विश्वा०–पहचान नहीं पातीं ? मै विश्वामित्र हूँ।

अह०–तुम विश्वामित्र हो ?–बेशक–पहचान गई। किस प्रयोजनसे आये हो ?

विश्वा०–मै अतिथि हूँ।

अह०–अतिथि हो ? किसके ! गौतम यहाँ नहीं हैं; अकेली मै ही हूँ। लौट जाओ–लौट जाओ। वह भी यों ही आया था–अपनेको अतिथि बताता था। ऋषि ! जाओ, लौट जाओ !

विश्वा०–यह क्या ! तुम्हें इस तरहका तो कभी नहीं देखा अहल्या ! वह सौम्य और लज्जासे लाल हो रहा मुखमण्डल कहाँ है ? वह मधुर हास्यकी रेखा कहाँ है ?

अह०–वह कुछ नहीं है–कुछ नहीं है; सब गया। वह धूर्त सब रस पीकर चला गया। जाओ ऋषि, जाओ। यहाँ इस निर्जन स्थानमें इस दूर वनग्राममें मुझे हैरान करने–खिझाने–क्यों आये हो ? मै किसीके सुखकी राहमें कंटक बनकर नहीं रहती। एक कौड़ी भी किसीकी नही चाहती !–जाओ।–महर्षि ! एकदिन तुम्हारे ऊपर मुझे भक्ति थी। मगर आज रत्तीभर श्रद्धा नहीं है।

विश्वा०–क्यों तपस्विनी !–मेरा क्या दोष है ?

अह०–दोष ?–जानते नहीं हो क्या कि क्या दोष है ? बड़ा भारी

दोष है। तुम कपटी मर्द हो !–प्रभू ! यही एक महा सत्य मैंने जगत्में आकर जाना है। मर्दोंकी जाति लंपट होती है। तुम ऋषि अवश्य हो, तो भी तुमपर विश्वास नहीं है।–तुम मर्द तो हो। शायद तुम भी मेरे रूपकी लालसासे आये हो ? अब मै नहीं बहक सकती।–वह झूठ, वह धोखेबाज़ी, वह मृदु हँसी, वह एकाग्र चितवन, वह गर्दन टेढ़ी करना–सब समझती हूँ, सब जानती हूँ। मुनिवर, तुम्हारी यह चेष्टा वृथा है !–घर लौट जाओ।

विश्वा०–अहल्या ! तुम्हारा हाल मै जानता हूँ। देवि, तुमको धोखा दिया गया है, यह भी जानता हूँ। लेकिन यह नहीं जानता था कि तुम त्यागी हुई हो। पर हे अभागिन अहल्या, मै आज इस पुण्य आश्रममें तुम्हें धोखा देने या छलने नहीं आया हूँ।

अहल्या–क्या विश्वास है ? तुम मर्द तो हो।–मर्दकी जाति सब कर सकती है। सोती हुई पत्नीके गले पर छुरी फेरना, पशुविक्रमके साथ नम्र नवोढाके पातिव्रत्यको कलंकित करना, बालिकाके खिले हुए ` :-पुष्पको लोकाचारके पैरोंपर फेंक देना, स्नेह-भक्तिकी बलि देना, `के मुखमे राख डालना, प्यासेको ज़हर पिलाना, दयाका विनाश न, विश्वासकी हत्या करना–मर्दके बाएँ हाथका खेल है ! मर्दकी ।ति सब कर सकती है।

राम–भोली भाली अभागिन नारी ! तुमने यहाँ तक मनुष्यका विश्वास खो दिया है ? तापसी, तुम क्या यहाँतक पतित हो गई हो ? या हार्दिक यंत्रणाके कारण तुम ज्ञान गँवा बैठी हो ?–मुर्ख आदमी जब विवेकसे शून्य हो जाता है, जब वह कर्तव्यसे स्खलित होकर गढ़ेमें

गिरता है, तब और-को दोष देता है!—देवि, इस संसारमें मनुष्य-जन्म फूलोका खेल नहीं है!—स्त्रीको सदा ब्रह्माण्डके आक्रमणसे सतीत्व और जीवनकी रक्षी करनी पड़ती है। तुम्हे सैकड़ों प्रलोभन बलपूर्वक अपनी ओर खींचेगे ही। तुम्हें खुद अपनेको सँभालना पड़ेगा। बाधा और विपत्ति आकर सदा जीवनके मार्गको दुर्गम बनावेंगी; तुम्हे अपने बलसे उन्हें लॉघना पड़ेगा। जीवन एक प्रकारका संग्राम है। अगर जगत् निष्ठुर है तो तुम भी कठिन बनो।

अह०—हाय! शक्ति नहीं है।

राम—शक्ति नहीं है? यह कैसी मूढता है! शक्ति है—इच्छा नहीं है। विवेक है—उद्यम नहीं है। प्रलोभनके फंदेमें खुद पैर बढा देती हो, पीछे जब उस शृंखलामें बँध जाती हो, तब रुष्ट होती हो। पातकसे मेल करती हो, पीछे जब स्वर्गका द्वार रुँधा हुआ देखती हो, तब क्रुद्ध होती हो। अपने हाथसे विषका वृक्ष बोती हो, पीछे जब अमृत-फल नहीं फलता, तब विधाताके साथ झगड़ा करती हो।

अह०—सब सच है।—लेकिन सूखी मरुभूमिमें क्या कभी झरना बहता है? पत्थरमे कहीं फूल पैदा होता है? सागरके भीतर कहीं सूर्यकी किरणें प्रवेश करती हैं? मेरे जीवनका आरंभ भारी प्रमादसे हुआ था। हाय! विधाताने खँडहरमे क्यों चाँदनी डाली? पपीहेको अंधकारमे क्यो रक्खा? निर्जन वनमे फूलोंकी सुगंध क्यों बिथराई?

राम—हाय मूढनारी! इतने दिनोतक शायद तुमने प्रेमिकके सुंदर मुखको, घुंघराले बालोंको, सरल नासिकाको, दोनों पद्मदलसे अधिक

अरुण और कोमल कपोलोंको, दोनों लालसासे शिथिल दृष्टिवाली आँखोंको पूर्ण पीन सरस अधरोंको पहचाना है ?–हा मूढ़ सुंदरी ! तुमने प्रेमिकके गंभीर हृदयको, प्रेमकी गूढ़ व्यथाको, संयत आग्रहको नहीं पहचाना गौतम ऋषिके वही हृदय था ! उसे तुमने लातोंसे ठेल दिया ! तापसी तुमने अमूल्य रत्न-हारको कण्ठसे उतार कर गहरे सागरके जलमें फेंक दिया !

अह०–(दमभर सोचकर) दार्शनिक बालक ! तुम्हारे सौम्य पवित्र मुखमण्डलमें नवीन वसन्तका विकास है। तुम्हारी दोनों नम्र आँखें पृथ्वीकी ओर लगी हुई हैं। तुम्हारे कंठसे निकले अनुकंपापूर्ण शब्द वीणाकी झनकारके समान गूँज रहे हैं–जैसे वर्षाके श्याम मेघसे स्निग्ध जलधारा निकल रही हो। बताओ, तुम सुंदर कुमार कौन हो ?

राम–मेरा नाम राम है। अयोध्याके स्वामी महाराज दशरथका मैं पुत्र हूँ।–यह लक्ष्मण मेरे छोटे भाई हैं।

अह०–तुम राजकुमार हो ! तुम्हारे अक्षय खज़ानेमें बहुत सा सुवर्ण र रत्न होंगे, लेकिन ऐसा रत्न नहीं होगा–जैसे तुम्हारे ये उपदेशके बहुमूल्य हैं। तुम भगवान् नारायण हो; अपने चरणोंकी रज मुझे। क्षमा करो प्रभू ! (पैर ।)

राम–मै क्या क्षमा करूँगा ? क्षमा उनसे माँगो, जिनके अनन्त प्रेम और अनन्त विश्वासके बदलेमें तुमने अपने नीच हृदयकी कठिनता दी है–जिनके कोमल हृदयमें अपने व्यभिचारका वज्र हनकर मारा है। जाओ मैया, उनसे क्षमा माँगो। उसके बाद विधातासे क्षमा माँगो,

पाँचवाँ अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—पहाड़ी मार्ग।

समय—आधी रात।

[चिरजीव अकेला।]

चिरं०—(स्वगत) खूब धोखा दिया! वह छोकरी क्या मुझे सोने देगी? चारों ओर दरवाजे खिड़की-झरोखे बंद करके भला कहीं भले आदमीको नींद आसकती है! मिथिलामें जाते जाते राहमें ऐसा जोरसे बुखार चढा कि तोबा! गौतम और माधुरी दोनोंने अन्तको जाकर एक धर्मशालामें आश्रय लिया। खूब छके मगर। (हँसता है।) धर्मशाला है!—कहाँ है धर्मशाला?—वह तो ताड़ीकी दूकान थी! खूब भाग आया। माधुरी कहती है, बाहर न जाओ; ज्वरका जोर बढ जायगा। आः!—ऐसी ठंडी हवा है!—इस हवासे बुखार बढ़े तो बढ़े!—जान है, जैसे मै एकदिन इसी तरह माधुरीको धक्का देकर गढ़ेमें गिरा गया था। मगर माधुरीको उसकी याद नहीं है। क्या मैं ही कहता हूँ कि औरतोंकी जाति एकदम बेवकूफ़ होती है! खाना, सोना नहीं, विश्राम नहीं—दिनरात मेरी ही सेवा किया करती!—सोकर उठने पर देखता हूँ, मेरे सिरहाने बैठी जाग रही है! औरत इतना कर सकती है बाबा!—लेकिन अबकी खूब भाग आया हूँ। जैसे देखा कि माधुरी ऊँघ रही है, वैसे ही उठकर धीरे धीरे पैर रखते हुए

निकल कर बाहर आया, और बाहर आते ही एकदम सिर पर पैर रखकर सरपट भागा !—खूब ठंडी हवा चल रही है—सर्दी सी लग रही है ! यहाँपर ज़रा पेट भरकर सो लेना चाहिए ।—वह लो, अब और कौन आ रहा है ?—यह तो माधुरी ही देख पडती है ! यह तो बुरा हुआ—इसने आकर सब मिट्टी कर दिया ! सच है, जहाँ बाघका डर, वहीं शामका होना !

[माधुरीका प्रवेश ।]

माधुरी—प्रभू, यहाँ आ गये ?

चिरं०—(खीझकर) यहाँ नहीं तो क्या वहाँ !

माधुरी—चलो चलो—डेरे पर चलो ।

चिरं—ना, नहीं जाऊँगा ।

माधुरी—ज्वरका वेग बढ़ जायगा ।

चिरं०—तो उसमें तेरा क्या ? मै यहाँ खड़ा होकर बैठे बैठे मरूँगा ।—उसमें तेरा क्या ?

माधुरी—छि. प्रभू ! चलो ।

चिरं०—देख, कहता हूँ—दिक़ न कर ।

माधुरी—तुम घर चलो ।

चिरं०—फिर हैरान करने लगी ?—अब जो दिक़ करेगी तो—! आ !—(लेट जाता है ।)

माधुरी—छि ! उठो—(पकड़कर उठाना चाहती है ।)

चिरं०—ओ ! जैसे सर्दी लगरही है—(कांपता है) अरे रे, यह क्या हुआ ?—

माधुरी–(घबराकर) क्या हुआ ?

चिरं०–मुझे बड़ी हँसी आरही है। (हँसता है)। नारे ना, हँसी तो नहीं आ रही है। फिर क्या आ रही है ?

माधुरी–क्या आ रही है ?

चिरं०–हॉ ठीक। नींद आ रही है। सुन, बैठ जा, तेरी गोदमें सिर रखकर मै सोता हूँ–और तू मेरे सिरपर कुहू-कुहू शब्द कर।

माधुरी–वही करूँगी। तुम पहले घर चलो। उठो।

चिरं०–देख माधुरी, मै एक बड़े भारी सन्देहमें पड़ गया हूँ।

माधुरी–क्या सन्देह ?

चिरं०–सन्देह यही है कि ईश्वरने मर्दको औरत, और औरतको मर्द बनाकर क्यों नहीं पैदा किया ? अगर मर्दको औरत बनाकर और औरतको मर्द बनाकर पैदा करते, तो–आः, कैसा मज़ा होता ! क्यों ?

माधुरी–हॉ, तो अच्छा होता। अब घर चलो।

चिरं०–ना, तू सोने नहीं देगी। तनिक आराम करने आया तो ... पास आकर भिनभिन करने लगी–"चलो घर चलो।" इतनी ... तेरी ऑखोंमें नींद नहीं है, तो क्या मुझे भी सोने न देगी ?

(जाना चाहता है।)

...–मेरे कंधेपर बोझ देकर चलो।

चिरं०–(जाते जाते) दयामय भगवान् ! अच्छा पहरा तैनात कर ...या है ! चल।

(दोनोंका प्रस्थान।)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—नंदनकानन । मंदाकिनीका किनारा ।

समय—चाँदनी रात ।

[दूर पर ऊँचा प्रकाशपूर्ण भवन । नदीके भीतर नाव बँधी है ।

इन्द्र अकेला है ।]

इन्द्र—किन्नरी गा रही हैं; अप्सराएँ नाच र । अट्टहास्यका
शब्द गूँज रहा है, मृदंग बज रहे हैं । थोड़ी ही दूरपर ऊँचे भवनमें
दीपकमालाका प्रकाश फैल रहा है । फिर मै शिथिल पैर रखता हुआ,
धड़कते हुए हृदयसे, अकेले, निर्जनमें—नंदनकाननमें—मंदाकिनीके
किनारे—चंद्रमाके प्रकाशमें—क्यों फिर रहा हूँ? क्यों आज यह उत्सव,
उल्लास, प्रकाश, उच्च हर्षध्वनि, संगीत, स्त्रीसंग आदि सुखभोग मुझे
असह्य हो रहा है? क्षीण चाँदनीका प्रकाश भी तीव्र मालूम पड़ता है ।
पपीहाकी आवाज़ जैसे हृदयमें तीक्ष्ण वज्रसेल सी लग रही है । मलय-
पवन जैसे अंगोको जलाये देता है । भीतर ही भीतर जैसे भूसीकी
आग सुलग रही है । हृदयके भीतरकी तहसे मर्मभेदी दीर्घश्वास निकल
रही है ।—क्या करूँ! कैसे यह आग बुझेगी? कौन बता देगा कि
इस पापका प्रायश्चित्त क्या है? क्या मै अनन्तकाल तक इसी प्रकार
तीव्र पछतावेसे जर्जर होता ही रहूँगा? (चुप हो जाता है ।) अह-
ल्याके पति गौतम ऐसे महात्मा है? वह मनुष्य हैं, और मै देवता
हूँ? हा धिक्कार है! यह विधाताका न्याय-विचार है । (घुटने टेककर)

हे महापुरुष ! तुम सच्चे तपस्वी हो । तुम विशुद्ध, उदार, निष्काम, निःस्वार्थ और चिरस्मरणीय हो ।–लो वह शची देवी आ रही हैं ।

[शचीका प्रवेश ।]

शची–(प्रकाशित भवनकी ओर देखकर) इस आधी रातको, उज्ज्वल विलास-गृहमें संगीत चल रहा है, उत्सव हो रहा है। छी-छी, लज्जा नहीं है !–शीतल मंद पवन डोल रहा है । तनिक इस मंदाकिनी तटपर बैठूँ ।

इन्द्र–(आगे बढ़कर) शची !

शची–(चौंककर) कौन–तुम हो !

इन्द्र–हाँ । तुम्हारी प्रतीक्षामें यहाँ आया हूँ ।

शची–इतना अनुग्रह किया ? नाथ दासी कृतार्थ हो गई ! प्रभू, लौट जाने दो । राह छोड़ो । (जाना चाहती है ।)

इन्द्र–शची !

शची–लज्जा नहीं आती ? किस अधिकारसे तुम मेरा नाम लेकर करते हो ?

इन्द्र–सुनो, मै सच कहता हूँ—

शची–मै कुछ नहीं सुनना चाहती ।–हाय देवराज ! देवीको छोड़कर मानवीपर लुभा गये ? अन्तको नहीं मालूम और भी क्या निग्रह भोगना तुमको वदा है ! उर्वशी, मेनका, रंभा आदिके साथ सुधा पीकर मस्त होकर नाचते थे, वह भी मैने सह लिया था; क्योंकि वे देवजातिकी स्त्रियाँ हैं। अन्तको जिस दिन तुम मानवीके ऊपर रीझ गये, उसी दिन तुम्हारा देवभाव जाता रहा ।

इन्द्र—सच है, अहल्या मानवी है। तो भी इन्द्राणी, अहल्याका रूप अप्सराओंसे भी बढ़कर अद्भुत है। यह मैं सच कह रहा हूँ। इसी प्रलोभनमें मुग्ध होकर मैंने यह अपराध—यह पाप—किया है।

शची—रूप अप्सराओंसे बढकर हो, तो भी वह मानवी है। उसके स्पर्शसे तुम कलुषित हो चुके हो। अब पुलोमकन्या इन्द्राणीके शरीरको न छूना। (क्रोधके साथ प्रस्थान।)

इन्द्र—सदासे विधिविरुद्ध लालसाका यही परिणाम होता आया है। तीव्र क्षणिक संभोग अंतको दीर्घ विषाद और व्याधिका घर होता ही है। शान्ति जाती रहती है, नींद भी नहीं आती। तुच्छ प्रलोभनमें पडकर अन्तको पत्नीके आदर-प्रेमसे वंचित होना ही पड़ता है।

[मदन और रतिका प्रवेश।]

इन्द्र—हाय! मदन, तुम इतनी देरमें आये? शची चली गई।

मदन०—मैं क्या करूँ प्रभू, रतिके कारण देर हो गई। इनकी केशरचनामें—वेशविन्यासमें—पहर भर बीत गया।

रति—स्त्रियाँ सदा इस बातके लिए बदनाम की जाती हैं। लेकिन प्राणेश्वर, यह वेशविन्यास किसके लिए है?

इन्द्र—सुंदरी! यह दांपत्यकलह कबतक चलेगा?

रति—जबतक इस दूर निर्जन वनमें इन्द्र और इन्द्राणीका झगड़ा नहीं निपटेगा।

मदन—इन्द्राणीका मिजाज कैसा है?

इन्द्र—यह तो तपे लोहेसे भी बढ़कर गर्म हो रही हैं।

मदन–प्रभू! शयनमंदिरमें ही यह वियोगका नाटक समाप्त होगा चलो देवराज! सुनो, कोई चिन्ता नहीं है। स्त्रियोंके सदासे ऐसे ह टंग होते आये हैं। दमभर गरजकर, बरसकर, अन्तको सब शान्त ह जाता है। चलो, विलास-भवनमें चलो।

इन्द्र–अब कुछ अच्छा नहीं लगता। नस नसमें आग सी बह रह है। मस्तक और हृदय हज़ारों शिलाओंके बोझसे दबा हुआ है

मदन–प्रभू, चिन्ता दूर करो। मैंने क्या पहले आपसे नहीं क दिया था कि ऐसे प्रेमका सदा ऐसा ही परिणाम होता है? धीरे धी पानी थिरायगा। इस समय विलास-भवनमें चलो। चिन्ता नहीं है, शयन मंदिरमे इस रोगकी दवा दूँगा।

(सब जाकर नाव पर सवार होते है।)

मदन और रति—(नावपर गाते हैं—)

बहा दे यह नाव साथकी तू बहावमें, क्यों दहल रहा है?
चढ़ा दे बस पाल और बह चल, गँवार नाहक़ मचल रहा है॥
अजब तमाशा है, देख चलकर, उमंग जो हो तो फिर हो ऐसी।
उठा है तूफ़ान और आँधी नदीका जल भी उछल रहा है॥
वृथा है सब युक्ति और चिन्ता, पड़ा भी रहने दे दुःख पीछे।
बहेंगे, चिल्लायँगे, हँसेंगे, इसीमें अब जी बहल रहा है॥
अवश्य फिरना ही होगा रूसे कठिन किनारे पै, तू समझ ले।
हिसाब करना ही होगा, लेना औ देना सबसे जो चल रहा है॥
जो नावको डूबना है, डूबेगी, हमको मरना है, तो मरेंगे।
मरेंगे गोतेमें गँदला पानी ज़रासा पीकर जो खल रहा है।

(सबका प्रस्थान।)

तीसरा दृश्य।

स्थान—मिथिलाकी सड़क।

समय—प्रभात।

[अहल्या अकेली।]

अह०—अब क्या वह फिर मुझे प्यार करेंगे? फिर उस मधुर गंभीर स्वरसे स्नेहके साथ मेरा नाम लेकर पुकारेंगे? फिर वह पास आकर उसी तरह स्नेहनम्र दृष्टिसे मेरी ओर ताकेंगे?—नाथ! प्राणेश्वर! क्षमा करो। तुम्हारा इतना प्रेम, इतनी वेदना, इतना आदर, पहले मैं समझ नहीं सकी थी। मै पाषाणी हूँ! मै पापिन हूँ! मैं अभागिन हूँ! सिर-आँखोंपर रखनेकी चीज़ मैने पैरोंसे ठेल दी! (घुटने टेककर) क्षमा करो। प्रभू, मेरे सर्वस्व, मेरे देवता! आज मेरी समझमें आ गया कि त्रिभुवनमें तुम ही मेरा सब कुछ हो, तुम ही मेरा यह लोक हो, तुम ही मेरा परलोक हो! मै मूर्ख हूँ—इसीसे इतने दिनोंतक समझ नहीं सकी। क्षमा करो। क्षमा करो। क्षमा करो।

[एक पुरवासिनीका प्रवेश।]

१ पुर०—तुम कौन हो बहन, राह छोड़ो। (प्रस्थान।)

(अहल्या फिर हटकर खड़ी होती है।)

[दूसरी पुरवासिनीका प्रवेश।]

२ पुर०—औरतकी अक्लि तो देखो! एकदम बीच राहमे खड़ी है! और तनिक हटकर खड़ी हो। (प्रस्थान।)

(अहल्या हटकर खड़ी होती है।)

[तीसरी पुरवासिनीका प्रवेश ।]

३ पुर०—कौन है री ! खड़े होनेके लिए और कहीं जगह न मिली ? खोपड़ी पर खड़ी है । हट । (प्रस्थान ।)

(अहल्या और हटकर खड़ी होती है ।)

[चौथी पुरवासिनी प्रवेश करती है । प्रवेश करते समय अहल्याका धक्का लगनेसे गिर पड़ती है ।]

४ पुर०—मर चुड़यल ! आः—मेरे सब बेर गिरा दिये !

(बेर बीनती है ।)

अह०—क्षमा करो बहन । मै बेर बीने देती हूँ ।

(अहल्या बेर बीन देती है । वह स्त्री बेरोंका अव्वा लेकर जाती है ।)

अह०—अब क्या उन्हें पाऊँगी ? उस तरह हृदयके भीतर उन्हें पाऊँगी ? जिन्हें जागतेमें दिनको गँवा दिया है, उन्हें रातके अँधेरेमें खोज कर कैसे पाऊँगी ?

[कुछ सुसज्जित राजभृत्योंका प्रवेश ।]

१ भृत्य—बेशक बड़ा बल है !

२ भृत्य—हाँ, धनुषको उठाकर ईखकी तरह पटसे तोड डाला जी

३ भृत्य—उस बालकको देखनेसे तो यह नहीं जान पड़ता कि उ शरीरमें खूब ताक़त होगी ।

२ भृत्य—अन्तको राजकुमारीका व्याह क्या एक बैरागीके लड़ के साथ होगा जी !

१ भृत्य—चल चल, मुँह सँभाल कर बात कह ।

(भृत्योंका प्रस्थान ।)

अहल्या—वह क्या अब फिर मुझे उसी तरह प्यार करेंगे? मै व्यभिचारिणी हूँ, मै अभागिन हूँ, मै विश्वासघात करनेवाली हूँ, मैं किस साहससे उनके सामने खड़ी होऊँगी? किस साहससे उनसे क्षमा माँगूँगी?

[कई एक पुरोहितोका प्रवेश।]

१ पुरो०—सो तो होगा ही। मणि-कांचन संयोगकी बात शास्त्रमें लिखी ही है।

२ पुरो०—अरे रहने दो अपना शास्त्र! तुम शास्त्र क्या जानो भट्टजी!

१ पुरो०—मै शास्त्र नहीं जानता! पुराण, उपपुराण, वेद, वेदांग, दर्शन, मनुस्मृति आदि आदि सब कंठ हैं।

३ पुरो०—अरे इतना चिचियाते क्यो हो!

४ पुरो०—राजा दशरथको लानेके लिए लोग गये हे?

३ पुरो०—अजी हॉ, गये हैं जी गये हैं। उनके पुत्र रामका व्याह है. और उन्हें लानेके लिए लोग न जायँगे?

१ पुरो०—गौतमके पास राजाका निमंत्रणपत्र गया था क्या, जो वह आये हैं?

२ पुरो०—हाँ, गया था।

४ पुरो०—राजभवनमें मजेसे चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय पदार्थोंपर हाथ फेर रहे होंगे।

२ पुरो०—अरे इतना चिचियाते क्यों हो जी?

१ पुरो०—गौतम बहुत ही दुबले हो गये है।

* ―जिल्दा

४ पुरो०―दुबले न हो जायँगे। इतना बड़ा कलंक लग गया है!

३ पुरो०―मै कहता हूँ―ज़रा धीरेसे न चिल्लाओ!

(पुरोहितोंका प्रस्थान।)

अह०―यह क्या सुन रही हूँ? वे आये हैं? आये हैं? मै क करूँ! जाऊँ―उनके पैरोंपर गिरकर क्षमाकी प्रार्थना करूँ। वे प्रेमा हैं, वे दयाके सागर हैं, वे क्षमाकी मूर्ति हैं। क्षमा कर भी सकते है जाऊँ, जाऊँ। (प्रस्थान।)

चौथा दृश्य।

स्थान―जनककी राजसभा।

समय―दोपहरके पहले।

जनक, गौतम, शतानद, विश्वामित्र।]

गौतम―मै आज धन्य हो गया। बलिहारी! कैसा पानीभरे बादलो ना न सुंदर श्याम शरीर हैं!―राजर्षिजनक! राजकुमारी सुंदरी सी नसे अच्छे वरको कभी नहीं दी जा सकती थी। बिजली क्या कभी ना लधरके सिवा शोभाको प्राप्त होती है? चंपेकी कली श्याम नव पल्लवके । क्या कभी शोभित हो सकती है?

जनक―बंधुवर! तुम्हारे शुभागमनसे यह विवाहकार्य और भी सुस-पन्न हो गया!

गौतम―प्रिय! मै बहुत दिनोंसे प्रवासमें था। संसारके प्रति अपन

कर्तव्यको भूलकर मै दूर निर्जनमें स्वार्थमग्न होकर गंभीर सुखमें लिप्त हो रहा था। मित्रवर, तुम्हारे पत्रने पहुँचकर मेरे हृदयमें फिर अतीत कालकी स्मृतिको जगा दिया!

[माधुरीको घसीटते हुए चिरंजीवका प्रवेश।]

चिरं०—यह लो! यह मायाविनी है—जादू जानती है।

विश्वा०—यह क्या चिरंजीव? राजसभाके वीच अपनी पत्नीका अपमान कर रहे हो?

चिरं०—यह मायाविनी जादू-मंत्र जानती है! मैं सदासे इसका अनादर करता आरहा हूँ; यह उसके बदलेमें मेरी सेवा-पूजा करती है। मैं इसे कटु वचन कहता हूँ; यह मायाविनी हँसती है। मै निर्दयताके साथ इसे मारता पीटता हूँ; यह चुपचाप सहकर नीरव विलाप करती है। मै इसे निर्जन वनके मैदानमें रातको कैलाश पर्वतके मार्गमें छोडकर चला आया, पीछेसे मै बीमार होकर जब मिथिलाकी राहमें पड़कर सो गया, तब उठने पर देखा—यह पिशाची जागती हुई सिरहाने बैठी मेरी सेवा कर रही है। यह मायाविनी अवश्य मंत्र जानती है। मालूम नहीं, प्रभू, किस मंत्रके बलसे इस मायाविनीने मेरे पाषाणमय हृदयको—मेरी पाशव प्रवृतिको—अपने बाहुपाशमें—अपने स्नेहपाशमें—बाँध रक्खा है। अब मैं मन-वाणी-कायासे इस पिशाचीका दास हो रहा हूँ।—आहो! पुरुषकी यह कैसी दुर्गति है! (बैठकर रोने लगता है।)

जनक—अच्छा जाओ चिरंजीव, मै इसके लिए दंडकी व्यवस्था

करूँगा। (माधुरीसे) मायाविनी! तुम आजसे इस पापके कारण रानीकी सखी हुई। अन्तःपुरमें जाओ।—चिरंजीव, जाओ।

(दोनोंका प्रस्थान।)

गौतम—हरि! दयामय! तुम धन्य हो! इतने दिनोंमें माधुरीकी महासाधना सिद्ध हुई।

[राजा दशरथका प्रवेश।]

जनक—(गौतमसे) बन्धुवर! यह अयोध्याके स्वामी महाराज दशरथ मेरे समधी हैं। (दशरथसे) महाराज! यह मेरे बंधुवर महर्षि गौतम हैं।

[दशरथ गौतमको प्रणाम करते हैं। गौतम दशरथको आशीर्वाद देते है।]

दशरथ—महाराज! अभी मैंने आपके महलमें आते समय राहमें एक अत्यन्त अद्भुत दृश्य देखा है—एक उन्मादिनी नारी खड़ी थी—

गौतम—उन्मादिनी नारी!

दशरथ—हाँ उन्मादिनी नारी। उसका गोरा शरीर दुबला और [illegible] सा हो रहा था। उसके पैरोंतक लंबे केश रूखे और बिखरे हुए [illegible]। उसकी दोनों विशाल आँखोंमें आँसू भरे हुए थे। उसके स्वच्छ [illegible]ठित चौड़े मस्तक पर गहरी दु खकथाकी कालिमा अंकित थी। वह [illegible] समान मधुर कंठसे कैसा वेदनासे भरा, गंभीर, मधुर, उत्कट गीत गा रही थी!—मित्र, उसका स्वर स्वर्गीय था। उस स्वरमें अनन्त वासना, और साथ ही अनन्त असीम स्वर्गीय हताशा भरी थी।—मैंने कभी ऐसी करुणामय मूर्ति नहीं देखी, ऐसा करुण संगीत नहीं सुना।

गौतम—(अर्ध स्वगत) उन्मादिनी थी !

(बाहर गीतका शब्द सुन पड़ता है ।)

दशरथ—वह आ रही है । शायद वह नारी यहीं आरही है ।

(अहल्या प्रवेश करके गाती है)

प्रभु मोहि एक बार फिरि चाहौ ।
ज्यों पहिले चाहत थे दासिहि वह प्रण फेरि निबाहौ ॥
सोई व्यथा हृदयकी स्वामी जागि उठी फिरि हियमे ।
रोवत बीतत रैन दिवस नित, चैन न छिनभर जियमे ॥
एक बार फर पकरि उठावहु, हियसों हियो लगाओ ।
नीरसी सेज लगे हिय लाखन, अब त्यहि शांत बनाओ ॥
मलिन परी धरतीमहँ बसी खोई नाथ तुम्हारी ।
तबहुँ तुम्हारी है, सादर त्यहि लेहु हाथ महँ झारी ॥
टूटी फूटी हृदय-बाँसुरी, आजु नाथके करमें ।
बाजु बाजुरी वैसे ही प्रिय मधुर मनोहर स्वरमें ॥

गौतम—अभागिन—तेरा यह वेश ! यह दशा !—

अह०—अभागिन हूं ! सच, मै अभागिन हूँ ! प्रभू—मै बड़ी ही भागिन हूँ, बड़ी ही कलंकिनी हूं, बड़ी ही पापिन हूँ, बड़ी ही दुष्टा हूं !

गौतम—हाय प्रियतमे !

अह०—"प्रियतमे !" आज मुझसे यह संभाषण ? यह क्या उपहास है ! या महर्षि, आपने शायद मुझे अभीतक पहचाना नहीं ?

गौतम—पहचाना है प्राणेश्वरी !

अह०—ना. नहीं पहचाना—इसी कारण उस मधुर स्नेहपूर्ण गद्गद स्वरसे ऐसा पुकार रहे हो ! इसीसे प्रेमके साथ हाथ फैला रहे हो !

अगर मुझे पहचानते तो घृणाके मारे मेरी ओरसे मुँह फेर लेते–मुझे कर्कश स्वरसे दुतकार देते, अथवा लात मारकर दूर कर देते।

गौतम–अहल्या—

अह०–अहल्या नही; पाषाणी हूँ–पाषाणी कहो । मै परपुरुष-गामिनी, पुत्रका गला घोटनेवाली हत्यारिन, पिशाची हूँ। सुनो–मेरी वह कथा सुनो। वह कथा ऐसी है कि उसकी हर पंक्तिमें गहरी कलंककी राशि जमी हुई है–उसके हर अक्षरमें पापपुंज भरा पड़ा है।–पहले मेरा इतिहास सुन लो—

गौतम–मै उसे सुनना नहीं चाहता, सब जानता हूं!–मेरी प्रिया–मेरी पत्नी–प्रतारित, प्रलुब्ध, पतित है! तुम्हारा यह शीर्ण शरीर, यह पीला पड़ाहुआ मुख, यह गढ़ोंमे चले गये नेत्रोंके नीचेकी घनी गहरी स्याही ही तुम्हारा इतिहास कह रही है!—

अह०–प्रभू, मैंने कितने ही वर्षोंसे नरककी ज्वाला–ओ ! नरककी ज्वाला दिनरात सही है! मै तीव्र यन्त्रणाके कारण भीतर ही भीतर ... हो गई हूँ। एक दिन अन्तको सहसा विष्णुकी कृपासे मुझे चैतन्य ...ा। सूखे पत्थरको तोड़कर झरना वह निकला; वज्रपातसे जले हुए ... पत्ते और फूल देख पड़े।–अब और क्या कहूं!–नाथ–तुम अगर ... जानते हो, तो फिर मै और क्या कहुं!–मेरे जीवनसर्वस्व! इतने दिनोंपर मुझे अपना भ्रम मालूम पडा है! क्षमा करो।–तुम धर्मकी प्रतिमा हो, पुण्यका रूप हो, दयाके सागर हो, स्वर्गके देवता हो! और मैं पापिन हूँ, मूढ हूँ, क्षुद्र हूँ, घृणित हूँ, नरकका कीड़ा हूँ!–देव!

मैंने विश्वासको तोडा है; कर्तव्यको पैरोंसे ठेला है; प्रेमके पात्रमें विष डाल दिया है !—आज वह भ्रम मेरी समझमें आगया—क्षमा करो नाथ !—

शता०—क्षमा ! जो नारी विश्वासका विनाश करके पवित्र प्रणयकी हत्या करती है, वह कभी क्षमाके योग्य नही है।—हाय, पिताजी ! जो दाम्पत्य प्रेम समाजकी नींव है, सब कर्तव्योंकी जड है, उसी दांपत्य प्रेमकी जडपर जो नारी अपने हाथसे कुठार चलाती है, वह पापिन कभी क्षमाके योग्य नहीं है। पितृदेव ! महात्मा भृगुकी व्यवस्थाके नुसार, कुल्टा नारीके लिए, वह चाहे अपनी पत्नी हो—चाहे जननी हो, प्राणदण्ड ही योग्य दंड है।

गौतम—क्रोधको शांत करो प्यारे पुत्र !—मै दण्ड दूँगा ?—हाय ! मै आप गले गले तक पापमें डूबा हुआ हूँ। मै आप दुर्बल मूढमति मनुष्य हूँ। मेरी क्या मजाल है कि दूसरे कर्तव्यभ्रष्ट मूढ मनुष्यका विचार करने बैठूं।—(अहल्यासे) आओ अभागिन नारी ! विधाताका सुंदर विधान यही है—प्रियतमे, आओ !—आज मैने वह पाया, जो पहले कभी नही पाया था। आज पहला दिन है कि मैंने तुमको हृदयके भीतर पाया है।—आओ पीड़ित, परित्यक्त, प्राणेश्वरी आओ, बाणसे घायल मेरे हृदय-पिंजरकी चिड़िया, हृदय-पिंजरमें फिर आओ ! (अहल्याको हृदयसे लगा लेते हैं।)

विश्वा०—तुम इतने उच्च हो ? इतने पवित्र और महान् हो ! इतने क्षमाशील हो ? इतने उदार हो ?—ब्राह्मण ! मै तुम्हारे आगे सिर झुकाता हूँ।—राजर्षि जनक ! तुमने बहुत ठीक और सच बात कही थी

समझ गया, ब्राह्मणत्व पाकर भी मैं यथार्थ ब्राह्मण नहीं हो सका हूं! जान गया, मैं ब्राह्मणत्वके बहुत नीचे पड़ा हुआ हूँ।–विश्वामित्रको धिक्कार है–वरदानमे मिले हुए ब्राह्मणत्वको धिक्कार है! मेरे तपको धिक्कार है!

जनक–वह चरित्र धन्य है, जिसके स्पर्शके जादूसे वेश्या सती हो जाती है, दस्यु साधु बन जाता है, पापपंकमे पडा हुआ पवित्र हो जाता है, कामुक और लंपट जितेन्द्रिय बन जाता है, गर्वसे चूर हुआ मनुष्य सिर झुका लेता है। वह चरित्र परमपूजनीय है, जो पारसपत्थरकी तरह लोहतुल्य काले चरित्रको सुवर्ण बना देता है; पावककी तरह दुर्गंध कूड़ेको भस्म कर देता है, पवित्र जलवाली जाह्नवीकी तरह सब मैल धो देता है।

अहल्या–नाथ! तुम्हारे पुण्यके तेजसे आज मैं अंधी हो रही हूं। तुम कहॉ हो? कितनी दूर हो? मुझे अपने साथ ले लो।

(सबका प्रस्थान।)